कौटिलीयम्

अर्थशास्त्रम्

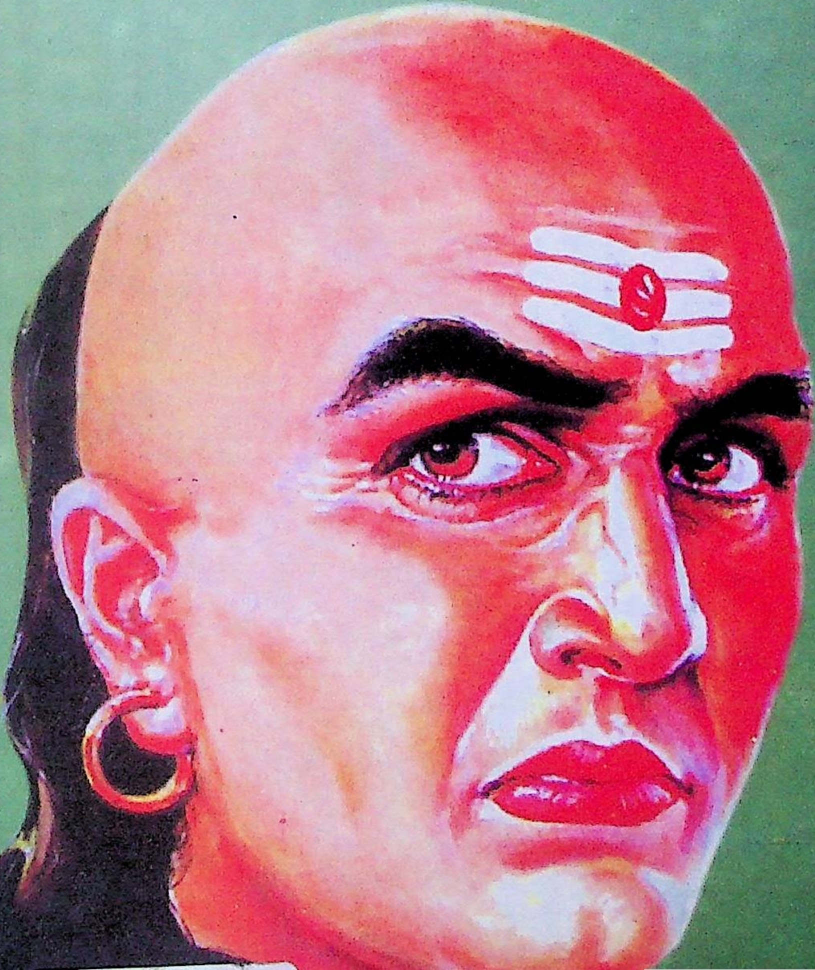

कौटिलीयम्

अर्थशास्त्रम्

विनयाधिकारिकं प्रथममधिकरणम्

[संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्]

विषयानुक्रमणिका

प्रस्तावना-(कौटिलीय अर्थशास्त्र एवं विनयाधिकारिक प्रथमाधिकरण)

१. प्रकरणाधिकरणसमुद्देशः १
२. विद्यासमुद्देशः (आन्वीक्षिकी स्थापना) ४०
३. विद्यासमुद्देशः (त्रयी स्थापना) ४४
४. विद्यासमुद्देशः (वार्ता एवं दण्डनीति स्थापना) ४९
५. वृद्धसंयोगः ५३
६. इन्द्रियजयः (अरिषड्वर्गत्याग) ५८
७. इन्द्रियजयः (राजर्षिवृत्त) ६३
८. अमात्योत्पत्तिः ६७
९. मन्त्रिपुरोहितोत्पत्तिः ७३
१०. उपधाभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानाम् ७९
११. गूढपुरुषोत्पत्तिः ८६
१२. गूढपुरुषप्रणिधिः ९१
१३. स्वविषये कृत्याकृत्यपक्षरक्षणम् १००
१४. परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः १०५
१५. मन्त्राधिकारः १११
१६. दूतप्रणिधिः १२३
१७. राजपुत्ररक्षणम् १३१
१८. अवरुद्धवृत्तम्, अवरुद्धे च वृत्तिः १४१
१९. राजप्रणिधिः १४६
२०. निशान्तप्रणिधिः १५३
२१. आत्मरक्षितकम् १६०

प्रस्तावना

अर्थशास्त्र अभिधान—संस्कृत-साहित्य में प्राचीन काल अन्य शास्त्रों के साथ अर्थशास्त्र का विशिष्ट महत्त्व रहा - यह तथ्य ऋग्वेद, अथर्ववेद, महाभारत आदि के अनुशीलन से प्रमाणित हो जाता है। उस समय अर्थशास्त्र शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में होता रहा तथा इसे राजनीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र एवं दण्डनीति का प्रतिपादक-पूरक माना जाता रहा। सामान्य रूप से 'अर्थशास्त्र' शब्द का अर्थ धनविज्ञान, राजनीतिविज्ञान, राजनीतिविषयक शास्त्र, राजनय आदि लिया जाता है। स्वयं आचार्य कौटिल्य ने 'अर्थ' शब्द का अर्थ यह बतलाया है—**''मनुष्याणां वृत्तिरर्थः, मनुष्यवतीभूमिरित्यर्थः, तस्याः पृथिव्याः लाभपालनोपायः शास्त्रमर्थशास्त्रमिति''** (अधिकरण १५, अध्याय १), अर्थात् मनुष्यों की आजीविका और जिस भूमि पर मनुष्य निवास करते हैं, उसे अर्थ कहते हैं। उस भूमि की प्राप्ति और रक्षा-पालन आदि उपायों के वर्णन से युक्त शास्त्र को अर्थशास्त्र कहते हैं। इस तरह आचार्य कौटिल्य ने अर्थशास्त्र को मुख्य रूप से राजीतिशास्त्र माना है तथा इस स्वतन्त्रशास्त्र की आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता एवं दण्डनीति आदि शाखाएँ बतलायी हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने स्पष्ट कहा है कि—

''चतुर्वर्णाश्रमो लोको राज्ञा दण्डेन पालितः।
स्वधर्मकर्माभिरतो वर्तते स्वेषु वेश्मसु॥''

आशय यह है कि राजा के द्वारा जिस विधान या उपाय आदि से समग्र लोक की रक्षा की जाती है और जिससे रक्षित प्रजा अपने-अपने कर्म का निष्पादन करती है, उसे ही दण्डनीति कहा जाता है, जो कि राजनीतिशास्त्र का ही पर्याय है। इस प्रकार सब तरह के शासन-विधान के निदर्शक शास्त्र को 'अर्थशास्त्र' नाम दिया गया है।

अर्थशास्त्र की प्राचीन परम्परा—भारत के प्राचीनतम साहित्य अर्थात् ऋग्वेद में राजा के शासन-विधान के संकेत मिलते हैं। इसी प्रकार स्मृतियाँ एवं पुराणों में राजनीति अथवा दण्डनीति का उल्लेख मिलता है और उसका विषय वही बताया गया है, जो कि अर्थशास्त्र में है। कौटिलीय अर्थशास्त्र से पूर्व अनेक अर्थशास्त्रों की रचना हो चुकी थी और आचार्य कौटिल्य को इस समृद्ध परम्परा का अवलोकन करने का सुअवसर मिला था। उन्होंने स्वयं कहा है कि पूर्वाचार्यों के द्वारा प्रणीत अर्थशास्त्रों से सार लेकर इस अर्थशास्त्र की रचना की गई है— **''पृथिव्याः लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्थापितानि, प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम्।''**

(कौटिलीय अर्थशास्त्र, अधिकरण १, अध्याय १)

कौटिल्य ने विभिन्न प्रसंगों में स्वमत का उपस्थापन करने से पूर्व अनेक पूर्ववर्ती अर्थशास्त्रियों का नामोल्लेख किया है। यद्यपि कौटिल्य से पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रन्थ आज

उपलब्ध नहीं हैं और न उनके स्थितिकाल का पता चलता है, फिर भी उनके मतों का सार-संग्रह यत्र-तत्र मिल जाता है, जिससे प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में अर्थशास्त्र प्रमुख शास्त्र के रूप में प्रचलित और स्वीकृत था। आचार्य कौटिल्य ने निम्न पूर्वाचार्यों का उल्लेख किया है—

१. उशनस् (उशना)—पौराणिक आख्यानों के अनुसार असुरों के गुरु शुक्राचार्य को ही उशना कहा जाता है। महाभारत के शान्तिपर्व में उशनस् द्वारा रचित अर्थशास्त्र का उल्लेख हुआ है। चरकसंहिता में भी औशनस अर्थशास्त्र का निर्देश मिलता है। औशनस का आशय शुक्राचार्य तथा उनके शिष्य भी है।

२. बृहस्पति—ग्रन्थारम्भ में आचार्य कौटिल्य ने '**नमः शुक्रबृहस्पतिभ्याम्**' कहकर शुक्राचार्य के साथ बृहस्पति को भी नमस्कार किया है तथा विभिन्न प्रसंगों-प्रकरणों में उनके मतों का उल्लेख किया है। विभिन्न स्मृतियों की टीकाओं में बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र का नामोल्लेख मिलता है। डॉ. थामस द्वारा 'बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र' नामक ग्रन्थ का सन् १९२१ ई. में प्रकाशन कराया गया, परन्तु वह बृहस्पति द्वारा रचित है या कोई अप्रामाणिक ग्रन्थ है, यह निश्चित नहीं है। वात्स्यायन के कामसूत्र में बृहस्पति के अर्थशास्त्र का उल्लेख हुआ है। बृहस्पति देवताओं के गुरु थे और उन्हें ही राजनीति का आचार्य एवं अर्थशास्त्र का प्रणेता माना जाता है।

३. विशालाक्ष—अमात्यों की नियुक्ति के प्रसंग में आचार्य कौटिल्य ने विशालाक्ष नामक आचार्य के मत का उल्लेख किया है। महाभारत के शान्तिपर्व में उल्लेख मिलता है कि उन्होंने पाँच हजार श्लोकात्मक अर्थशास्त्र की रचना की थी। इससे अधिक इनके सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं है।

४. पराशर—'काव्यमीमांसा' में आचार्य राजशेखर के पराशर का उल्लेख काव्यपुरुष के अठारह शिष्यों के अन्तर्गत किया है। पुराणों में इनका नामोल्लेख अनेक बार हुआ है। ये वसिष्ठ के पौत्र थे तथा कृष्णद्वैपायन व्यास इनके पुत्र थे। इनकी प्रसिद्ध रचना 'पराशरस्मृति' है। कौटिल्य ने विविध प्रसंगों में इनके मत को निर्दिष्ट किया है।

५. आम्भ—गुप्तचरों के विवेचन-प्रसंग में आचार्य आम्भ के मतानुयायियों का उल्लेख हुआ है। इनके सम्बन्ध में अन्यत्र कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

६. भारद्वाज—'महाभारत' के शान्तिपर्व में भारद्वाज और सौवीर के संवाद में इन्हें महान् अर्थशास्त्री बताया गया है। म.म.टी. गणपति शास्त्री ने इन्हें ही द्रोणाचार्य माना है। अमात्यों की नियुक्ति के प्रसंग में इनके मत का उल्लेख किया गया है।

७. कौणपदन्त—'कौटिलीय अर्थशास्त्र' में अमात्यों की नियुक्ति के सन्दर्भ में इनका मतोल्लेख हुआ है। महाभारतकालीन अर्थशास्त्रियों में उनकी गणना की जाती है। त्रिकाण्डकोश में कौणपदन्त का ही दूसरा नाम भीष्म बताया गया है।

८. पिशुन—कौटिलीय अर्थशास्त्र में आचार्य पिशुन का नामोल्लेख कई बार हुआ है। इनका दूसरा नाम 'नारद' बताया जाता है तथा इन्हें प्राचीन अर्थशास्त्र का प्रमुख आचार्य माना जाता है।

९. वातव्याधि—इनका दूसरा नाम उद्धव है। महाभारत में वृष्णि अन्धकों के जिन सात मन्त्रियों का उल्लेख हुआ है, उनमें उद्धव भी एक हैं। आचार्य कौटिल्य ने अनेक सन्दर्भों में इनका मतोल्लेख किया है।

१०. मनु (मानव)—कौटिलीय अर्थशास्त्र में अनेक स्थलों पर मनु अर्थात् मनुशिष्यों के मत का उल्लेख हुआ है। मनु द्वारा रचित 'मानव-सूत्र' एवं 'मनुस्मृति' को धर्मशास्त्र में आधारभूत ग्रन्थ माना जाता है। पुराणों में इनके विषय में अनेक आख्यान मिलते हैं और इन्हें ही मानवी-सृष्टि का प्रथम शासक बताया गया है।

११. बाहुदन्तीपुत्र—आचार्य कौटिल्य ने अमात्यों की नियुक्ति के प्रसंग में बाहुदन्तीपुत्र का उल्लेख किया है। इनका दूसरा नाम इन्द्र है। इन्होंने ही आचार्य विशालाक्ष के पंचसहस्रात्मक अर्थशास्त्र का संक्षेपीकरण किया था। 'महाभारत' के शान्तिपर्व में इस बात का उल्लेख मिलता है।

आचार्य कौटिल्य द्वारा उद्धृत इन सभी मतों से ज्ञात होता है कि भारत में अर्थशास्त्र की परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है। वैदिक काल से लेकर महाभारत एवं पुराणों के रचनाकाल तक कई अर्थशास्त्री हुए। अन्य प्राचीन ग्रन्थों में भी अंगिरा, राजपुत्र, भागुरी, दीर्घचारायण आदि अर्थशास्त्रियों के नाम मिलते हैं। ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि आचार्य कौटिल्य के समय तक इन सभी अर्थशास्त्रियों के ग्रन्थ उपलब्ध एवं प्रचलित थे, परन्तु कालान्तर में कौटिलीय अर्थशास्त्र की प्रसिद्धि के कारण अन्य अर्थशास्त्रों का प्रभाव कम होता गया और वे धीरे-धीरे विलुप्त हो गये। इससे इतना निश्चित कहा जा सकता है कि आचार्य कौटिल्य को अपने ग्रन्थ की रचना करने में पूर्ववर्ती अर्थशास्त्रों से पर्याप्त सहायता एवं मार्गदर्शन मिला। अर्थशास्त्र की यह प्राचीन परम्परा कौटिल्य के बाद 'कामन्दकीय नीतिसार' तक चलती रही। परवर्ती काल में यह परम्परा कुछ मन्द पड़ती गयी, फिर भी हेमचन्द्राचार्य की 'लघ्वर्हनीति', भोजकृत 'नीतिकल्पतरु', चण्डेश्वरकृत 'नीतिरसाकर', जनमेजयकृत 'नीतिप्रकाशिका', चन्द्रशेखर-रचित 'राजनीतिरत्नाकर' तथा लक्ष्मीधरकृत 'राजनीतिकल्पतरु' आदि ग्रन्थों की गणना इस परम्परा के रूप में की जाती है। इन परवर्ती ग्रन्थों में अर्थशास्त्र के साथ नीति एवं चरित्र-शिक्षा का भी समावेश किया गया है। इन परवर्ती ग्रन्थों के परिशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि बाद में अर्थशास्त्र का अध्ययन अनेक शाखा-उपशाखाओं में विभक्त होने लगा तथा 'नीतिशास्त्र' को प्रमुखता दी जाने लगी। आधुनिक काल में 'राजनीतिशास्त्र' विषय नये सिद्धान्तों से परिपुष्ट हो गया है।

आचार्य कौटिल्य एवं अर्थशास्त्र

आचार्य कौटिल्य का अनुपम व्यक्तित्व एक ओर तो भारत के राजनीतिक इतिहास में अपनी यशोगाथा को अमर बनाये है तो दूसरी ओर संस्कृत साहित्य के इतिहास में अपने विषय के अद्वितीय विद्वान् होने से गौरवान्वित है। असाधारण व्यक्तित्व के कारण आचार्य कौटिल्य का नाम-स्मरण पुराणों से लेकर काव्यों, नाटकों एवं कोशग्रन्थों में सर्वत्र प्रतिष्ठित है। विष्णुपुराण की एक कथा में स्पष्ट कहा गया है कि कौटिल्य नामक एक ब्राह्मण नन्द-वंश का विनाश करके मौर्यवंश के प्रथम प्रतापी शासक चन्द्रगुप्त को मगध के सिंहासन पर आरूढ़ करेंगे। भारतीय इतिहास में जिस तरह मगध की शासन-परम्परा का वर्चस्व वर्णित है उसी प्रकार कौटिल्य द्वारा मगध के सिंहासन पर अभिषिक्त किये गये चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन सब तरह से सुसमृद्ध तथा एकछत्र विराट् साम्राज्य का प्रतिष्ठापक माना जाता है। यह सब अद्भुत कुटिल मति राजनीतिज्ञ ब्राह्मण कौटिल्य, अपर नाम विष्णुगुप्त चाणक्य का चमत्कारी कार्य था।

कौटिलीय अर्थशास्त्र का संस्कृत वाङ्मय में अनेक कारणों से अद्वितीय महत्त्व है। इस कृति में सूत्रात्मक वाक्यों के रूप में प्रतिपाद्य विषय का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन किया गया है तथा सभी विषयों को अधिकरणों, प्रकरणों और अध्यायों में वैज्ञानिक ढंग से विभक्त कर विवेचित किया गया है। परिभाषिक शब्दावली, शासन-तन्त्र एवं दण्डनीति की विवेचना, अर्थनीति और कर्त्तव्यपालन की मीमांसा, पूर्ववर्ती आचार्यों एवं उनके मतों के उद्धरणों से स्वमत की पुष्टि आदि अनेक विशेषताओं के समावेश से कौटिलीय अर्थशास्त्र का महत्त्व सातिशय माना जाता है। इससे परवर्ती संस्कृत-जगत् अत्यधिक प्रभावित रहा है।

कौटिलीय अर्थशास्त्र का प्रणेता

'कामन्दकीय नीतिसार' आदि के प्रमाणों से सुनिश्चित है कि अर्थशास्त्र के रचयिता आचार्य कौटिल्य ही थे, परन्तु कुछ विदेशी विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि यह एक जाली ग्रन्थ है। सन् १९२३ ई. में पंजाबी संस्कृत सीरीज, लाहौर से डॉ. जौली की एक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसका नाम है- 'अर्थशास्त्र ऑफ कौटिल्य'। इस पुस्तक की प्रस्तावना में डॉ. जौली ने यह सिद्ध करने का भरसक प्रयास किया कि अर्थशास्त्र तीसरी सदी में लिख गया एक जाली ग्रन्थ है और इसका रचयिता कौटिल्य एक कल्पित राजमन्त्री है। इस भ्रमपूर्ण कथन का डॉ. विंटरनित्स, डॉ. कीथ आदि ने भी समर्थन किया तथा सम्पूर्ण 'कौटिलीय अर्थशास्त्र' को एक अप्रामाणिक रचना बताया। परन्तु विदेशियों का यह वर्ग कौटिल्य की प्राचीनता एवं प्रामाणिकता को स्वार्थवश ही इस तरह नकार रहा था, जबकि अनेक विदेशी विद्वान् तथा भारतीय इतिहास समीक्षक इसकी प्रामाणिकता घोषित कर चुके थे। डॉ. जायसवाल, श्री जयचन्द विद्यालंकार आदि ने डॉ. जौली एवं डॉ. कीथ के तर्कों का खण्डन करते हुए अर्थशास्त्र एवं आचार्य कौटिल्य दोनों

को प्रामाणिक घोषित करने का जो प्रयास किया, वह प्रशंसनीय है। स्वयं कौटिल्य ने ग्रन्थ की समाप्ति पर अपना नामोल्लेख इस प्रकार किया है—

येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्॥
दृष्ट्वा विप्रतिपत्तिं बहुधा शास्त्रेषु भाष्यकाराणाम्।
स्वयमेव विष्णुगुप्तश्चकार सूत्रं च भाष्यं च॥

'कौटिलीय अर्थशास्त्र' ग्रन्थ की पाण्डुलिपियों का संशोधन एवं प्रकाशन करने में पं. शामशास्त्री ने अथक परिश्रम किया। उन्होंने सर्वप्रथम मैसूर राजकीय ग्रन्थमाला से इस महाग्रन्थ की पाण्डुलिपि प्राप्त कर इसके कुछ अंशों को सन् १९०५ ई. में सानुवाद प्रकाशित कराया। बाद में उन्हें यतीन्द्र मठ ग्रन्थालय, मद्रास राजकीय ग्रन्थालय, कोची राजकीय ग्रन्थशाला आदि से पाँच हस्तलिखित ग्रन्थ-प्रतियाँ प्राप्त हुईं। इन सभी का संशोधन कर सन् १९०९ में उन्होंने विशुद्ध पाठ का प्रकाशन कराया। इस प्रकार 'कौटिलीय अर्थशास्त्र' का उद्धार करने में पं. शामशास्त्री का योगदान अनुपम माना जाता है। इस तरह पं. शामशास्त्री ने यह सिद्ध कर दिखाया कि अर्थशास्त्र के प्रणेता आचार्य कौटिल्य ही हैं और ये दोनों प्रामाणिक हैं। उनके इस मत का समर्थन म.म.टी. गणपति शास्त्री, राधाकुमुद मुकर्जी, प्राणनाथ विद्यालंकार, देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर, उपेन्द्र घोषाल प्रभृति भारतीय विद्वानों के साथ ही हिलक्राण्ट, हर्टल, याकोबी एवं विसेंट स्मिथ अदि पाश्चात्य विद्वानों ने भी किया है।

कौटिल्य नाम का निर्वचन—अर्थशास्त्र के प्रणेता आचार्य कौटिल्य के अन्य नाम भी मिलते हैं तथा ये ही मगध की शासन-परम्परा में मौर्य-साम्राज्य के प्रतिष्ठापक माने जाते हैं। इस सम्बन्ध में म.म.टी. गणपति शास्त्री का कथन है कि कुटल गोत्र से उत्पन्न होने के कारण इनका नाम कौटल्य हुआ—"**कुटलो नाम गोत्रप्रवर्तकर्षिः, तस्य गोत्रापत्यं कौटल्य इति।**" चणक देश का वास्तव्य होने से अथवा चणक का पुत्र होने से चाणक्य नाम पड़ा। वस्तुतः ये दोनों नाम माता-पिता द्वारा प्रदत्त नहीं हैं। विष्णु-भक्त माता-पिता ने नामकरण संस्कार के अवसर पर इनका नाम विष्णुगुप्त रखा। इस प्रकार कौटिल्य, चाणक्य एवं विष्णुगुप्त ये तीनों नाम इनके ही हैं। इस सम्बन्ध में 'कामन्दकीय नीतिसार' का यह कथन द्रष्टव्य है—

नीतिशास्त्रामृतं श्रीमानर्थशास्त्रं महोदधेः।
समुद्दध्रे नमस्तस्मै विष्णुगुप्ताय वेधसे॥

कौटिल्य, विष्णुगुप्त एवं चाणक्य नाम एक ही व्यक्ति के हैं। इस दृष्टि से हेमचन्द्राचार्य का कोष, वैजयन्ती एवं भोजराज को प्रमाण स्वरूप देखा जा सकता है। यथा हेमचन्द्र द्वारा 'अभिधानचिन्तामणि' में कहा गया है—

विष्णुगुप्तस्तु कौटिल्यश्चाणक्यो द्रामिलो गुलः।
वात्स्यायनो मल्लनागः पाक्षिलस्वामिनावपि ॥
वात्स्यायनो मल्लनागः कौटिल्यश्चणकात्मजः।
द्रामिलः पाक्षिल-स्वामी विष्णुगुप्तो गुलश्च सः॥

इसी प्रकार यादवप्रकाश वैजयन्ती की नामावली द्रष्टव्य है—

वात्स्यायनस्तु कौटिल्य विष्णुगुप्तो वराणकः।
द्रामिलः पाक्षिलः स्वामी मल्लनागो बलोऽपि च॥

भोजराज नाममल्लिका में कहा गया है—

कात्यायनस्तु कौटिल्यो विष्णुगुप्तो वराणकः।
द्रामिलः पाक्षिल-स्वामी मल्लनागो गुलोऽपि च॥

उक्त कोष-ग्रन्थों की पर्यायवाची नामावली से आचार्य कौटिल्य के नामकरण को लेकर उत्पन्न भ्रान्ति का निराकरण हो जाता है। इनका अन्य नाम 'चाणक्य' का सम्बन्ध भी 'चणक' का पुत्र या वंशज होने से प्रचलित रहा है, तो पितृ-प्रदत्त नाम विष्णुगुप्त का भी अनेक ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है। स्वयं अर्थशास्त्र के अन्त में आचार्य कौटिल्य ने अपने इस नाम का प्रयोग किया है। यथा—

दृष्ट्वा विप्रतिपत्तिं बहुधा शास्त्रेषु भाष्यकाराणाम्।
स्वयमेव विष्णुगुप्तश्चकार सूत्रं च भाष्यं च ॥

आचार्य चाणक्य के जन्म-नाम विष्णुगुप्त तथा गोत्र नाम कौटिल्य को प्रमाणित करने वाले कई अन्तःसाक्ष्य उपलब्ध हैं। इस सम्बन्ध में कहा जाता है कि जो एक घड़े से अधिक धान्य का संग्रह नहीं करते थे, उन कुम्भी-धान्य नामक अत्यन्त त्यागी वृत्ति वाले श्रेष्ठ ब्राह्मणों का गोत्र 'कुटल' था और उस गोत्र में उत्पन्न सन्तान को 'कौटल्य' कहते थे। 'कूट' घट का पर्यायवाची नाम है, इस गोत्र में उत्पन्न होने से चाणक्य ने अपने 'कौटल्य' उपनाम का प्रयोग बड़े गौरव के साथ किया है। 'कौटल्य' पद की व्युत्पत्ति इस प्रकार बतायी जाती है-

कुटिं लाति—इति कौटिल्यः।
कुटति वा कुट् कौटिल्ये (कुट्+इलच् = कुटिलः)।

कूटो घटः, धान्यपूर्णं लान्ति संगृह्णन्ति इति कुटलाः कुम्भीधान्याः त्यागपरा ब्राह्मणश्रेष्ठाः। तेषां गोत्रापत्ये कौटल्यो विष्णुगुप्तो नाम।

उक्त व्युत्पत्ति के आधार पर आचार्य कौटिल्य के पूर्वज 'कुटल' ब्राह्मण अथवा इस गोत्र के थे। म.म. गणपति शास्त्री के अनुसार इनके नाम का सही पाठ 'कौटल्य' था, जो उक्त 'कुटल' गोत्र-नाम से निष्पन्न हुआ। अन्य आचार्यों के अनुसार कुटिल राजनीति या कुटिलनीति का निर्माता होने से इन्हें 'कौटिल्य' नाम से अभिहित किया गया। 'कुटिल

टेढ़ापन या वक्रता' का भाव कौटिल्य - यह व्युत्पत्ति इसी भाव से की जाती है। परवर्ती साहित्य-जगत् में यही व्युत्पत्ति-साध्य नाम ग्राह्य रहा है। 'मुद्राराक्षस' नाटक में इन्हें कुटिल मन्त्रकार या प्रखर राजनीतिज्ञ दर्शाया गया है। साथ ही आचार्य कौटिल्य को निर्लोभ, त्याग-तपोमय जीवनचर्या वाला गुरु बताया गया है।

आचार्य कौटिल्य का स्थिति-काल

आचार्य कौटिल्य के स्थितिकाल को लेकर 'विष्णुपुराण' एवं 'कामन्दकीय नीतिसार' के साथ स्वयं कौटिल्य के ग्रन्थ-समाप्ति सूचक श्लोक को प्रमाण माना जा सकता है। विष्णुपुराण की कथा है कि ''महापद्म तथा उसके नौ पुत्र एक सौ वर्ष तक मगध पर राज्य करेंगे, उनके अन्तिम उत्तराधिकारी नन्द को कौटिल्य नामक ब्राह्मण समूल विनष्ट करेगा और मगध के सिंहासन पर चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्याभिषेक किया जायेगा।'' इस कथा में कौटिल्य को नन्दवंश का उच्छेदक और मौर्यवंश का प्रतिष्ठापक बताने से सिद्ध हो जाता है कि आचार्य कौटिल्य का स्थितिकाल मौर्य-वंश की राजसत्ता का प्रारम्भिक समय रहा है। कामन्दक को परवर्ती माना जाता है, क्योंकि उन्होंने महामति कौटिल्य (विष्णुगुप्त) का अपने ग्रन्थ में सादर उल्लेख किया है। 'पंचतन्त्र' में भी नीतिशास्त्र के प्रणेताओं के रूप में अन्य आचार्यों के साथ चाणक्य को नमस्कार किया गया है—

मनवे वाचस्पतये शुक्राय पराशराय ससुताय।
चाणक्याय च विदुषे नमोऽस्तु नयशास्त्रकर्तृभ्यः॥

(पञ्चतन्त्र कथामुख-२)

प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल ने अपनी कृति 'हिन्दू पालिटी' में सुदृढ़ आधारों पर सिद्ध किया है कि अर्थशास्त्र प्रामाणिक रचना है तथा कौटिल्य कोई कल्पित नाम न होकर मौर्यवंश के प्रतापी सम्राट् चन्द्रगुप्त का मन्त्री ही है। चन्द्रगुप्त मौर्य के स्थितिकाल के आधार पर कौटिल्य का समय ईसा पूर्व चौथी शती सिद्ध होता है। जयदेव विद्यालंकार ने भी इस मत का समर्थन किया है। अतएव इतिहासकारों ने चन्द्रगुप्त मौर्य का समय ३२९-२७६ ई. पूर्व मानकर आचार्य कौटिल्य द्वारा अर्थशास्त्र की रचना का समय ३०० ई. पूर्व के आसपास स्वीकार किया है।

इतिहासकारों ने अनेक अनुसन्धानों से यह प्रतिपादित किया है कि चन्द्रगुप्त को पंचनद की ओर से नन्द-वंश के विरोध में उभाड़कर स्वाभिमानी ब्राह्मण चाणक्य मगध की ओर लाया। शूद्रा-पुत्र नन्द ने पहले ब्राह्मण चाणक्य का तिरस्कार किया था, तब से अमर्ष से पूरित उस ब्राह्मण ने स्वयं भी शस्त्र-ग्रहण किया और सामान्य क्षत्रिय-वंशोत्पन्न लेकिन प्रतापी चन्द्रगुप्त को मगध के राजसिंहासन पर आसीन कराया। कौटिलीय अर्थशास्त्र के अन्त में यह श्लोक इसी तथ्य को सूचित करता है—

येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्॥

इस श्लोक में 'तेन शास्त्रमिदं कृतम्' का स्पष्टीकरण भी आचार्य चाणक्य ने प्रथम अधिकरण के प्रथम अध्याय के अन्त में इस प्रकार दिया है—

सुखग्रहणविज्ञेयं तत्त्वार्थपदनिश्चितम्।
कौटिल्येन कृतं शास्त्रं विमुक्तग्रन्थविस्तरम्॥

इससे स्पष्ट हो जाता है कि विष्णुगुप्त नामक अद्भुत कुटिलमति राजनीतिज्ञ ब्राह्मण ही चन्द्रगुप्त मौर्य का मन्त्री और सहायक था। अतएव कौटिल्य का वही स्थिति-काल मानना निर्विवाद है।

आचार्य कौटिल्य का परिचय

आचार्य कौटिल्य के जीवन-शिक्षा आदि का प्रामाणिक परिचय सुलभ नहीं है। ये मौर्य साम्राज्य के संस्थापक सम्राट् चन्द्रगुप्त के राजनीतिक गुरु, प्रधानमंत्री, मार्गदर्शक, हितचिन्तक एवं मौर्य साम्राज्य के कर्णधार थे। कौटिल्य के जन्म, वंश आदि के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इन्होंने अपनी रचनाओं में स्वयं के वंश परिचय आदि की ओर कुछ भी संकेत नहीं किया है। केवल 'कौटिलीय अर्थशास्त्र' के अन्त में 'येन शास्त्रं च शस्त्रं च' इत्यादि श्लोक आया है, जिसमें इन्होंने स्वयं को महापद्मनन्द के राजवंश को समाप्त करने वाला बताया है।

इसी प्रकार 'मुद्राराक्षस' नाटक में कौटिल्य द्वारा नन्दवंश को समूल नष्ट करने का वर्णन मिलता है। जैसे—

कौटिल्यः कुटिलमतिः स एष येन
क्रोधाग्नौ प्रसभमदाहि नन्दवंशः।
चन्द्रस्य ग्रहणमिति श्रुतेः सनाम्नो
मौर्येन्दोर्द्विषदभियोग इत्यवैति॥

–मुद्रा. प्रस्तावना १/७

ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार मगध पर शिशुनागवंशीय राजाओं का अधिकार था। इस वंश का महानन्दि अन्तिम प्रतापी राजा हुआ। उसने अपनी शूद्रा-पत्नी से उत्पन्न पुत्र नन्द को राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। इससे मगध पर नन्द वंश का शासन प्रारम्भ हुआ। उसके शासन से जनता अप्रसन्न रहती थी।

ऐसी किंवदन्ती प्रचलित है कि श्राद्ध-भोजन के अवसर पर महाराज नन्द ने आचार्य कौटिल्य का अपमान किया था, जिससे क्रुद्ध होकर उन्होंने नन्दवंश के उच्छेद का प्रण किया था और तब तक अपनी शिखा न बाँधने का संकल्प करके मगध से निष्क्रमण कर दिया था। तक्षशिला विश्वविद्यालय में आकर उन्हें चन्द्रगुप्त जैसा वांछित सुयोग्य शिष्य मिला, जिसके सहयोग से उन्होंने अपने प्रण-निर्वाह का सफल प्रयोग किया था।

'मुद्राराक्षस' नाटक म इस किंवदन्ती का सांकेतिक उल्लेख हुआ है। 'कामन्दकीय नीतिसार' में आचार्य कौटिल्य के सम्बन्ध में यह विवरण मिलता है-

वंशे विशालवंश्यानाम्-ऋषीणामिव भूयसाम्।
अप्रतिग्राहकाणां यो बभूव भुवि विश्रुतः॥
जातवेदा इवार्चिष्मान् वेदान् विदविदां वरः।
योऽधीतवान् सुचतुरश्चतुरोप्येक-वेदवत्॥
यस्याभिचारवक्रेण वज्रज्वलनतेजसः।
पपातामूलतः श्रीमान् सुपर्वा नन्दपर्वतः॥
एकाकी मन्त्रशक्त्या यः शक्त्या शक्तिधरोपमः।
आजहार नृचन्द्राय चन्द्रगुप्ताय मेदिनीम्॥
नीतिशास्त्रामृतं धीमान् अर्थशास्त्रमहोदधेः।
समुद्दधे नमस्तस्मै विष्णुगुप्ताय वेधसे॥

इस विवरण का आशय स्पष्ट है कि आचार्य कौटिल्य ने अपनी प्रतिभा-पल्लवित कूटनीति से विशाल नन्दवंश का समूल उच्छेद किया और चन्द्रगुप्त मौर्य को सम्राट् बनाकर राजशासन का विधान किया। उक्त कथन भारतीय इतिहास के अनुरूप है। कौटिल्य ने ही विदेशी आक्रान्ता सिकन्दर से भारत की रक्षा करने हेतु चन्द्रगुप्त जैसे साहसी व्यक्ति का मार्गदर्शन किया, मगध गणराज्य की स्थापना कर विशाल भारत राज्य की नींव रखी। इस तरह राजनीति एवं दण्डनीति के क्षेत्र में आचार्य कौटिल्य का अप्रतिम योगदान माना जाता है।

रचना-परिचय

राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र अथवा लोकाचारोपदेशक समाजशास्त्र के प्रथम आचार्य के रूप में चाणक्य का नाम सर्वप्रमुख है। वस्तुतः राजनीति एवं कूटनीति की जो संगति मानी गई है, उसके लिए आचार्य कौटिल्य की प्रतिभा को अप्रतिम माना जाता है। इस दृष्टि से भारतीय साहित्येतिहास में विशिष्ट वैदुष्य, लोक-चिन्तन, राजशासन एवं समाज-व्यवस्था के मौलिक-सर्जक के रूप में आचार्य कौटिल्य का अनेकशः उल्लेख हुआ है। आचार्य कौटिल्य को लेकर अथवा किंवदन्तियों को आधार बनाकर इनके व्यक्तित्व पर अनेक ग्रन्थों की रचना हुई है। वर्तमान काल में राजनीति एवं अर्थशास्त्र के प्रतिमान रूप में इनका नाम सादर लिया जाता है। चतुर राजनीतिज्ञ अर्थात् चाणक्य यह जन-प्रचलित कथन इसी विशेषता का परिचायक है। वस्तुतः इस क्षेत्र में आचार्य कौटिल्य की समता रखने वाला कोई भी महापुरुष आजतक नहीं हुआ है।

आचार्य कौटिल्य अर्थात् चाणक्य ने जिन विविध ग्रन्थों की रचना की, उनमें उपलब्ध प्रमुख ग्रन्थ निम्नलिखित हैं-

१. लघुचाणक्य—इसमें आठ अध्याय और कुल ९१ श्लोक हैं। इसमें नीतिसम्बन्धी सामान्य बातों का समावेश हुआ है।

२. वृद्धचाणक्य—इसमें आठ अध्याय हैं और कुल श्लोक १२४ हैं। इसमें भी नीति-सम्बन्धी बातों का उल्लेख हुआ है।

३. चाणक्यनीतिशास्त्र—इसमें नीतिशास्त्र से सम्बन्धित १०८ श्लोक हैं।

४. चाणक्यसारसंग्रह—इसमें तीन शतकों का समावेश किया गया है। इस कारण इसमें ३०० श्लोक हैं।

५. चाणक्य राजनीतशास्त्र—इसमें आठ अध्याय हैं तथा कुल श्लोक ५१२ हैं। इसमें राजतन्त्र के विधान से सम्बन्धित कर्त्तव्यों का तथा राजनीति की शिक्षा प्रदान करने वाले सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है।

६. चाणक्यसूत्राणि—इस रचना में ५७२ सूत्र हैं, परन्तु कुछ संस्करणों में ५१७ सूत्र मिलते हैं। इसमें लौकिक आचार-व्यवहार, कर्त्तव्याकर्त्तव्य, नीतिकथन, शासन-तन्त्र के निर्देश, धार्मिक व नैतिक कर्मानुष्ठान आदि अनेक पक्षों पर सूत्र रूप में प्रकाश डाला गया है। इसमें चरित्र-निर्माण की शिक्षा भी समाविष्ट है।

७. कौटिलीय अर्थशास्त्र—यह राजनीति तथा अर्थनीति से सम्बन्धित विशाल ग्रन्थ है। इसमें भारतीय संस्कृति एवं समाज के साथ आर्थिक दशा, कवि-कर्म, शासन-व्यवस्था आदि का सुन्दर विश्लेषण दिया गया है। इसमें प्रमुखत: ये विषय वर्णित हैं—१. संघराज्य, २. मन्त्रिपरिषद्, ३. शासन, ४. राजदूत एवं गुप्तचर, ५. समाज-व्यवस्था तथा ६. आर्थिक स्थिति। इस ग्रन्थ का विभाजन पन्द्रह अधिकरणों में एक सौ अस्सी प्रकरणों तथा एक सौ पचास अध्यायों के रूप में किया गया है तथा प्रत्येक विषय का विस्तार से निर्देश दिया गया है।

८. चाणक्यनीतिदर्पण:—इसे 'चाणक्यराजनीतिसमुच्चय' नाम से भी अभिहित किया जाता है। इसमें सत्रह अध्याय हैं तथा कुल श्लोक ३४८ हैं। यह ग्रन्थ राजनीति, लोकाचार, धर्माचरण, कर्त्तव्य-बोध आदि अनेक विषयों के सम्बन्ध में सारपूर्ण विचार एवं निर्देशात्मक कथनों से सम्पन्न है।

म.म.टी. गणपति शास्त्री ने भट्टस्वामी की व्याख्या के आधार पर 'धातुकौटलीयम्' नामक ग्रन्थ इनकी रचना बतायी है। 'वराहमिहिर' तथा 'कामसूत्र-जयमङ्गला' ने ज्योतिशास्त्रविजय एवं कामशास्त्रविषयक अन्य ग्रन्थों के उद्धरण दिये हैं। इनसे ज्ञात होता है कि आचार्य कौटिल्य की अन्य रचनाएँ भी थीं, जो कि अब अनुपलब्ध हैं।

कौटिलीय अर्थशास्त्र का विषय-विवेचन

आचार्य कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ में राजनय से सम्बन्धित समस्त विषयों एवं अङ्गों का सूत्रात्मक प्रतिपादन किया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में इसके अधिकरणों और प्रकरणों का

शीर्षकानुसार उल्लेख किया गया है। प्रत्येक अधिकरण में कितने प्रकरण और अध्याय हैं, इसका विवरण संक्षेप में इस प्रकार है—

	अधिकरण	प्रकरण	अध्याय	कारिका
१.	विनयाधिकारिक	१८	२१	४८
२.	अध्यक्षप्रचार	३८	३६	७२
३.	धर्मस्थीय	१९	२०	३१
४.	कण्टकशोधन	१३	१३	२३
५.	योगवृत्त	७	६	१६
६.	मण्डलयोनि	२	२	६
७.	षाड्गुण्य	२९	१८	८९
८.	व्यसनाधिकारिक	८	५	१९
९.	अभियास्यत्कर्म	१२	७	८
१०.	साङ्ग्रामिक	१३	६	१२
११.	संघवृत्त	२	१	१
१२.	आबलीयस	९	५	५
१३.	दुर्गलम्भोपाय	६	५	१०
१४.	औपनिषदिक	३	४	३७
१५.	तन्त्रयुक्तिः	१	१	३
	योग	१८०	१५०	३८०

आचार्य कौटिल्य ने प्रकरणों के शीर्षक या उपशीर्षक नहीं दिये हैं, इस कारण व्याख्याकारों में प्रथम तीन अधिकरणों के प्रकरणों के निर्धारण में कुछ मतभेद है, यथा म.म.त. गणपति शास्त्री ने प्रथम अधिकरण में १८, द्वितीय में ३८ तथा तृतीय १९ प्रकरण माने हैं, जबकि अन्य व्याख्याकारों ने क्रमशः १६, ३९ व २० प्रकरण माने हैं। परन्तु इन दोनों का योग दोनों मतों से समान होता है। उक्त विवरण में कारिका का आशय श्लोक है।

प्रथम अधिकरण के प्रथम अध्याय की समाप्ति पर आचार्य कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र का प्रमाण भी निर्दिष्ट किया है तथा कहा है—"**शास्त्रसमुद्देशः पञ्चदशाधिकरणानि सपञ्चाशदध्यायशतं सशीतिप्रकरणशतं षट्श्लोकसहस्राणीति।**" अर्थात् सम्पूर्ण अर्थशास्त्र में पन्द्रह अधिकरण हैं, इनमें एक सौ पचास अध्याय और एक सौ अस्सी प्रकरण हैं। इन सबका योग छः हजार श्लोक है।

यहाँ यह समझना आवश्यक है कि श्लोक अर्थात् अनुष्टुप् छन्द के प्रत्येक चरण में आठ तथा चारों चरणों में कुल बत्तीस वर्ण होते हैं। यदि सम्पूर्ण अर्थशास्त्र को श्लोक-बद्ध किया जाये अथवा श्लोक के वर्णों के आधार पर गिना जाये, तो इसका आकार छः हजार

श्लोकों का होता है। इसीलिए आचार्य चाणक्य ने 'षट्श्लोकसहस्राणि' प्रमाण दिया है। परवर्ती कवियों ने अर्थशास्त्र को इसी आधार पर 'षट्साहस्री संहिता' कहा है।

प्रथमाधिकरण का विषय-विवेचन

कौटिलीय अर्थशास्त्र का 'विनयाधिकारिक' नामक प्रथम अधिकरण इक्कीस अध्यायों में विभक्त है। इस अधिकरण में विषय-विवेचन इस प्रकार है—

१. प्रकरणाधिकरण समुद्देश—प्रथम अध्याय में सभी प्रकरणों तथा अधिकरणों का संक्षेप में निर्देश किया गया है। इसमें सम्पूर्ण ग्रन्थ में विवेच्य-विषय का अधिकरणों के शीर्षकों के द्वारा उल्लेख हुआ है और कहा गया है कि इसमें ये पन्द्रह अधिकरण हैं— विनयाधिकारिक, अध्यक्षप्रचार, धर्मस्थीय, कण्टकशोधन, योगवृत्त, मण्डलयोनि, षाड्गुण्य, व्यसनाधिकारिक, अभियास्यत्कर्म, साङ्ग्रामिक, संघवृत्त, अबलीयस, दुर्गलम्भोपाय, औपनिषदिक तथा तन्त्रयुक्ति। अन्त में अर्थशास्त्र का आकार-प्रमाण तथा शास्त्रकार का स्वोद्देश्य-कथन वर्णित है।

२. विद्यासमुद्देश—इस प्रकरण में द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ अध्यायों में आन्वीक्षिका, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति - इन चारों विद्याओं का वर्णन किया गया है। इसमें बताया गया है कि मनु के अनुयायी त्रयी, वार्ता और दण्डनीति को; बृहस्पति के अनुयायी वार्ता और दण्डनीति को तथा शुक्राचार्य के अनुयायी केवल दण्डनीति को ही स्वीकार करते हैं। परन्तु आचार्य कौटिल्य ने धर्माधर्म के यथार्थ ज्ञान के लिए आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति - इन चारों विद्याओं को उपादेय बताया है।

आन्वीक्षिकी विद्या के अन्तर्गत दर्शनशास्त्र की तथा त्रयी के अन्तर्गत ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद की गणना की जाती है। त्रयी में निरूपित धर्म लोकोपकारक है, क्योंकि उसी से सब लोग वर्ण और आश्रम के अनुरूप कार्य करते हैं। वार्ता विद्या में कृषि, पशुपालन तथा व्यापार आदि आजीविका के साधनों की गणना की जाती है। दण्ड-विधान करने वाली विद्या दण्डनीति कहलाती है, जो कि सभी विद्याओं की समृद्धि करती है।

३. वृद्धसंयोग—पञ्चम अध्याय में आन्वीक्षिकी आदि विद्याओं के ज्ञाता वृद्धों की संगति का अर्थात् शिष्यभाव-सम्बन्ध का निर्देश दिया गया है। ये विद्याएँ सुपात्र को ही देनी चाहिए। इसमें दिन के पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध का विभाजन करके समस्त कार्य समयानुसार करने का निर्देश देते हुए बताया गया है कि रात्रि में गृहीत ज्ञान का चिन्तन और अगृहीत ज्ञान का बार-बार श्रवण-मनन करना चाहिए।

४. इन्द्रियजय—दो प्रकरणों वाले षष्ठ अध्याय में शास्त्रानुष्ठान से इन्द्रियों पर विजय पाने का विवेचन किया गया है। काम, क्रोध, लोभ, मान, मद तथा हर्ष के कारण व्यक्ति इन्द्रियों के वश होकर अपना अनिष्ट करता है, इसीलिए सम्पूर्ण शास्त्रों के

अनुशीलन से इन्द्रियजय करने का निर्देश दिया गया है। इन्द्रिय विजयी न होने से भोजवंशी राजा दाण्डक्य, विदेह का राजा कराल, जनमेजय, तालजंघ, पुरुरवा, अजबिन्दु, रावण, दुर्योधन, जम्मोद्भव, हैहयराज अर्जुन, वातापि और वृष्णिसंघ (यादवसंघ) के शीघ्र विनाश के उदाहरण दिये गये हैं। सप्तम अध्याय में उत्तम राजा की जीवनचर्या का वर्णन करते हुए निर्देश दिया गया है कि—

१. वह काम-क्रोधादिक का त्यागकर इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करे।
२. वृद्धों की संगति से बुद्धि का विकास करे।
३. गुप्तचरों के माध्यम से स्वदेश-विदेश के समाचार जाने।
४. शासन-विधानानुसार प्रजा पर नियन्त्रण रखे।
५. शिक्षा का प्रसार कर प्रजा को विनयी एवं शिक्षित बनाये।
६. धनादि देकर प्रजावर्ग में लोकप्रियता प्राप्त करे।
७. सदैव प्रजाहित का आचरण करे।
८. परस्त्री, परद्रव्य एवं हिंसा का परित्याग करे।
९. असमय शयन, चपलता, मृषावचन तथा उद्धत स्वभाव का परित्याग करे।
१०. धर्म-अर्थ-विरोधी कार्यों से दूर रहे।
११. धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ का समान रूप से सेवन करे।

राजा आचार्य और मन्त्रियों की मर्यादा का ध्यान रखे। साथ ही आचार्य और अमात्य राजा को समय-समय सावचेत करते रहें, क्योंकि उनकी सहायता से ही राजा राजकार्य का सम्यक् संचालन कर पाता है।

५. अमात्योत्पत्ति—अष्टम अध्याय में अमात्यों की नियुक्ति के सम्बन्ध भारद्वाज, विशालाक्ष, पराशर, पिशुन, कौणपदन्त, वातव्याधि तथा बाहुदन्तीपुत्र आदि पूर्वाचार्यों के मतों का उल्लेख करते हुए अन्त में आचार्य कौटिल्य ने स्वमत की स्थापना की है।

६. मन्त्रिपुरोहितोत्पत्ति—नवम अध्याय में मन्त्रियों की नियुक्ति तथा उनकी योग्यता आदि का चिन्तन करने का निर्देश दिया गया है। पुरोहित ऐसा हो जो शास्त्रीय ज्ञान से विख्यात, उच्चकुलीन ब्राह्मण तथा शकुनशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, दण्डनीति तथा दैवी व मानुषी विपत्तियों का शास्त्रीय विधि से प्रतीकार करने में समर्थ हो। श्रेष्ठ मन्त्रियों एवं योग्य पुरोहित की नियुक्ति से राजा उनके सहयोग से अलभ्य वस्तुओं को भी प्राप्त कर लेता है।

७. उपधा से शौचाशौच-ज्ञान—दशम अध्याय में आचार्य कौटिल्य ने राजा के लिए निर्देश दिया है कि वह गुप्तरीति से अमात्यों के व्यवहार की परीक्षा करे। स्वामी के प्रति पवित्र हृदय एवं अपवित्र हृदय का गुप्त रीति से ज्ञान रखना ही उपधा है। यह उपधा चार प्रकार की होती है—1. धर्मोपधा, 2. अर्थोपधा, 3. कामोपधा और 4. भयोपधा।

विविध धर्मोपधा उपायों से परीक्षित अमात्य को धर्मस्थानीय एवं कण्टकशोधन विषयक कार्यों में, अर्थोपधा द्वारा परीक्षित अमात्य को समाहर्ता तथा सन्निधाता पदों पर, कामोपधा उपाय से परीक्षित अमात्य को विहार एवं अन्त:पुर के कार्यों में तथा भयोपधा से परीक्षित अमात्य को अङ्गरक्षा आदि के कार्यों में नियुक्त करना चाहिए। जो अमात्य सभी उपधाओं की परीक्षा में सर्वश्रेष्ठ रहे, उसे प्रधान अमात्य बनाना चाहिए, परन्तु असफल अमात्यों को खदान, हाथी, जंगल आदि के श्रमसाध्य कार्यों में लगाना चाहिए।

८. गूढपुरुषोत्पत्ति—एकादश-द्वादश अध्यायों में गूढपुरुष अर्थात् गुप्तचरों का विवेचन किया गया है। गुप्तचर प्रथमत: दो प्रकार के होते हैं—स्थायी गुप्तचर और भ्रमणशील गुप्तचर। कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहक तथा तापस रूप में रहने वाले स्थायी गुप्तचर होते हैं। ये एक निश्चित स्थान पर रहकर राज-कार्य करते हैं। सत्री, तीक्ष्ण, रसद और परिव्राजिका रूप में रहने वाले भ्रमण-शील गुप्तचर होते हैं। ये इधर-उधर घूमते हुए राज-कार्य सम्पन्न करते हैं।

९. कृत्याकृत्य पक्ष-विचार—त्रयोदश एवं चतुर्दश अध्यायों में कृत्य पक्ष और अकृत्य पक्ष के सम्बन्ध में बताया गया है। अपने नगर, देश या जनपद के जो व्यक्ति शत्रु के वश में जा सकते हैं, उन्हें कृत्यपक्ष कहा गया है तथा जो व्यक्ति लोभ-लालच आदि से अप्रभावित रहकर शत्रु के वश में नहीं जाते हैं, उन्हें अकृत्यपक्ष बताया गया है। राजा को अपने नगर, देश, जनपद के कृत्यपक्ष और अकृत्यपक्ष की रक्षा करनी चाहिए, ताकि शत्रुओं की भेदनीति नहीं चल सके। साथ ही शत्रु देश (पर विषय) के कृत्य-अकृत्यपक्ष को उपजाप आदि से वश में करना चाहिए। इसके लिए आचार्य कौटिल्य ने अलग-अलग वर्ग के लोगों का उल्लेख कर उन्हें वश में करने का निर्देश दिया है।

१०. मन्त्राधिकार—पञ्चदश अध्याय में विजिगीषु राजा को सर्वप्रथम मन्त्रियों से मन्त्रणा करने का तथा तब कार्यारम्भ का निर्देश दिया गया है। मन्त्रिपरिषद् से मन्त्रणा ऐसे गुप्त स्थान पर करनी चाहिए, ताकि पशु-पक्षी भी मन्त्रणा न सुन सकें। मन्त्रणा के अभिप्राय को मन्त्रिपरिषद् का कोई भी सदस्य अपने हाव-भाव से भी प्रकट न करे। मन्त्रणा के सम्बन्ध में भारद्वाज, विशालाक्ष, पराशरानुयायी तथा पिशुन आदि पूर्वाचार्यों के मतों का उल्लेख कर आचार्य कौटिल्य ने स्वमत की स्थापना की है। मन्त्रिपरिषद् में कितने मन्त्री होने चाहिए, इस सम्बन्ध में बृहस्पति के अनुयायी सोलह, शुक्राचार्य के अनुयायी बीस तथा मनु के अनुयायी बारह की संख्या उचित मानते हैं, किन्तु आचार्य कौटिल्य का मत है कि कार्य करने वालों की सामर्थ्य एवं स्वपक्ष-परपक्ष के चिन्तन की शक्ति के अनुसार मन्त्रियों की संख्या निर्धारित करना उचित रहता है।

११. दूतप्रणिधि—षोडश अध्याय में दूतों के सम्बन्ध में बताया गया है कि दूत तीन प्रकार के होते हैं—निसृष्टार्थ, परिमितार्थ और शासनहर। जिसमें अमात्यों के सभी

गुण हों उसे निसृष्टार्थ, जिसमें तीन चौथाई गुण हों उसे परिमितार्थ और आधे गुणों वाला दूत शासनहर कहलाता है। आचार्य कौटिल्य ने दूत या राजदूत को राजा का मुख तथा परराष्ट्र सम्बन्धी कार्यों में राजा का प्रतिनिधि बताया है। उन्हें सन्देश ले जाने और लाने का अधिकारी माना है। कौटिल्य ने इस अध्याय में दूत के कर्त्तव्य तथा आचरण आदि का विस्तार से विवेचन किया है।

१२. राजपुत्र-रक्षण—सप्तदश अध्याय में राजा की रानियों एवं राजपुत्रों से रक्षा करने का निर्देश दिया गया है। राजा दुर्बुद्धि राजकुमार को राज्याधिकार न सौंपे, उस पर निगरानी रखे तथा आवश्यकता या संकट की आशंका होने पर उसे अपने राज्य या देश से निर्वासित कर दे।

१३. अवरुद्ध-वृत्त एवं अवरुद्ध वृत्ति—अवरुद्ध राजपुत्र का राजा के प्रति तथा राजा का अवरुद्ध राजपुत्र के प्रति व्यवहार का विवेचन अष्टादश अध्याय में किया गया है। राजपुत्र को सदा राजा को सन्तुष्ट रखने का प्रयास करना चाहिए। अमात्य आदि राजपुत्र को राजा के अनुकूल करना चाहिए। यदि वह राजपुत्र अनुकूल नहीं रहे, तो अन्तत: गुप्त उपायों से उसे मरवा देना चाहिए या देश (राज्य-सीमा) से बाहर भेज देना चाहिए।

१४. राजप्रणिधि—एकोनविंश अध्याय में राजा के दैनिक कार्यों का प्रतिपादन किया गया है। राजा को अपने कार्यों का सम्पादन करने के लिए सम्पूर्ण दिन को आठ भागों में विभक्त कर तदनुसार नियमित कार्य करना चाहिए। रात्रि को भी आठ भागों में विभक्त कर समय-विभाग के अनुसार अपने कर्म में प्रवृत्त रहना चाहिए। इस बात का अन्य भी प्रमाद नहीं होना चाहिए।

१५. निशान्तप्रणिधि—विंश अध्याय में राजभवन के निर्माण का विवेचन किया गया है। राजा को चाहिए कि वह वास्तुविद्या में प्रशस्त लोगों के द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर प्राकार, परिखा, द्वार तथा अनेक कक्षों वाला प्रासाद बनवाये। उस प्रासाद में गर्भगृह होवे, मोहन-गृइ (भूल-भुलैया) जैसी बनावट हो तथा यथास्थान अन्त:पुर बनाया जावे। इसी प्रसंग में आचार्य कौटिल्य ने अग्नि, सर्प या विष, गुप्त शत्रु आदि से प्रासाद की रक्षा के उपाय भी बताये हैं।

१६. आत्मरक्षितक (आत्मरक्षा)—एकविंश अध्याय में राजा द्वारा अपनी रक्षा के लिए अपनाये जाने वाले उपायों का निर्देश किया गया है। राजा के साथ विश्वस्त, सुशिक्षित तथा अनुरक्त अंगरक्षक रहें। राजा को भोजन, वस्त्र, माला, प्रसाधन-सामग्री आदि का उपभोग करते समय सावधानी रखनी चाहिए। वह प्रत्येक उपभोग्य सामग्री का परीक्षण करवाने के बाद ही स्वयं उपभोग करे। राजा आप्तप्रधान पुरुष की सुरक्षा में ही वाहन या नाव आदि पर आरोहण करे, कभी अकेला अथवा अपने परिवार के सीमित

सदस्यों के साथ मन्दिर, उत्सव या सामाजिक कार्यक्रम में नहीं जावे। कहीं भी जाते समय उसके साथ कम-से-कम दश सशस्त्र सैनिक रहें। राजा जैसे गुप्तचरों से अन्य सम्भावित बाधाओं का प्रशमन करता है, वैसे ही वह आत्मरक्षा में प्रयत्नशील रहे।

विनयाधिकारिक अधिकरण के इक्कीस अध्यायों में आचार्य कौटिल्य ने सर्वप्रथम अधिकरणों एवं प्रकरणों का निर्देश किया है, फिर सभी विद्याओं एवं विषयों का विवेचन कर राजा के कर्त्तव्यों का विवेचन एवं निर्धारण पूर्वाचार्यों के मतों के उल्लेख के साथ किया है। प्रथम अध्याय के अन्त में अर्थशास्त्र का श्लोकात्मक प्रमाण भी निर्दिष्ट किया है। इस अधिकरण में वर्णित अनेक निर्देशों का अनुसरण वर्तमान काल के शासन-प्रमुखों के द्वारा भी किया जाता है तथा अनेक निर्देश तो अतीव महत्त्वपूर्ण एवं अनुकरणीय दिखाई देते हैं।

अर्थशास्त्र का महत्त्व

कौटिलीय अर्थशास्त्र में मुख्य रूप से राजा या शासक के लिए यह निर्देश दिया गया है कि वह धर्मपरायण, कर्मकुशल, अप्रमादी, विद्वान्, सदसद्विवेकशील तथा समस्त राज्य (प्रजा) को अपने कुटुम्ब के समान मानने वाला हो। प्रजा से जो कर प्राप्त हो, उसका न्यायपूर्वक राजहित में व्यय-विनियोग हो, लोक का कल्याण हो, उसे सभी तरह के भयों से मुक्ति मिले तथा न्याय का शासन स्थापित हो। सभी मन्त्री गुण-सम्पन्न एवं कर्त्तव्यनिष्ठ हों, कर्मचारी-वर्ग शासन में निष्ठा रखे और स्वराज्यरक्षण एवं सर्वतोमुखी अभिवृद्धि राज्य-शासन का प्रधान लक्ष्य रहे। इस तरह आचार्य कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में एक सर्वश्रेष्ठ शासन-तन्त्र की विवेचना का महनीय कार्य किया है। इससे उनके अर्थशास्त्र का सातिशय महत्त्व स्वयमेव सिद्ध हो जाता है।

कौटिलीय अर्थशास्त्र का प्रथम अधिकरण संस्कृत-व्याख्या एवं हिन्दी अनुवाद आदि से संवलित है। सम्पूर्ण कौटिलीय अर्थशास्त्र के प्रामाणिक पाठ की संस्कृत-व्याख्या एवं हिन्दी अनुवाद इसी रूप में संस्कृत-सेवियों को उपलब्ध हो सके, ऐसा प्रकाशक श्री रामशरण नाटाणी का सत्प्रयास है। एतदर्थ अवशिष्ट ग्रन्थांश सुधी पाठकों के कर-कमलों में अतिशीघ्र उपलब्ध हो सकेगा।

-डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी

कौटिलीयमर्थशास्त्रम्

अथ प्रकरणाधिकरणसमुद्देशः

ॐ नमः शुक्रबृहस्पतिभ्याम्।

पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्थापितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम्।

अनुवाद—पृथिवी की प्राप्ति और पालन करने के विषय में प्राचीन आचार्यों ने जितने अर्थशास्त्रों को प्रायः प्रस्थापित (निर्मित या प्रवर्तित) किया है, उन्हें संगृहीत करके यह अर्थशास्त्र रचा गया है।

संस्कृत-व्याख्या—पृथिव्याः = भूमेः, लाभे = उपलब्धौ, पालने च = रक्षणे प्रजापालनकर्मणि च, पूर्वाचार्यैः = प्राचीनशास्त्रकारैः शुक्रबृहस्पत्यादिभिः, यावन्ति अर्थशास्त्राणि = अर्थे नाम वृत्तिर्वर्तनं स्थितिः, तस्याः शास्त्राणि, राजनीतिविषयकशास्त्राणि, प्रस्थापितानि = शास्त्रानुशीलनपूर्वकं स्वोपज्ञया निर्मितानि, प्रायशः = भूयशः, तान्येव संहृत्य = संकलय्य, एकम् = समस्तविषयैकभूतम् इदमर्थशास्त्रम् = राजनीतिशास्त्रम्, कृतम् = मया कौटिल्येन रचितम्।

विशेष—१. आचार्य कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में सर्वप्रथम मांगलिक शब्द 'ॐ' का प्रयोग कर शुक्राचार्य और बृहस्पति को नमस्कार किया है, क्योंकि ये दोनों राजनीतिविषयकशास्त्र के प्रमुख और प्रकाण्ड पौराणिक आचार्य माने जाते हैं। राजनीति या राजनय से सम्बन्धित विषय होने से इन दोनों आचार्यों को प्रणति सर्वथा उचित है।

२. यहाँ कौटिल्य ने स्वयं स्वीकार किया है कि पूर्वाचार्यों ने जिन अर्थशास्त्रों का प्रणयन किया, उन्हीं का सार लेकर यह अर्थशास्त्र रचा गया है। इससे यह अर्थशास्त्र स्वकल्पित न होकर पूर्वाचार्य-परम्परा से परिपुष्ट सिद्ध होता है तथा इसके परिशीलन से पूर्वाचार्यों की ज्ञानचेतना का सरलता से परिचय मिल जाता है।

तस्यायं प्रकरणाधिकरणसमुद्देशः।

अनुवाद—इस (अर्थशास्त्र) का यह प्रकरणों और अधिकरणों का निरूपण है।

संस्कृत-व्याख्या—तस्य = अर्थशास्त्रस्य, अयं प्रकरणाधिकरणसमुद्देशः = प्रकरणानां चाधिकारणानां च, तयोः समुद्देशः = संक्षेपेण निर्देशको निरूपको वा वर्तते। उद्देशस्तु

नाममात्रेण वस्तुसङ्कीर्तनं भवति। अत्रापि द्वयोः प्रकरणाधिकरणयोः कथनमात्रमेव। प्रक्रियन्ते प्रकर्षेण व्युत्पाद्यन्ते एष्वर्था इति प्रकरणानि, अधिक्रियन्ते विषयीक्रियन्ते एषु प्रकरणानीति अधिकरणानि।

विशेष—ग्रन्थ के प्रारम्भ में वर्ण्य-वस्तु का निर्देश करना आवश्यक है। प्रस्तुत ग्रन्थ में भी उद्देश्य-कथन से प्रकरणों एवं अधिकरणों का उल्लेख कर इसके विषय-विभाग आदि की सूचना दी गई है, ताकि इससे राजनीतिशास्त्र के जिज्ञासुओं की इस शास्त्र में प्रवृत्ति हो सके।

प्रथमोऽध्यायः

अथ प्रथममधिकरणम्

विद्यासमुद्देशः ॥ १ ॥

अनुवाद—विद्या-विषय या विद्याओं का निरूपण।

संस्कृत-व्याख्या—विद्यानाम् = आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च चतसृणां विद्यानाम्, समुद्देशः = निरूपणमत्र वर्तते।

विशेष—प्रथम अधिकरण में राजवृत्ति के अन्तर्गत चार प्रकार की विद्याओं का निरूपण किया गया है। वे चार विद्याएँ हैं- आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति।

वृद्धसंयोगः ॥ २ ॥

अनुवाद—वृद्ध लोगों की संगति।

संस्कृत-व्याख्या—वृद्धानाम् = विद्यावृद्धानां वयोवृद्धानां च, संयोगः = संगतिः यतो हि वृद्धसंयोगाभावे विद्याः सम्प्राप्तुं न शक्याः।

विशेष—विद्याओं का समुचित ज्ञान एवं प्रयोग वयोवृद्ध एवं विद्यावृद्ध विद्वानों पर निर्भर करता है। अत एव उन लोगों की संगति करनी चाहिए।

इन्द्रियजयः ॥ ३ ॥

अनुवाद—इन्द्रियों को जीतना।

संस्कृत-व्याख्या—इन्द्रियाणाम् = समस्तज्ञानकर्मेन्द्रियाणाम्, जयः = विजयः, विजितेन्द्रियो वा भवितव्यम्। वृद्धसंयोगश्च इन्द्रियजयमन्तरेण न लभ्यः।

विशेष—विद्या एवं विनय इन्द्रिय-विजय के बिना सम्भव नहीं हो सकता। अतः समस्त ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रियों तथा मन को वश में रखना आवश्यक है। काम, क्रोध, मद, मोह, मान, लोभ आदि को भी तभी जीता जा सकता है। इन्द्रियों को वश में रखना ही इन्द्रियजय है।

अमात्योत्पत्तिः ॥ ४ ॥

अनुवाद—अमात्यों की उत्पत्ति अथवा नियुक्ति।

संस्कृत-व्याख्या—अमात्यानाम् = स्वसहयोगिविश्वस्तजनानाम्, उत्पत्तिः = लाभो नियुक्तिर्वा विधेयः। यतो हि राजा वृद्धसंयोगे जितेन्द्रिये वापि सहायाभावे कार्यं साधयितुं क्षमो न भवति।

विशेष—सहयोगी के रूप में राजा अमात्यों को नियुक्त करे, जो कि विद्या, बुद्धि एवं चरित्र आदि से सुसंस्कारित हों। अमात्य सहपाठी या अनुयायी व्यक्ति हो सकता है। 'उत्पत्ति' का आशय उपनयन संस्कार की तरह वह व्यक्ति श्रेष्ठ संस्कारों से द्विजत्व को प्राप्त हो, तभी अमात्य बनाया जा सकता है।

मन्त्रिपुरोहितोत्पत्तिः ॥ ५ ॥

अनुवाद—मन्त्री और पुरोहित की प्राप्ति अथवा नियुक्ति।

संस्कृत-व्याख्या—मन्त्री च पुरोहितश्च तयोः = द्वयोः सहकारिणौ, उत्पत्तिः = नियुक्तिः स्यात्। शान्तिकपौष्टिककर्मानुष्ठानाय मन्त्रिपुरोहिताः कर्त्तव्या इति।

विशेष—१. राजा को अमात्य के अलावा मन्त्री और पुरोहित की नियुक्ति करनी चाहिए।

२. मन्त्री की नियुक्ति से पूर्व उसके आचरण, चरित्र, निवासस्थान, बुद्धि आदि की परीक्षा करनी चाहिए। पुरोहित को भी उच्च कुलोत्पन्न, विद्वान् तथा सुसंस्कारित ब्राह्मण होना चाहिए।

उपधाभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानाम् ॥ ६ ॥

अनुवाद—गुप्त उपायों द्वारा अमात्यों की पवित्रता और अपवित्रता का परीक्षण करना।

संस्कृत-व्याख्या—अमात्यानाम् = स्वसहयोगिनाम्, उपधाभिः = धर्मोपधाभिः, शौचाशौचज्ञानम् = पवित्रापवित्रज्ञानं सत्यासत्यज्ञानं वा कर्त्तव्यम्। अमात्यैश्च सर्वप्रकारविशुद्धैर्भाव्यमिति भावः। राज्ञा धर्माद्यैर्यत्परीक्षणं सचिवादीनाममात्यानां वा क्रियते, तदेव शोधनक्रियोपधा उच्यते।

विशेष—१. राजा गुप्त उपायों से अमात्यों की ईमानदारी का परीक्षण करे। इसके लिए इन चार प्रकारों से परीक्षण किया जाता है- धर्मोपधा, अर्थोपधा, कामोपधा और भयोपधा। इनके अन्तर्गत अमात्यों की निष्ठा, निर्लिप्तता, संयम और साहस का समावेश रहता है। राजा द्वारा ऐसा परीक्षण करके ही उचित पदों पर नियुक्त किया जावे। ऐसा शोधन किये बिना अयश एवं मरण मिलता है-'अयशोभिर्दुरालोके कोपधा मरणादृते।' ''धर्मोपधाभिर्विप्रांश्च सर्वाभिः सचिवान् पुनः'' इत्यादि।

गूढपुरुषोत्पत्तिः ॥ ७ ॥

अनुवाद—गुप्तचरों की प्राप्ति अथवा नियुक्ति।

संस्कृत-व्याख्या—गूढपुरुषाणाम् = गुप्तचरजनानाम्, उत्पत्तिः = लाभो निरूपणं वा राज्ञा कर्त्तव्यम्। यतो हि गूढपुरुषमन्तरेण उपधाशुद्धिर्ज्ञातुमशक्येति।

विशेष—पाँच प्रकार के गुप्तचर बताये गये हैं— कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहक तथा तापस। राजा इनका परीक्षण कर नियुक्त करे तथा उनके कार्यों का उचित विभाजन करे।

गूढपुरुषप्रणिधिः ॥ ८ ॥

अनुवाद—गुप्तचरों को भेजना, कार्य में नियुक्त करना।

संस्कृत-व्याख्या—गूढपुरुषाणाम् = गुप्तचरजनानां प्रणिधिः = निर्देशप्रदानपूर्वकं प्रणिधानं तत्तत्कार्येषु स्वामिना नियोजनम्।

विशेष—राजा को गुप्तचरों को उचित कार्यों में नियुक्त करना चाहिए, ताकि वे राजहित एवं राष्ट्रहित का कार्य करें।

स्वविषये कृत्याकृत्यपक्षरक्षणम् ॥ ९ ॥

अनुवाद—अपने देश में करणीय और अकरणीय पक्ष की सुरक्षा।

संस्कृत-व्याख्या—स्वविषये = स्वकीये राज्ये, कृत्याकृत्यपक्षरक्षणम् = कृत्याः शत्रुभेद्याः क्रुद्धादयः, अकृत्याः अभेद्याः सुहृदो लुब्धादयः, तेषां भेदनेन स्वपक्षाणां स्वसंघानां शत्रुपजापाद् रक्षणं संरक्षणं कर्त्तव्यम्।

विशेष—राजा अपने राज्य या देश में गुप्तचरों के माध्यम से अपने प्रति अनुराग रखने वालों तथा विद्वेष रखने वालों का पता लगावे। तत्पश्चात् उनके साथ कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्धारण अथवा साम, दाम, दण्ड एवं भेद का प्रयोग करके राज्य की सुरक्षा करे।

परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः ॥ १० ॥

अनुवाद—दूसरे के देश में कृत्य और अकृत्य पक्ष को मिलना।

संस्कृत-व्याख्या—परविषये = परस्य शत्रुजनानां विषये परराष्ट्रे, कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः = कृत्यानां च अकृत्यानां च पक्षाणामुपग्रहः सम्मेलनं योजनं वा विधातव्यम्।

विशेष—इसमें संकेत किया गया है कि राजा को गुप्तचरों के माध्यम से शत्रुओं के राज्य में भयभीत एवं नाराज लोगों को भड़काकर स्वपक्ष में करना चाहिए। इसी प्रकार शत्रु-राजा में दोष दिखाकर गुणवान् लोगों को अपनी ओर मिलाना चाहिए।

मन्त्राधिकारः ॥ ११ ॥

अनुवाद—मन्त्राधिकार।

संस्कृत-व्याख्या—मन्त्राधिकारः = मन्त्रशक्तेः, अधिकारः = समुचितप्रयोगः समामन्त्रणं स्यात्। स्वराष्ट्ररक्षणं परराष्ट्रहरणमित्येतावद् राज्ञः कर्मसर्वस्वम्, तस्य च मन्त्रायत्तत्वाद् मन्त्राधिकार इति सूत्रम्।

विशेष—राजा देश, काल एवं कार्य के अनुसार मन्त्रियों से मन्त्रणा करे, अथवा मन्त्रशक्ति का समुचित प्रयोग करे और मन्त्रियों की सम्मति का आदर करे।

दूतप्रणिधिः ॥ १२ ॥

अनुवाद—दूतों का भेजना या कार्यों में नियुक्ति।

संस्कृत-व्याख्या—दूतप्रणिधिः = दूतानां त्रिविधस्वरूपाणां गुप्तचराणाम्, प्रणिधिः = प्रणिधानं सम्प्रेषणं नियोजनं च कार्यम्।

विशेष—दूत तीन प्रकार के बताये गये हैं—निसृष्टार्थ, परिमितार्थ तथा शासनहर। ये भी गुप्तचर जैसे ही होते है जो शत्रुदेश की गोपनीय सूचनाएँ एकत्र करते हैं। ऐसे दूतों को राजा द्वारा नियुक्त करना चाहिए।

राजपुत्ररक्षणम् ॥ १३ ॥

अनुवाद—राजपुत्रों की रक्षा।

संस्कृत-व्याख्या—राजपुत्ररक्षणम् = राजपुत्राणां राजकुमाराणां का रक्षणम् = परोपजापादिभ्यः संरक्षणं नियन्त्रणं चापि कर्त्तव्यम्। राजपुत्राः स्वपितरि न द्रोहमाचरेयुः, तथा ते प्रयलेन रक्षणीया इति भावः।

विशेष—राजपुत्र भी राजा को हानि पहुँचा सकते हैं, इसीलिए उन पर नियन्त्रण रखकर अपने संरक्षण में रखना चाहिए।

अवरुद्धवृत्तम् ॥ १४ ॥

अनुवाद—अवरुद्ध नजरबन्द का व्यवहार।

संस्कृत व्याख्या—अवरुद्धवृत्तम् = अवरुद्धस्य नियन्त्रितस्य बन्दीकृतस्य वा राजपुत्रस्य, वृत्तम् = आचरणमपि द्रष्टव्यम्।

विशेष—राजा द्वारा संरक्षित या नियन्त्रित (नजरबन्द) राजकुमार का राज्य के प्रति कैसा आचरण है, इसका भी ध्यान रखना चाहिए।

अवरुद्धे च वृत्तिः ॥ १५ ॥

अनुवाद—अवरुद्ध राजकुमार के प्रति व्यवहार।

संस्कृत-व्याख्या—अवरुद्धे च = नियन्त्रिते दृष्ट्या वा निगडिते राजपुत्रे च, वृत्तिः = राज्ञो व्यवहारः कथं स्यादिति विचारणीयम्।

विशेष—नजरबन्द राजकुमार के व्यवहार से यदि राजा सन्तुष्ट न रहे, तो उस देशनिकाला दे दे अथवा जेल में डाल दे, इत्यादि कार्य का निर्धारण भी राजा को करना चाहिए।

राजप्रणिधिः ॥ १६ ॥

अनुवाद—राजा का कार्य अथवा राजा का चौकन्ना रहना।

संस्कृत-व्याख्या—राजप्रणिधिः = राज्ञः नृपस्य प्रणिधिः = प्रणिधानं स्यात्। 'प्रणिधिः प्रार्थनं चरे' इत्यमरः, 'प्रणिधिरवधानेऽपि' इति हैमः। अत्र 'प्रणिधिः' इत्यनेन नृपस्य सावधानतया व्यवहारोपन्यासो वर्तते।

विशेष—राजा को समस्त राज-कार्य में नियुक्त लोगों के कार्यकलापों के प्रति हमेशा सावधान रहना चाहिए।

निशान्तप्रणिधिः ॥ १७ ॥

अनुवाद—राजभवन का निर्माण।

संस्कृत-व्याख्या—निशान्तप्रणिधिः = निशान्तं गृहं राजभवनं वा, तस्य प्रणिधिः = प्रणिधानं निर्माणं वा कर्त्तव्यम्। 'निशान्तवस्त्यसदनं भवनागारमन्दिरम्' इत्यमरः, 'निशान्तं त्रिषु शान्ते स्यात् क्लीबं तु भवनोषसोः' इति मेदिनी।

विशेष—राजा उपयुक्त स्थान पर तथा सुरक्षित परिवेश में राजभवन या प्रसाद का निर्माण कराये।

आत्मरक्षितकम् ॥ १८ ॥

अनुवाद—आत्मरक्षा का प्रबन्ध।

संस्कृत-व्याख्या—आत्मरक्षितकम् = आत्मनः स्वस्य रक्षितकम् = संरक्षणपरं कार्यमपि करणीयम्। रक्षितमिति भावे क्तः, स्वार्थे च कः।

विशेष—राजा को अपनी संरक्षा का कार्य पूरी सावधानी से करना चाहिए, अर्थात् विषमिश्रित भोजन का ज्ञान, विष देने वाले नौकरों की पहचान तथा लोभ-लालच में अनिष्टाचरण करने वाले सेवकों का विवेचन करना चाहिए।

॥ इति विनयाधिकारिकं प्रथममधिकरणम् ॥

अथ द्वितीयमधिकरणम्

जनपदविनिवेशः ॥ १ ॥

अनुवाद—जनपदों की स्थापना करना।

संस्कृत-व्याख्या—जनपदविनिवेश: = जनपदानां जननिवासस्थानानां विनिवेश: संस्थापनं निर्धारणं च कर्त्तव्यम्। 'नीवृज्जनपद:' इत्यमर:।

विशेष—इस प्रकरण में जनपदों की स्थापना का विवेचन किया गया है। राजा को भौगोलिक परिस्थितियों, बोली-भाषा आदि का ध्यान रखकर जनपदों एवं ग्रामों की सीमाओं का निर्धारण करना चाहिए।

भूमिच्छिद्रविधानम्॥ २॥

अनुवाद—भूमि को उपजाऊ बनाने का विधान।

संस्कृत-व्याख्या—भूमे: = राज्यगतभूभागस्य, छिद्रविधानम् = कृषिकर्मोपयोगनिर्माणमपि कार्यम्। 'भूमिच्छिद्रं कृष्ययोग्ये' ति यादव:।

विशेष—राज्य के भूभाग की अनुपजाऊ अथवा अयोग्य भूमि को उपजाऊ एवं चारागाह, विहारवन, तपोवन आदि के योग्य बनाने का विधान करना इस प्रकरण में निर्दिष्ट है।

दुर्गविधानम् ॥ ३॥

अनुवाद—दुर्गों का निर्माण करना।

संस्कृत-व्याख्या—दुर्गाणाम् = राज्यरक्षणनिमित्तानां दुर्गमभवनानां विधानम् = निर्माणम्।

दुर्गनिवेश:॥ ४॥

अनुवाद—दुर्ग-विनिवेश अथवा दुर्ग की सम्यक् स्थापना।

संस्कृत-व्याख्या—दुर्गस्य = सम्बन्धितभवनानां स्थानानां कोष्ठागाराणां च निवेश: = सम्यग् विनिर्माणमपि कार्यम्।

विशेष—राजा को जनपदों एवं राज्य की रक्षा के लिए चारों दिशाओं में दुर्गों का निर्माण करना चाहिए। उन दुर्गों में राजभवनों, राजमार्गों, जलाशयों तथा विविध आगारों आदि का निर्माण करना इस प्रकरण में विवेचित है।

सन्निधातृनिचयकर्म॥ ५॥

अनुवाद—सन्निधाता (कोषाध्यक्ष) के कार्य।

संस्कृत-व्याख्या—सन्निधाता = कोषाध्यक्ष:, धनादिकानां विविधद्रव्याणां संग्रहकर्त्ता, तस्य निचयकर्म = धनादिरक्षणव्यापार:।

विशेष—दुर्ग में धन-धान्य, शस्त्रादि का संग्रह करने वाला हो, विशेष रूप से मुद्रा का संग्रह करने वाला हो, उसके कार्यों का इस प्रकरण में विवेचन हुआ है।

समाहर्तृसमुदयप्रस्थापनम् ॥ ६ ॥

अनुवाद—समाहर्त्ता का करसंग्रह का कार्य।

संस्कृत-व्याख्या—समाहर्त्ता = करसंग्राहकः, सर्वायस्थानेभ्यो राजार्थानां सम्यक् समन्ताद्वा अहार्ता समाहर्ता, तस्य समुदस्य = समुदयो धनोत्थानं तस्य प्रस्थापनम् = मार्गपरिकल्पनं संस्थापनं च।

विशेष—समाहर्त्ता राज्य-शासन की आय का (कर आदि) का संग्रह करने वाला मुख्य अधिकारी होता है। वह अपने संग्रहण-कार्य का, आय-व्यय आदि का उचित विवरण रखे, व्ययानुकूल आय बढ़ावे, इत्यादि का विवेचन इस प्रकरण में किया गया है।

अक्षपटले गाणनिक्याधिकारः ॥ ७ ॥

अनुवाद—अक्षपटल में गाणनिक (लेखा अधीक्षक) के अधिकार-कार्य।

संस्कृत-व्याख्या—अक्षपटले = अक्षा गणनायोग्यानि रूप्यकादीनि, तेषां पटले, आयव्ययलेखारक्षके वा, गाणनिक्याधिकारः = गणनायां नियुक्तो गाणनिक्यस्तस्य गणनाकार्यस्य लेखादिकानां निरीक्षणस्याधिकारः।

विशेष—अक्षपटल का आशय न्यायालय के अर्थात् कानूनी दस्तावेजों के रखने का स्थान तथा आय-व्ययादि की गणना से सम्बन्धित लेखों को रखने का स्थान होता है। गाणनिक अर्थात् लेखाधिकारी राज्य के समस्त आय-व्ययादि का हिसाब लेखापुस्तिकाओं में अंकित करे। राजकीय धन को सुरक्षित रखने का कार्य करे।

समुदयस्य युक्तापहृतस्य प्रत्यायनम् ॥ ८ ॥

अनुवाद—अपहरण (गबन) किये गये धन को पुनः प्राप्त करना।

संस्कृत-व्याख्या—समुदयस्य = राज्यधनस्य, युक्तापहृतस्य = कर्मचारिगणैः समापहृतस्य धनस्य च, प्रत्यायनम् = राज्यकोषागारे पुनः संग्रहणं कार्यम्। युक्तैः कर्मसु नियुक्तैः पुरुषैरपहृतस्य धनस्य पुनः प्रापणमित्यर्थः।

विशेष—लेखाधिकारी अपहरण किये गये धन का, राजस्व का पुनः संग्रह करे, गबन किये गये राजधन को पुनः प्राप्त करे। राजकोष के नाश के जो आठ कारण बताये गये हैं, उन्हें दूर करने के उपाय कर वह दण्डविधान भी करे।

उपयुक्तपरीक्षा ॥ ९ ॥

अनुवाद—उपयुक्त परीक्षा करे।

संस्कृत-व्याख्या—उपयुक्तानाम् = विविधविभागेषु नियुक्तानामधिकारिजनानां राजा समये समये = दोषगवेषणार्थं समुचितपरीक्षणमपि कुर्यात्।

विशेष—राजा को चाहिए कि वह सभी विभागों में नियुक्त उच्चाधिकारियों की परीक्षा करता रहे। राजकीय धन का अपहरण करने वाले कर्मचारियों को उच्च पदों से हटा दे, उनकी सम्पत्ति छीन ले तथा न्यायपरायण कर्मचारियों को सम्मान-पूर्वक उच्च पद प्रदान करे।

शासनाधिकारः ॥ १० ॥

अनुवाद—शासन (आज्ञापत्रों) का निरूपण।

संस्कृत-व्याख्या—शासनस्य = तालपत्रादिषु लिखितस्य नृपनिदेशस्य, अधिकारः = निरूपणम् अस्मिन् प्रकरणे वर्तते।

विशेष—राजा द्वारा राजपत्र पर लिखित आज्ञा अथवा प्रतिज्ञा आदि को शासन कहा गया है। 'अपवादस्तु निर्देशो निदेशः शासनं च सः' इस कोषवचन के अनुसार राजा का निर्देश ही शासन होता है। इस प्रकरण में विविध प्रकार के शासनों का विवेचन हुआ है।

कोशप्रवेश्यरत्नपरीक्षा ॥ ११ ॥

अनुवाद—खजाने में रखने योग्य रत्नों की परीक्षा करना।

संस्कृत-व्याख्या—कोशे = धनागारे, प्रवेश्यानां = स्थापनयोग्यानां रत्नानां मणिमौक्तिकादीनां च परीक्षा = परीक्षणमपि कर्त्तव्यम्।

विशेष—कोषाध्यक्ष को सागार में रखने योग्य रत्नों, मोतियों आदि के मूल्य, प्रमाण, स्वरूप, जाति, संस्कार शुद्धि आदि का ध्यान रखे और को सागार में रखे गये रत्नों की सुरक्षा का प्रबन्ध करे।

आकरकर्मान्तप्रवर्तनम् ॥ १२ ॥

अनुवाद—खानों के कार्यों का संचालन करे।

संस्कृत-व्याख्या—आकरणाम् = स्वर्णरौप्याद्युत्पत्तिस्थानानां यत्कर्मान्तम् = खननं परीक्षणं संरक्षणं च, क्रय-विक्रयादिकं कर्म च, तस्य प्रवर्तनम् = व्यवस्थापनं कार्यम्।

विशेष—इस प्रकरण में बताया गया है कि राजा एवं कोषाध्यक्ष सोने-चाँदी आदि की खानों को परखने, धातुओं की विशुद्धि के उपाय करने तथा खानों से निकले कीमती खनिजों के क्रय-विक्रय आदि की व्यवस्था करे।

अक्षशालायां सुवर्णाध्यक्षः ॥ १३ ॥

अनुवाद—अक्षशाला में स्वर्णाध्यक्ष का कार्य।

संस्कृत-व्याख्या—अक्षः = गण्यं धनं सुवर्णरूप्यादिः, राज्यस्य आयव्ययादिर्न्यायो व्यवहारो वा तस्य शालायाम् = विशिष्टभवने, सुवर्णाध्यक्षः = स्वर्णाध्यक्षः संस्थापनीयः।

विशेष—शासन के आय-व्ययादि के व्यवहार को लेखा-पुस्तिकाओं में सुरक्षित रखने वाला तथा सोने-चाँदी आदि की परख करने वाला जो अधिकारी होता है, उसे सुवर्णाध्यक्ष कहा गया है। वह अक्षशाला में अपने कार्य का सम्पादन करे, इसका इस प्रकरण में वर्णन है।

विशिखायां सौवर्णिकप्रचारः ॥ १४ ॥

अनुवाद—विशिखा (राजमार्ग, सर्राफा बाजार) में सौवर्णिक (सोने-चाँदी के व्यापारियों) के कार्य।

संस्कृत-व्याख्या—विशिखायाम् = आपणवीथ्यां प्रतोल्यां वा 'रथ्या प्रतोली विशिखा' इत्यमरः, सौवर्णिकानाम् = स्वर्णकाराणाम्, प्रचारः = कार्व्यव्यापारो वर्णितः।

विशेष—सर्राफा बाजार अथवा मुख्य राजमार्ग पर स्थित बाजार में स्वर्णकारों के कर्त्तव्य, व्यापार आदि का वर्णन इस प्रकरण में किया गया है। इसी में पाँच प्रकार की चोरियों का भी वर्णन है।

कोष्ठागाराध्यक्षः ॥ १५ ॥

अनुवाद—कोष्ठागार (खाद्यान्न भण्डार) का अध्यक्ष या कोठारी।

संस्कृत-व्याख्या—कोष्ठागारस्य = ब्रीहिगोधूमादि-धान्यभण्डारस्य, अध्यक्ष· = अधिकारी।

विशेष—कोष्ठागार के अध्यक्ष को सभी खाद्यान्नों को किस रूप में संरक्षित रखना चाहिए, आपत्ति-काल के लिए कितना सुरक्षित रखना चाहिए, इसका वर्णन हुआ है।

पण्याध्यक्षः ॥ १६ ॥

अनुवाद—पण्य का अध्यक्ष।

संस्कृत-व्याख्या—पण्यस्य = विक्रेयद्रव्यस्य, 'विक्रेयं पणितव्यं च पण्यम्' इत्यमरः, अध्यक्षः = अधिकारी कथं कार्यं सम्पादयेदित्यस्य वर्णनम्।

विशेष—मालगोदाम में एकत्र वस्तुओं के विक्रय का प्रबन्ध, विदेश व्यापार नीति का संचालन पण्याध्यक्ष करे।

कुप्याध्यक्षः ॥ १७ ॥

अनुवाद—स्वर्ण-रजत से भिन्न अन्य धातुओं का अध्यक्ष।

संस्कृत-व्याख्या—कुप्यानाम् = ताम्रादेर्धातोः, स्वर्णरजतेतरधातूनां सारदारुवेणुवल्लिवल्कादीनां वा अध्यक्षः = अधिकारी।

विशेष—सोना और चाँदी को छोड़कर ताँबा, पीतल, लोहा आदि धातुओं को 'कुप्य' कहते हैं। अमरकोष में कहा गया है-''स्यात्कोषश्च हिरण्यं च हेमरूप्ये कृताकृते।

ताभ्यां यदन्यत्तत्कुप्यम्।" कुप्य का अध्यक्ष जिन धातुओं एवं वस्तुओं का संग्रह करे, उनकी उपयोगिता आदि का वर्णन इस प्रकरण में किया गया हे।

आयुधागाराध्यक्ष: ॥ १८ ॥

अनुवाद—आयुधागार (शस्त्रागार) का अध्यक्ष।

संस्कृत-व्याख्या—आयुधानाम् = बाणखड्गक्षुरकल्पादीनामस्त्राणाम्, अध्यक्ष: = अधिकारी, तेषां ज्ञाता संग्राहकश्च स्यात्।

विशेष—आयुधागार का अध्यक्ष धनुष, बाण, तलवार, क्षुरकल्प आदि आयुधों का ज्ञान रखे तथा उनकी प्रयोग-विधि समझे, इत्यादि का वर्णन इस वर्ग में हुआ है।

तुलामानपौतवम् ॥ १९ ॥

अनुवाद—तौल और मान का निश्चय करना।

संस्कृत-व्याख्या—तुला = उन्मानसाधनं मानम् = कुड्वादि, ताभ्यां पौतवम् = परिच्छेदनं तौलनकार्यम्।

विशेष—तौल और माप विभाग का अध्यक्ष विभिन्न पदार्थों के तौलने एवं मापने के बाँट, तराजू आदि का निर्धारित स्वरूप में निर्माण कराये और उनका निश्चय कराता रहे—यह सब इस प्रकरण में वर्णित है।

देशकालमानम् ॥ २० ॥

अनुवाद—देश और काल का मान।

संस्कृत-व्याख्या—मानाध्यक्ष: देशस्य = भूभागविशिष्टस्य, कालस्य = समयादिकस्य च मानम् = प्रमाणं निदर्शयेत्।

विशेष—इस प्रकरण में मानाध्यक्ष के कार्यों का उल्लेख हुआ है कि वह देश और काल के मान की जानकारी रखे और उसके जानने के उपायों का निर्देश करे।

शुल्काध्यक्ष: ॥ २१ ॥

अनुवाद—शुल्क का अध्यक्ष।

संस्कृत-व्याख्या—शुल्कस्य शुल्कानां वा राजस्वरूपेण प्रदेयधनानां संग्राहकस्तस्य अध्यक्षो भवेत्।

विशेष—शुल्काध्यक्ष शुल्कशाला (चुंगीघर) का निर्माण करा देवे और व्यापारियों से शुल्क वसूल करावे तथा उसके नियमोपनियम निर्धारित करे। इस सबका विवेचन इस प्रकरण में हुआ है।

सूत्राध्यक्ष: ॥ २२ ॥

अनुवाद—सूत का अध्यक्ष।

संस्कृत-व्याख्या—सूत्रस्य = कार्पासादिजस्तन्तोः कर्त्तनं वस्त्रनिर्माणं रज्जुविधानं च भवति, तस्य अध्यक्षः = कारयिता, समस्तं कार्यजातं यन्निर्दिशति तस्य व्यापारः।

विशेष—इस प्रकरण में सूत विभाग का अध्यक्ष सूत कातने, रस्सी बटने, वस्त्र बनाने वाले कारीगरों के नियमों एवं वेतन आदि का जो निर्धारण करता है, जिन उपायों से कार्य-सम्पादन करता है, उसका विवेचन है।

सीताध्यक्षः ॥ २३ ॥

अनुवाद—कृषि-विभाग का अध्यक्ष।

संस्कृत-व्याख्या—सीता = कृषिकर्म, तस्याः अध्यक्षः। 'सीता लाङ्गलपद्धतिः' इत्यमरः। हलसंचालन द्वारा यत्कृषिकर्म क्रियते, तस्याध्यक्षः स्वकार्यं सम्पादयेत्।

विशेष—कृषि के नियमों-उपनियमों का, खेती की उत्तम, मध्यम एवं अधम स्थिति का तथा कृषि रक्षा के उपायों का विवेचन सीताध्यक्ष प्रकरण में किया गया है।

सुराध्यक्षः ॥ २४ ॥

अनुवाद—सुरालय या आबकारी का अध्यक्ष।

संस्कृत-व्याख्या—सुरा = मधुमैरेयादि, तस्याः अध्यक्षः = व्यवस्थापको यत्कार्यं कुर्यात् तस्य विवेचनमपि वर्तते।

विशेष—आबकारी विभाग का अध्यक्ष दुर्ग, जनपद आदि में मदिरा की यथा-योग्य व्यवस्था करे, मदिरा के अनेक भेदों तथा उनके बनाने के उपायों को जाने, इन सब का वर्णन इस प्रकरण में है।

सूनाध्यक्षः ॥ २५ ॥

अनुवाद—वधस्थान का अध्यक्ष।

संस्कृत-व्याख्या—सूनायाः = वधालयस्य, अध्यक्षः = अधिकारी यत्कुर्यात् तस्य निर्देशोऽपि वर्तते।

विशेष—इस प्रकरण में कसाईघर या बूचड़खाना के अधिकारी के कर्त्तव्यों का तथा हानिकारक जीवों को मारने, मांस विक्रय से सम्बन्धित तथा अवध्य पशुओं आदि का विवेचन किया गया है। जंगल, आश्रम को हानि पहुँचाने वाले तथा अन्य प्राणियों को मारने वालों की दण्ड-व्यवस्था भी इसमें वर्णित है।

गणिकाध्यक्षः ॥ २६ ॥

अनुवाद—वेश्यालयों का अध्यक्ष।

संस्कृत-व्याख्या—गणिका = वेश्या, 'वारस्त्री गणिका वेश्या रूपाजीवा' इत्यमरः। तासामध्यक्षः = अधिकारी भवेत्।

विशेष—इस प्रकरण में गणिकाध्यक्ष के अधिकार, गणिकाओं के कार्य तथा उनके कार्य से सम्बन्धित नियमोपनियमों का विवेचन किया गया है। शत्रु राजाओं को विषय-वासनाओं में फँसाने के लिए राजा को गणिकाओं का उपयोग करने का निर्देश भी इसमें वर्णित है।

नावध्यक्ष: ॥ २७ ॥

अनुवाद—नौकाओं का या जल-परिवहन का अध्यक्ष।

संस्कृत-व्याख्या—नावा = जलपोतेन यातायातव्यवस्था क्रियते, तस्य अध्यक्ष: = अधिकारी।

विशेष—इस प्रकरण में जलपोतों के परिवहन की, बन्दरगाहों की तथा परिवहन के किराये आदि की व्यवस्था का वर्णन है। मल्लाहों की असावधानी से डूबी हुई नौकाओं के मृत यात्रियों का हर्जाना देने की व्यवस्था भी नावध्यक्ष द्वारा किये जाने का वर्णन है।

गोऽध्यक्ष: ॥ २८ ॥

अनुवाद—गाय आदि पशुओं के विभाग का अध्यक्ष।

संस्कृत-व्याख्या—गवाम् = पालितपशूनां गोमहिषादीनां विभागस्य अध्यक्ष: = अधिकारी, तस्याधिकारादीनां वर्णनं वर्तते।

विशेष—इस प्रकरण में गाय-बैल आदि के प्रकार, उनकी भोज्य सामग्री, आहार-व्यवस्था आदि का एवं पशुपालन विभाग का वर्णन किया गया है।

अश्वाध्यक्ष: ॥ २९ ॥

अनुवाद—अश्वों (अश्वशाला) का अध्यक्ष।

संस्कृत-व्याख्या—अश्वानाम् = हयानाम् अध्यक्ष: = अधिकारी, अश्वशालाध्यक्ष:, तत्कर्त्तव्यवर्णनमत्र वर्तते।

विशेष—अश्वशाला का अधिकारी उत्तम घोड़ों की परख करे, घोड़ों की विभिन्न प्रकार की चालों का ज्ञान रखे, अश्वशाला की निर्माण नियमानुसार करे, इत्यादि विविध बातों का वर्णन इस प्रकरण में हुआ है।

हस्त्यध्यक्ष: ॥ ३० ॥

अनुवाद—हाथियों (गजशाला) का अध्यक्ष।

संस्कृत-व्याख्या—हस्तिशालाया: = गजशालाया:, अध्यक्ष: = अधिकारी, तस्य वर्णनमस्मिन् शीर्षके वर्तते।

विशेष—इस प्रकरण में हाथियों के लिए गजशाला निर्माण की विधि, हाथियों के स्नान, आहार आदि का विवरण, हाथियों की सात प्रकार की शोभा आदि का विवेचन किया गया है।

रथाध्यक्षः ॥ ३१ ॥ पत्त्यध्यक्षः ॥ ३२ ॥ सेनापतिप्रचारः ॥ ३३ ॥

अनुवाद—रथसेना का अध्यक्ष। पैदल सेना का अध्यक्ष। सेनापति का कार्य-व्यापार।

संस्कृत-व्याख्या—रथानां = रथारूढसैन्यस्य देवरथादीनां वा अध्यक्षः = घटनाद्यधिकर्त्ता। पत्तिः = पदातिसेना 'पदातिपत्तिपदगपादातिकपदाजयः' इत्यमरः। तस्याः अध्यक्षः = अधिपतिः। सेनापतिः = वाहिनीपतिः, तस्य प्रचारः = कार्यव्यापारश्चात्र प्रकरणे वर्णितमस्ति।

विशेष—रथसेना के अध्यक्ष के कार्य, पैदल सेना के अध्यक्ष के कार्य और सेनापति के कार्यों का वर्णन एक ही अध्याय में किया गया है।

मुद्राध्यक्षः ॥ ३४ ॥ विवीताध्यक्षः ॥ ३५ ॥

अनुवाद—मुद्रा विभाग का अध्यक्ष। चरागाह का अध्यक्ष।

संस्कृत-व्याख्या—मुद्रा = राजचिह्नं राजनामधेयप्रतिमादिलक्षणं यच्छासनपत्रादौ दीयते, तासां मुद्राणाम् अध्यक्षः, विवीतस्य = तृणजलयुक्तस्य चरभूमेः, अध्यक्षः = विभागप्रमुखः, तस्य कर्त्तव्यवर्णनमत्र वर्तते।

विशेष—मुद्रा विभाग के अध्यक्ष का कार्य इसमें वर्णित है। वह एक निश्चित कर लेकर नगर से बाहर जाने वाले अथवा नगर में प्रवेश करने वाले व्यक्ति को राजकीय मुद्राङ्कित पार-पत्र देवे। चरागाह भूमि के अध्यक्ष का कार्य है कि वह वनों की रक्षा करावे तथा वन में परिभ्रमण करने वाले व्यक्तियों को पार-पत्र देवे।

समाहर्तृप्रचारः ॥ ३६ ॥ गृहपतिवैदेहकतापसव्यञ्जनाः प्रणिधयः ॥ ३७ ॥

अनुवाद—समाहर्ता का कार्य। गृहपति, वैदेहक और तापस के वेष में गुप्तचरों की नियुक्तियाँ करना।

संस्कृत-व्याख्या—समाहर्त्ता = राजस्वसंग्रहकर्त्ता राजस्वविभागाध्यक्षो वा, तस्य प्रचारः = कार्यव्यापारः। गृहपतिवैदेहकतापसव्यञ्जनाः = गृहपतिः गृहस्थजनः, वैदेहकः पण्याजीवः, 'वैदेहकः सार्थवाही नैगमो वणिजो वणिक् पण्याजीवो ह्यापणिकः, क्रयविक्रयकश्च' इत्यमरः, तापसः = तापसवेषधारी जनः, तेषां व्यञ्जनाः = छद्मवेषोपेताः, प्रणिधयः = गुप्तचरजना नियोजनीया इत्यपि वर्णितमस्ति।

विशेष—१. राष्ट्र की सरकारी आमदनी अर्थात् आयकर राजस्व आदि का संग्रह करने वाला अधिकारी समाहर्त्ता कहलाता है। इस प्रकरण में समाहर्त्ता के कार्यों, उसके सहायकों एवं कर आदि की वसूली का विवेचन किया गया है।

२. राजा को चाहिए कि वह गृहस्थ, व्यापारी एवं तपस्वियों के वेष में गुप्तचरों की नियुक्ति करे, ताकि यह जान सके कि नागरिकों का आचरण कैसा है। ये गुप्तचर समाहर्त्ता की आज्ञानुसार कार्य करें, इन सब बातों का विवेचन इस प्रकरण में हुआ है।

नागरिकप्रणिधिः ॥ ३८ ॥

अनुवाद—नागरिकों के कार्य।

संस्कृत-व्याख्या—नागरिकाणाम् = नगरे नियुक्ता नागरिकास्तेषां प्रणिधिः = प्रणिधानं सावधानतया व्यापारचिन्तनम्। 'यथार्हवर्णः प्रणिधिरपसर्पश्चरः स्पशः, चारश्च गूढपुरुषश्च' इत्यमरः।

विशेष—इस प्रकरण में नागरिकों के कर्त्तव्यों का तथा नियमों का उल्लंघन करने वालों को दण्ड-विधान का विवेचन किया गया है।

॥ इत्यध्यक्षप्रचारो द्वितीयमधिकरणम् ॥

अथ तृतीयमधिकरणम्

व्यवहारस्थापना ॥ १ ॥ विवादपदनिबन्धः ॥ २ ॥

अनुवाद—मुकदमों या शर्तनामों की स्थापना तथा विवादों पर विचार करना।

संस्कृत-व्याख्या—व्यवहारणाम् = पणानाम्, न्यायालयकार्याणां वा, स्थापना = सञ्चालनादिकं कार्यम्, 'विवादो व्यवहारः स्याद् इत्यमरः।' विवादानाम् = व्यवहाराणां पदनिबन्धः = पदेषु स्थानेषु निचयेषु वा निबन्धः सम्यग्-रूपेण पूर्वोत्तरपक्षात्मना पत्रारोपणपूर्वकं विचारः करणीयः।

विशेष—इन दो वर्गों या विषयों वाले प्रकरण में मुकदमों को कायम करने तथा तत्सम्बन्धी विवादों के निर्णय करने का वर्णन किया गया है। इस कार्य में विविध हेतुओं द्वारा भी वादी-प्रतिवादी के कथनों का समाधान न निकले, तो साक्षियों एवं गुप्तचरों की सहायता से विवादों का निर्णय करना निर्दिष्ट है।

विवाहसंयुक्तम् ॥ ३ ॥

अनुवाद—विवाह-सम्बन्धी विचार।

संस्कृत-व्याख्या—विवाहाः = अष्टविधाः ब्राह्मादयः परिणयाः, तैः समस्तैः संयुक्तम् = तत्सम्बन्धितं कार्यजातम्।

विशेष—१. विवाह-सम्बन्धी विचारों को तीन प्रकरणों में विवेचित किया गया है। प्रथम प्रकरण में स्त्री-धन, स्त्री को पुनर्विवाह का अधिकार तथा पुरुष को पुनर्विवाह का अधिकार वर्णित है।

२. द्वितीय प्रकरण में स्त्री का भरण-पोषण, पति-पत्नी का पारस्परिक द्वेष, अतिचार और अतिचार प्रतिषेध का विवेचन किया गया है। अन्य प्रकरण में परिणीता का निष्पतन, परपुरुष का अनुसरण तथा पुनर्विवाह की स्थिति का विवेचन हुआ है।

दायविभागः ॥ ४॥

अनुवाद—दाय (उत्तराधिकार) का विभाग।

संस्कृत-व्याख्या—दायः = वैवाहिकोपहारांशः पितृपितृव्यादिधनं वा उत्तराधिकारो वा, तस्य विभागः = सामान्यनियमविचारोऽत्र वर्णितम्।

विशेष—इस प्रकरण में उत्तराधिकार के सामान्य नियम, पैतृक वंशपरम्परा से प्राप्त विशेषाधिकार, पुत्र-क्रम से उत्तराधिकारी आदि का तीन अध्यायों में विस्तृत विवेचन किया गया है।

वास्तुकम् ॥ ५ ॥

अनुवाद—भवन-निर्माण आदि का विवेचन।

संस्कृत-व्याख्या—वास्तु = गृहारामक्षेत्रादिकम्, तत्सम्बन्धितमिति स्वार्थे कन्। 'वास्तु स्याद्गृहभूपुर्योर्गृहे सीमसुरङ्गयोः' इति त्रिकाण्डशेषः।

विशेष—१. वास्तु से सम्बन्धित विवेचन तीन अध्यायों में किया गया है।

२. प्रथम में भवन निर्माण द्वितीय में भवन-विक्रय, सीमा-विवाद तथा खेतों की सीमाएँ और

३. तृतीय में रास्तों को रोकना, गाँवों का बन्दोबस्त तथा चरागाहों का प्रबन्ध आदि वर्णित है।

समयस्यानपाकर्म ॥ ६ ॥

अनुवाद—समय (प्रतिज्ञा) का उल्लंघन न करना।

संस्कृत-व्याख्या—समयस्य = नियतप्रतिज्ञातस्य, अनपाकर्म = अपरित्यागकार्यम्।

विशेष—इस प्रकरण में सामूहिक कार्यों में सम्मिलित न होने पर तथा सामाजिक नियमों का उल्लंघन करने पर दण्ड का विधान किया गया है।

ऋणादानम् ॥ ७ ॥

अनुवाद—ऋण लेना।

संस्कृत-व्याख्या—ऋणस्य = उद्धारस्य, आदानम् = ग्रहणं निर्यातनं वा। 'ऋणं पर्युदञ्चनमुद्धारः' इत्यमरः। तत्सम्बद्धो व्यवहारो वर्णितः।

विशेष—इस प्रकरण में ऋण लेना, ब्याज के नियम, गवाहों की साक्षी आदि के विषय में निर्देश किया गया है।

औपनिधिकम् ॥ ८ ॥

अनुवाद—धरोहर (प्रतिभूति) विषयक नियम।

संस्कृत-व्याख्या—उपनिधिः = निक्षेपः, तत्सम्बद्धमनुष्ठानमौपनिधिकम्, निक्षेप-स्थापननिर्यातनविषयकचिन्तनमित्यर्थः।

विशेष—इस प्रकरण में धरोहर रखने के नियम, ऋण लौटाने की अवधि तथा ऋण पर ब्याज लेने के नियमों का विवेचन किया गया है।

दासकर्मकरकल्पः ॥ ९ ॥

अनुवाद—दासों और कर्मकारों (श्रमिकों) के नियम।

संस्कृत-व्याख्या—दासाः = अत्यन्तपारार्थ्यमासाद्य शुश्रूषकाः, कर्मकराः = भृत्यर्थं शुश्रूषकाश्च, तेषां कल्पः = तत्सम्बन्धी विधिः।

विशेष—इस प्रकरण में दासों एवं श्रमिकों से सम्बन्धित नियमों का विवेचन किया गया है। दासों को खरीदने व बेचने का विशिष्ट विधान इसमें वर्णित है तथा श्रमिकों के वेतनादि पर भी विचार किया गया है।

सम्भूयसमुत्थानम् ॥ १० ॥

अनुवाद—व्यक्ति-संघों की साझेदारी से सम्बन्धित नियम।

संस्कृत-व्याख्या—सम्भूयम् = वाणिजकैरन्यैर्वा समुदेत्यारभ्यमाणं कार्यम्, तस्य समुत्थानम् = सम्यग् व्यवस्थापनम्।

विशेष—इस प्रकरण में व्यापारियों अथवा अन्यों के साझेदारी के नियमों को बतलाया गया है।

विक्रीतक्रीतानुशयः ॥ ११ ॥

अनुवाद—क्रय-विक्रय का बयाना या अमानत।

संस्कृत-व्याख्या—विक्रीतम् = मूल्यमादाय दत्तं पण्यम्, क्रीतम् = मूल्यं दत्त्वा गृहीतम्, तयोर्विषये अनुशयः = अनुबन्धः, 'भवेदनुशयो द्वेषे पश्चात्तापानुबन्धयोः' इति विश्वः।

दत्तस्यानपाकर्म ॥ १२ ॥ अस्वामिविक्रयः ॥ १३ ॥ स्वस्वामिसम्बन्धः ॥ १४ ॥

अनुवाद—दान का वचन देकर उल्लंघन करना, पराये धन (वस्तु) को बेचना तथा स्वस्वामिसम्बन्ध।

संस्कृत-व्याख्या—दत्तस्य = धर्माद्यर्थे वाचा दत्तस्य, अनपाकर्म = अपदानम्, दत्तस्यापि पुनर्हरणमुपलक्षणम्, अस्वामी = परद्रव्यव्यवहर्त्ता, तेन कृतो विक्रयः, स्वस्वामी = स्वधनव्यवहर्ता, तस्य सम्बन्धः = तस्य व्यवहारनियमः।

विशेष—उक्त तीनों विषयों का एक ही प्रकरण में विवेचन किया गया है। इसमें दान देने का वचन देकर उसका उल्लंघन करने पर दण्ड-विधान, जिस वस्तु का मालिक स्वयं न होकर भी उसे बेच दे, उस निमित्त दण्ड का विधान और स्वस्वामिसम्बन्ध अर्थात् निरन्तर उपयोग में लायी जा रही वस्तु के न मिलने पर भी उस सम्पत्ति पर भोगने वाले के अधिकार का विवेचन किया गया है।

साहसम्॥ १५॥

अनुवाद—साहस-दण्ड-विधान।

संस्कृत-व्याख्या—साहसम् = सहसा कृतं कर्म साहसं प्रसभकर्म तस्य विधानम्। 'साहसं तु दमो दण्ड:' इत्यमर:।

विशेष—बलात्कार, डकैती, मारधाड़, हत्या आदि बुरे कार्यों में अतिशय प्रवृत्ति रखने वाले व्यक्तियों को दिये जाने वाले दण्ड का नाम साहस-दण्ड है।

वाक्पारुष्यम्॥ १६॥

अनुवाद—वचनों की परुषता।

संस्कृत-व्याख्या—वाचा = कुत्सनभर्त्सनादिना, पारुष्यम् = परुषकर्म, तस्य दण्डविधानम्।

विशेष—इस प्रकरण में किसी की निन्दा करना, गाली देना, धमकाना आदि कठोर वचनों का आचरण करने वाले व्यक्तियों के लिए दण्ड-विधान का विवेचन किया गया है।

दण्डपारुष्यम्॥ १७॥

अनुवाद—दण्ड की कठोरता।

संस्कृत-व्याख्या—दण्डेन = करणेन, पारुष्यम् = परुषकर्म द्रोहो वेति विधानम्।

विशेष—इस प्रकरण के अन्तर्गत मारने-पीटने वाले व्यक्तियों पर दण्ड का विधान वर्णित है।

द्यूतसमाह्वयम्॥ १८॥ प्रकीर्णकानि॥ १९॥

अनुवाद—द्यूत एवं प्राणियों को सताने वालों का दण्ड-विधान तथा प्रकीर्णक।

संस्कृत-व्याख्या—द्यूतम् = अक्षक्रीडा, समाह्वय: = अजकुक्कुटादिप्राणिदेवनं तयो: समाहार: द्यूतसमाह्वयम् तत्सम्बद्धो व्यवहार: प्रकरणेऽस्मिन् वर्णित:। प्रकीर्णकानि = उक्तविवादपदान्तर्गतानि याचितकाद्यदानादिनिमित्तानि विवादपदानि, तान्यत्राभिधीयन्ते।

विशेष—इस प्रकरण में जुआ खेलने वालों तथा पालित-पशुओं को परेशान करने वालों और अवशिष्ट अनेक विषयों पर एक अध्याय में विवेचन किया गया है।

॥ इति धर्मस्थीयं तृतीयमधिकरणम्॥

अथ चतुर्थमधिकरणम्

कारुकरक्षणम् ॥ १ ॥

अनुवाद—शिल्पकारों से (प्रजा व देश की) रक्षा।

संस्कृत-व्याख्या—कारुका: = तक्षायस्कारस्वर्णकारादय:, तेभ्य: कूटकर्मकारिभ्य:, रक्षणम् = प्रजानां देशस्य च रक्षणमत्राभिधीयते।

विशेष—इस प्रकरण में काष्ठकार, तक्षक, खाती, लुहार, सुनार, बुनकर आदि से हुए प्रजा को नुकसान से बचाने तथा इस निमित्त दण्ड-विधान का विवेचन किया गया है।

वैदेहकरक्षणम् ॥ २ ॥

अनुवाद—व्यापारियों से (प्रजाओं की) रक्षा।

संस्कृत-व्याख्या—वैदेहकेभ्य: = वाणिजकेम्य: पौतवापचारिभ्य:, रक्षणम् = प्रजानां रक्षणमित्यर्थ:।

विशेष—इस प्रकरण में व्यापारियों के द्वारा बेची जाने वाली वस्तुओं के मूल्य तय करना, बिक्री के नियम निश्चित कर प्रजाजनों को उनसे ठगे जाने से बचाना आदि पर विचार किया गया है।

उपनिपातप्रतीकार: ॥ ३ ॥

अनुवाद—दैवी विपत्तियों से प्रजा की रक्षा करना।

संस्कृत-व्याख्या—उपनिपाता: = दैविकानि महाभयानि, तेषां प्रतीकार: = प्रतिरोध:, प्रजाजनानां रक्षणमत्र चिन्तितम्।

विशेष—इस प्रकरण में दैवयोग से होने वाली आठ तरह की विपत्तियों अग्नि, जल, रोग, अकाल, चूहा, व्याघ्र, सर्प और राक्षसों से प्रजा की रक्षा करने के उपायों का विवेचन किया गया है।

गूढाजीविनां रक्षा ॥ ४ ॥

अनुवाद—गुप्त षड्यन्त्रकारियों से देश की रक्षा।

संस्कृत-व्याख्या—गूढाजीविन: = गूढं वञ्चग्रहणेन स्वामिनं प्रजाश्च वञ्चयन्त आजीवन्ति ते तथाभूता: षड्यन्त्रकारिण:, तेषां रक्षा = तेभ्या देशस्य रक्षणमित्यर्थ:।

विशेष—इस प्रकरण में गुप्त रूप से देश के प्रति षड्यन्त्र करने वाले लोगों से सावधान रहकर देश की रक्षा करने के उपायों का वर्णन है।

सिद्धव्यञ्जनैर्माणवप्रकाशनम् ॥ ५ ॥

अनुवाद—सिद्ध पुरुषों के बहाने प्रलोभन-विद्याओं का प्रकाशन।

संस्कृत-व्याख्या—सिद्धव्यञ्जना: = मुण्डजटिलतापसवेषा धूर्ता:, तै: माणवस्य = प्रलोभनविद्याया:, प्रकाशनम् = चोरादिग्रहणार्थं प्रयोजनम्।

विशेष—इस प्रकरण में सिद्धों का वेश धारण करने वाले गुप्तचरों के द्वारा दुष्ट लोगों को प्रलोभन देकर नियन्त्रित करने का विवेचन किया गया है।

शङ्कारूपकर्माभिग्रह: ॥ ६ ॥

अनुवाद—शङ्का, वस्तु और कार्य के द्वारा चोरों को पकड़ना।

संस्कृत-व्याख्या—शङ्का = सन्देहस्थिति:, आत्मन:, परान् प्रति परेषाणात्मानं प्रति च शङ्का द्विरूपा, रूपम् = समाकारदर्शनम्, कर्म = सन्धिच्छेदादि, एतै: = उपायै:, अभिग्रह: = चौराणां ग्रहणमित्यर्थ:।

विशेष—शङ्का, समान वस्तु तथा सन्धिच्छेद आदि कार्य के माध्यम से शङ्कित पुरुषों की पहिचान, चोरी की वस्तुओं की पहिचान और चोर की पहिचान कर उन्हें नियन्त्रित करने का वर्णन इस प्रकरण में हुआ है।

आशुमृतकपरीक्षा ॥ ७ ॥

अनुवाद—तुरन्त मरे हुए व्यक्ति की परीक्षा करना।

संस्कृत-व्याख्या—आशु = शीघ्रमेव, मृतकस्य = मृतजनस्य, परीक्षा = किमयं स्वयं मृत:, उत परेण मारित इति परीक्षणम्।

विशेष—इस प्रकरण में सद्य: मृत व्यक्ति के शव की परीक्षा के उपाय एवं मृत्यु के कारणों पर विचार करने का निर्देश दिया गया है।

वाक्यकर्मानुयोग: ॥ ८ ॥

अनुवाद:—वचन से चोरी को स्वीकार करना।

संस्कृत-व्याख्या—वाक्यानाम् = उपपत्तियुक्तानां सामवादादीनां कथनै: अनुयोग: = चोरपृच्छा, कर्मभि: = कशाप्रहारादिभि:, अनुयोग: = चोरविचारणा।

विशेष—इस प्रकरण में विविध युक्तियों से परीक्षण करना तथा यातनाओं के द्वारा चोरी का पता लगाना वर्णित है। साथ ही चोर को दण्ड देने का विधान भी विवेचित है।

सर्वाधिकरणरक्षणम् ॥ ९ ॥

अनुवाद—सभी अधिकरणों या विभागों की रक्षा करना।

संस्कृत-व्याख्या—सर्वेषां समेषाम् अधिकरणानाम् = अध्यक्षप्रचाराधिकरणोक्तानामध्यक्षानाञ्च, रक्षणम् = नियमनम्, सर्वेषां विभागानां रक्षणम्।

विशेष—इस प्रकरण में बताया गया है कि समाहर्ता एवं प्रदेष्टा सभी राजकीय विभागों की रक्षा करे, उन विभागों के अध्यक्षों एवं कर्मचारियों पर निगरानी रखे, ताकि प्रजा का और धनादि का रक्षण हो सके।

एकाङ्गवधनिष्क्रय: ॥ १० ॥

अनुवाद—एक अङ्ग का वध या उसकी जगह अर्थदण्ड देना।

संस्कृत-व्याख्या—एकाङ्गम् = हस्तं पादं कर्णमित्येकमेव, तस्य वध: = छेदनम्, निष्क्रय: = वधस्थानीयो धनदण्डश्चतुष्पञ्चाशत्पणादि:।

विशेष—इस प्रकरण में विवेचन किया गया है कि तीर्थस्थानों में रहने वाले उठाईगीरों, जानवर एवं लकड़ी के चोरों, व्यभिचारियों तथा अपनी जातिवर्ण छिपाने वालों का दण्ड-स्वरूप एक अंग नष्ट कर देना चाहिए, अथवा उसके स्थान पर भारी आर्थिक दण्ड देना चाहिए।

शुद्धश्चित्रश्च दण्डकल्प: ॥ ११ ॥

अनुवाद—शुद्धदण्ड एवं चित्रदण्ड का विधान।

संस्कृत-व्याख्या—शुद्ध: = अक्लेशमारणं शुद्धदण्ड:, चित्र: = क्लेशमारणं च चित्रदण्ड:, दण्डकल्प: = अपराधानुरूपदण्डयोग्यो भवति।

विशेष—दण्ड दो प्रकार का होता है—कष्टरहित मारने का शुद्धदण्ड और कष्टपूर्वक मार डालने का चित्रदण्ड। इस प्रकरण में अपराधियों के अपराधानुसार उन्हें शुद्ध या चित्र दण्ड देने का विधान वर्णित है।

कन्याप्रकर्म ॥ १२ ॥

अनुवाद—कन्याओं के साथ दुष्कर्म (कलात्कार या सम्भोग का दण्ड)।

संस्कृत-व्याख्या—कन्याया: = अपुष्पिताया: अविवाहिताया: वा प्रकर्म = सम्भोगादिदूषणकर्म, तत्सम्बद्धो दण्डविधिरत्रोच्यते।

विशेष—इस प्रकरण में कुँवारी कन्याओं के साथ सम्भोग करने अथवा बलात्कार का विविध उपायों से पता लगाकर अपराधी को दण्डित करने का विधान है।

अतिचारदण्ड: ॥ १३ ॥

अनुवाद—अतिचार का दण्ड।

संस्कृत-व्याख्या—अतिचार: = अभक्षभक्षणमगम्यागमनम् इत्येवमादि:, तन्निमित्तो दण्ड: = दण्डविधानमत्र वर्णितम्। 'अतिचारो मर्यादोल्लंघनम्', 'विषयेषु वर्तनमतिचार:' इति दोषाचरणमेव अतिचार इत्युच्यते।

विशेष—इस प्रकरण में अभक्ष्य का भक्षण करने, अपेय को पीने और अगम्य का गमन करने को अतिचार मानकर इस निमित्त दण्ड-विधान का विवेचन किया गया है।

॥इति कण्टकशोधनं चतुर्थमधिकरणम्॥

अथ पञ्चममधिकरणम्

दाण्डकर्मिकम्॥ १॥

अनुवाद—दण्ड सम्बन्धी व्यवस्था।

संस्कृत-व्याख्या—दण्डः = उपांशुवधः, तस्य कर्म = प्रयोगः दण्डकर्म, तस्य भावे तत्सम्बद्धं वा दाण्डकर्मिकमत्रोच्यते।

विशेष—इस प्रकरण में राष्ट्र के प्रति द्रोह करने वाले उच्चाधिकारियों के साथ किये जाने वाले दण्ड-व्यवहार का विवेचन किया गया है।

कोशाभिसंहरणम्॥ २॥

अनुवाद—खजाने का अधिकाधिक संग्रह।

संस्कृत-व्याख्या—कोशस्य = सुवर्णादेः, अभिसंहरणम् = पूर्वत आधिक्येन संग्रहणम्।

विशेष—इस प्रकरण में बताया गया है कि खजाने में अचानक धन कम हो जाने पर विभिन्न प्रकार के कर आदि उपायों के द्वारा धन का संग्रह अधिकाधिक करना चाहिए।

भृत्यभरणीयम्॥ ३॥

अनुवाद—भृत्यों का भरण-पोषण करना।

संस्कृत-व्याख्या—भृत्याः = अनुयायिनः, बुद्धौ शास्त्रे कर्मणि च साहाय्यदायिनः, तेषां भरणं पोषणं तत्सम्बद्धं कार्यमिति भृत्यभरणीयम्।

विशेष—भृत्यों पर राजा को अपनी आय का चौथाई भाग खर्च करना चाहिए। इनमें ऋत्विक्, आचार्य, मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, द्वारपाल, रक्षक, समाहर्ता आदि विविध राजकर्मचारियों के वेतन आदि पर विचार किया गया है।

अनुजीविवृत्तम्॥ ४॥

अनुवाद—अनुजीवियों का राजा के प्रति व्यवहार।

संस्कृत-व्याख्या—अनु जीवितुं शीलः येषामिति अनुजीविनः = मन्त्रिप्रभृतयः सेवकाः, तेषां वृत्तम् = स्वामिनि कथं वर्तितव्यमिति निर्धारणम्।

सामयाचारिकम् ॥ ५ ॥

अनुवाद—व्यवस्था का यथोचित परिपालन।

संस्कृत-व्याख्या—समयः = व्यवस्था, तस्य आचारः = अनुष्ठानम्, समयाचारमधिकृत्य प्रवृत्तं कर्म सामयाचारिकम्।

विशेष—इस प्रकरण में बताया गया है कि सभी विभागाध्यक्षों को राज्य व्यवस्था के पालनार्थ कम खर्च करते हुए राजा को आमदनी की सही राशि बतलानी चाहिए।

राज्यप्रतिसन्धानम् ॥ ६ ॥ एकैश्वर्यम् ॥ ७ ॥

अनुवाद—राज्य का प्रतिसन्धान (राजपुत्रों का अभिषेक) और एकछत्र राज्य की प्रतिष्ठा।

संस्कृत-व्याख्या—राज्यस्य प्रतिसन्धानम् = राजव्यसने सति तत्पुत्रानभिषिच्य राज्यरक्षणम्। एकस्य = एकस्यैव राजपुत्रस्य, ऐश्वर्यम् = एकातपत्रं शासनं कर्त्तव्यम्।

विशेष—इन दोनों प्रकरणों को एक ही अध्याय में रखा गया है। अमात्यों को चाहिए कि वे राजा के आपत्तिग्रस्त होने पर राजपुत्र का अभिषेक करें और एकछत्र राज्य के परिपालन का पूरा प्रयास करें। एक से अधिक राजपुत्रों का शासन मानने पर अराजकता की स्थिति आयेगी, इसीलिए एकैश्वर्य कहा गया है।

॥ इति योगवृत्तं पञ्चममधिकरणम् ॥

अथ षष्ठमधिकरणम्

प्रकृतिसम्पदः ॥ १ ॥

अनुवाद—प्रकृतियों के गुण।

संस्कृत-व्याख्या—प्रकृतयः = स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि, तासां सम्पदः = अपेक्षितगुणपुष्कलता अत्रोच्यते।

विशेष—इस प्रकरण में स्वामी, अमात्य, मित्र, कोश, राष्ट्र, दुर्ग एवं सेना इन सातों राज्य-प्रकृतियों के गुणों का वर्णन किया गया है।

शमव्यायामिकम् ॥ २ ॥

अनुवाद—शान्ति और कर्मनिष्ठा।

संस्कृत-व्याख्या—शमः = कर्मफलोपभोगानां क्षेमसाधनम्, व्यायामः = कर्मारम्भोपकरणानां कर्मयोगघटकः, तदुभयसम्बद्धमित्यर्थः।

विशेष—इस प्रकरण में शान्ति और उद्यमिता या पराक्रम को राज्य के लिए कल्याणकारी मानते हुए उनके सन्धि, विग्रह, यान, आसन, समाश्रय एवं द्वैधीभाव इन छः कारणों का विवेचन किया गया है।

॥इति मण्डलयोनिः षष्ठमधिकरणम्॥

अथ सप्तममधिकरणम्

षाड्गुण्यसमुद्देशः ॥ १ ॥ क्षयस्थानवृद्धिनिश्चयः ॥ २ ॥

अनुवाद—छः गुणों का विवेचन तथा क्षय, स्थान एवं वृद्धि का निश्चय।

संस्कृत-व्याख्या—षड्गुणाः = सन्धिविग्रहयानासनसमाश्रयद्वैधीभावाः, तेषां समाहाररूपेण समुद्देशः = संक्षेपेण प्रतिपादनम्। क्षयः = ह्रासः, स्थानम् = तादवस्थ्यम्, वृद्धिश्च = उपचयश्च, तेषां समेषां निश्चयः = स्वरूपावधारणम्। प्रकरणद्वयमिदमेकस्मिन्नध्याये समावेशितम्।

विशेष—इन दो प्रकरणों को एक ही अध्याय में विवेचित किया गया है। सर्वप्रथम सन्धि-विग्रहादि छः गुणों का विवेचन तथा बाद में क्षय, स्थान एवं वृद्धि का स्वरूप-विवेचन किया गया है।

संश्रयवृत्तिः ॥ ३ ॥

अनुवाद—बलवान् का आश्रय लेना।

संस्कृत-व्याख्या—संश्रयस्य = प्रबलस्य, वृत्तिः = आश्रित्य वर्तनम्।

विशेष—इस प्रकरण में क्षयावस्था में अर्थात् आवश्यकता पड़ने पर अपने से बलवान् का आश्रय लेने का विवेचन है।

समहीनज्यायसां गुणाभिनिवेशः ॥ ४ ॥

अनुवाद—समान, हीन तथा उत्कृष्ट आदि राजाओं का चरित्रानुकरण।

संस्कृत-व्याख्या—समः = शत्रुणा सदृशशक्तिः, हीनः = निकृष्टः, ज्यायान् = उत्कृष्टः, आसु तिसृष्ववस्थासु गुणाभिनिवेशः = गुणस्थापना।

विशेष—इस प्रकरण में अपने समान, निकृष्ट तथा उत्कृष्ट अर्थात् शक्ति में श्रेष्ठ राजाओं में चरित्र का वर्णन कर तदनुरूप आचरण करने को कहा गया है।

हीनसन्धयः ॥ ५ ॥

अनुवाद—हीन राजा के साथ सन्धि।

संस्कृत-व्याख्या—हीनेन = बलवैभवादिना निकृष्टेन राज्ञा सह, सन्धयः = कोशदण्डभूमीः प्रदाय सन्धयः करणीयाः।

विशेष—इस प्रकरण में हीन राजा को कुछ देकर सन्धि कर लेने का विवेचन किया गया है। ये दोनों प्रकरण एक ही अध्याय में वर्णित हैं।

विगृह्यासनम्॥ ६॥ सन्धायासनम्॥ ७॥ विगृह्ययानम् ॥ ८॥

सन्धाययानम्॥ ९॥ सम्भूयप्रयाणम्॥ १०॥

अनुवाद—विगृह करके आसन का अवलम्बन, सन्धि करके आसन का अवलम्बन, विग्रह करके यान का अवलम्बन, सन्धि करके यान का अवलम्बन तथा सम्मिलित रूप में प्रयाण (चढ़ाई) करना।

संस्कृत-व्याख्या—विगृह्य = शत्रुणा प्रतिघातं कृत्वा, आसनम् = स्वविषयस्य स्थितिः। सन्धाय = अभियानशक्तौ परेण सन्धिं कृत्वा, आसनम् = अवस्थानम्। विगृह्य = पार्ष्णिग्रहादिभिः सह विग्रहं कृत्वा, यानम् = परं प्रति अभियानम्। सन्धाय = सन्धिं कृत्वा, यानम् = शत्रुमुद्दिश्य यानम्। सम्भूय = समहीनज्यांयसैः सह सम्मिल्य, प्रयाणम् = शत्रुं प्रति समुदेत्य अभियानम्।

विशेष—उक्त पाँच प्रकरणों का विवेचन एक ही अध्याय में किया गया है। परस्पर हानि पहुँचाने में असमर्थ राजाओं को विग्रह करके अथवा सन्धि करके आसन नामक गुण का अवलम्बन करना चाहिए। इसी प्रकार शत्रुपक्ष की कमजोर स्थिति देकर उससे विग्रह करके अथवा सन्धि करके यान नामक गुण (चढ़ाई) का आश्रय लेना चाहिए। यदि राजा अकेला चढ़ाई (यान) नहीं कर सके, तो उसे समान, हीन तथा बलवान् राजाओं से मिलकर सम्मिलित प्रयाण (चढ़ाई) करना चाहिए।

यातव्यामित्रयोरभिग्रहचिन्ता॥ ११॥

क्षयलोभविरागहेतवः प्रकृतीनाम्॥ १२॥

सामवायिक विपरिमर्शः॥ १३॥

अनुवाद—यातव्य एवं शत्रु के ऊपर प्रयाण की चिन्ता, प्रकृतिमण्डल के क्षय, लोभ और विराग के कारण तथा सामवायिक (सहयोगी) राजाओं का विपरिमर्श या विचार करना।

संस्कृत-व्याख्या—यातव्यः = अरिसम्पद्युक्तो व्यसनी च, अमित्रः = नित्यापकारी शत्रुश्च, तयोः = द्वयोः, सम्प्रधारणाद् यथावश्यकं प्रति, अभिग्रहचिन्ता = यानस्य चिन्तनं कार्यम्। प्रकृतीनाम् = अमात्यादिराजप्रकृतीनाम्, क्षयः = गजवाजिधनादीनामपचयः, लोभः = अतितृष्णा, विरागः = प्रद्वेषः, तदुत्पत्तिहेतवः = कारणभूताः, तेषामपि चिन्तनं कार्यम्। समवायेन चरन्ति सामवायिकाः = विजिगीष्वनुयायिनो राजानः, तेषां विपरिमर्शः = गुरुलघुभावचिन्तनं विधेयं भवति।

विशेष—इन तीन प्रकरणों का एक अध्याय में विवेचन किया गया है। यातव्य और शत्रु के ऊपर चढ़ाई करने की योजना बनाना अथवा इन दोनों में से किसी एक पर पहले

तथा दूसरे पर बाद में चढ़ाई करना, अमात्य-पुरोहित आदि राजप्रकृतिमण्डल के नाश, लोभ और विराग के कारणों का चिन्तन तथा सहयोग करने वाले सामवायिक राजाओं के विभाग का चिन्तन इसमें वर्णित है। पर विजिगीषु राजा को अपने सहयोगियों का लघु-गुरु के अनुसार सम्मान करना चाहिए।

संहितप्रयाणिकम्॥ १४॥

परिपणितापरिपणितापसृताश्च सन्धयः॥ १५॥

अनुवाद—सामूहिक प्रयाण और परिपणित, अपरिपणित एवं अपसृत सन्धियाँ।

संस्कृत-व्याख्या—संहितयोः = अन्योन्यकृतसन्धिकयोः, प्रयाणिकम् = प्रकर्षेण यानम्, परिपणिता = देशकालकार्यव्यवस्थया कृता सन्धिः, अपरिपणिता = तद्विपरीतसन्धिः, अपसृता = कृतोऽपि निमित्तात् स्वपक्षादपसृतेन पुनः सन्धिः, इमे सन्धयोऽत्र व्युत्पाद्यन्ते इत्यर्थः।

विशेष—इस प्रकरण में सामूहिक प्रयाण और देश-काल-कार्य-व्यवस्थादि के अनुरूप सन्धि, इसके विपरीत तथा अपसृत सन्धि का निर्देश किया गया है। देश-काल-कार्यादि की शर्त के साथ की गई सन्धि परिपणित तथा इसके विपरीत अपरिपणित सन्धि कहलाती है।

द्वैधीभाविकाः सन्धिविक्रमाः॥ १६॥

अनुवाद—द्वैधीभाव-विषयक सन्धि और विक्रम।

संस्कृत-व्याख्या—द्वैधीभाविकाः = सन्धिविग्रहोपादानभूताः चतुर्धा द्वैधीभावाः, तत्सम्बद्धाः, सन्धिविक्रमाः साम्प्रतं कथ्यन्ते।

विशेष—इस प्रकारण में द्वैधीभाव का प्रयोग विवेचित है। द्वैधीभाव चार प्रकार का होता है-१. दो बलवान् शत्रुओं के मध्य में केवल वाणी से सन्धि-भाव, २. बलवान् शत्रु से सन्धि और बलहीन से विग्रह, ३. शत्रु के अमात्य, पुरोहित से सन्धि परन्तु उस राजा से विग्रह तथा ४. शत्रु से सन्धि-विग्रह के मिश्रित व्यापार से दुर्ग आदि का आश्रय लेना। इसमें धन देकर सेना लेना या सेना देकर धन लेना आदि का वर्णन है। राजा को दूसरे सामन्तादि राजाओं को मिलाने के लिए द्वैधीभाव के अनुसार सन्धि और विक्रम अपनाना चाहिए।

यातव्यवृत्तिः॥ १७॥ अनुग्राह्यमित्रविशेषाः॥ १८॥

अनुवाद—यातव्य-विषयक विचार और कृपा करने योग्य मित्रों के प्रति कर्त्तव्य।

संस्कृत-व्याख्या—यातव्यः = विजिगीषुः, तस्य वृत्तिः = सामवायिकेषु व्यवहारः, अनुग्राह्याः = साहाय्यदानेनानुग्रहयोग्याः राजानः, मित्रविशेषाः = सुहृज्जनविशेषाः। कानि मित्राणि साहाय्यदानेन अनुग्राह्याणि कानि नेति विचारोऽत्र क्रियते।

विशेष—इन दो प्रकरणों का एक साथ विवेचन है। प्रथम प्रकरण में जिस राजा पर आक्रमण करना अभीष्ट हो, उससे सम्बन्धित व्यवहार का और द्वितीय प्रकरण में अनुग्रह योग्य मित्र राजाओं के सम्बन्ध में विवेचन है। अनुग्रह-योग्य मित्र पाँच तरह के होते हैं—१. शक्यारम्भी, २. कल्याणारम्भी, ३. भव्यारम्भी, ४. स्थिरकर्मा तथा ५. अनुरक्तप्रकृति।

मित्रहिरण्यभूमिकर्मसन्धयः॥ १९॥

अनुवाद—मित्रता से, हिरण्य (धनादि) से, भूमि से तथा कर्म से सन्धि करना।

संस्कृत-व्याख्या—मित्रेण = मित्रत्वभावेन, हिरण्येन = स्वर्णरौप्यादिधनेन, भूम्या, कर्मणा = कार्येण च ये सन्धयः = पणबन्धा भवन्ति तेऽत्र विवेचिताः।

विशेषः—यह प्रकरण चार अध्यायों में विभक्त है—१. मित्र-सन्धि, २. हिरण्य-सन्धि, ३. भूमि-सन्धि तथा ४. कर्म-सन्धि। मित्र, हिरण्य और भूमि की प्राप्ति में सन्धि उत्तरोत्तर लाभकारी रहती है। मिलकर कार्य सम्बन्धी सन्धि करने का नाम कर्मसन्धि है।

पार्ष्णिग्राहचिन्ता॥ २०॥

अनुवाद—पार्ष्णिग्राह (पृष्ठवर्ती राजा या सेनापति) बनकर प्रयाण की चिन्ता करना।

संस्कृत-व्याख्या—पार्ष्णिग्रहः = जिगीषोः पृष्ठभागस्थितः, तस्य राज्ञश्चिन्ता = अनुष्ठानविचारः। 'सैन्यपृष्ठे पुमान् पार्ष्णि पश्चात्पदजिगीषयोः' इति विश्वः, 'पार्ष्णिग्राहस्तु पृष्ठतः' इत्यमरः।

विशेष—इस प्रकरण में बताया गया है कि किसी राजा के पीछे-पीछे होकर अन्य राजा पर आक्रमण करना विचारणीय है, क्योंकि उससे विजय का लाभ तो अग्रगामी राजा को मिलता है, पार्ष्णिग्राह को नहीं मिलता है।

हीनशक्तिपूरणम्॥ २१॥

अनुवाद—दुर्बल राजा का शक्ति-संचय करना।

संस्कृत-व्याख्या—हीनानाम् = अपचितानाम्, शक्तीनाम् = प्रभुमन्त्रोत्साहा-रूपराजशक्तीनाम्, पूरणम् = संवर्धनम्।

विशेष—इस प्रकरण में विवेचन किया गया है कि यदि अनेक राजा मिलकर विजिगीषु राजा पर एक साथ आक्रमण करें, तो विजिगीषु उन राजाओं के मुखिया को धन देकर अपनी ओर करे अथवा उनमें आपस में फूट डाल दे, इस तरह वह अपनी शक्तियों का संवर्धन करे।

बलवता विगृह्योपरोधहेतवः॥ २२॥ दण्डोपनतवृत्तम्॥ २३॥

अनुवाद—बलवान् के साथ विग्रह करके दुर्ग-प्रवेश के कारण तथा दण्डोपनतवृत्त।

संस्कृत-व्याख्या—बलवता = प्रबलेन शत्रुणा सह, विगृह्य = विग्रहं विधाय, उपरोधहेतवः = दुर्गप्रवेशस्य कारणानि वर्णितानि। दण्डेन = बलेन, उपनतम् = अधः-कृतम्, वृत्तम् = विजिगीषोर्बलवन्तं प्रत्यनुष्ठानम्।

विशेष—इस प्रकरण में बलवान् शत्रु के साथ विग्रह करके दुर्ग-प्रवेश के कारणों का तथा विजित शत्रु के साथ बलवान् विजेता के व्यवहार का वर्णन किया गया है।

दण्डोपनायिवृत्तम्॥ २४॥

अनुवाद—दण्डोपनायिवृत्त अर्थात् अधीनस्थ राजाओं के साथ व्यवहार चिन्तन।

संस्कृत-व्याख्या—दण्डेन = बलेन, शत्रुं स्वसमीपमुपनयति = उपनमयति, तदवस्थस्य = विजिगीषोर्नृपस्य वृत्तम्।

विशेष—इस प्रकरण में दण्डोपनायि (अधीनस्थ) राजाओं के प्रति विजेता राजा के करणीय व्यवहार का विवेचन किया गया है।

सन्धिकर्म॥ २५॥ सन्धिमोक्षः॥ २६॥

अनुवाद—सन्धि करना और सन्धि तोड़ना।

संस्कृत-व्याख्या—सन्धेः = शपथादिना पणस्य, कर्म = दृढीकरणम्, सन्धिः = लक्षणया स्वीकृतसन्धिः, तस्य मोक्षः = मोचनमत्र वर्णितम्।

विशेष—इस प्रकरण में बताया गया है कि स्थायी और अस्थायी सन्धि के साथ ही सत्यनिष्ठा और असत्यनिष्ठा पर आधारित सन्धि की स्थितियों को बनाये रखना तथा कारणों को ध्यान में रखकर सन्धि को तोड़ना उचित रहता है।

मध्यमचरितम्॥ २७॥ उदासीनचरितम्॥ २८॥

मण्डलचरितम् ॥ २९॥

अनुवाद—मध्यम चरित, उदासीन चरित एवं मण्डल चरित अथवा प्रकृति का व्यवहार।

संस्कृत-व्याख्या—मध्यमस्य = विजिगीषोः, चरितम् = प्रकृतिः, उदासीनस्य = तटस्थस्य, चरितम् = विजिगीषोरनुष्ठानम्, मण्डलस्य = अरिमित्रलक्षणस्य नृपमण्डलस्य, चरितम् = तत्प्रति विजिगीषोरनुष्ठानम्।

विशेष—ये तीन प्रकरण एक ही अध्याय में विवेचित हैं। मध्यम राजा की प्रकृति, उदासीन राजा की प्रकृति और मण्डल के राजाओं की प्रकृति का इसमें विवेचन किया गया है कि विजिगीषु राजा उनके साथ कैसा व्यवहार करे।

॥इति षाड्गुण्यं सप्तममधिकरणम्॥

अथ अष्टममधिकरणम्

प्रकृतिव्यसनवर्ग: ॥ १ ॥

अनुवाद—प्रकृतियों (अमात्यादिकों) के व्यसन तथा उनके प्रतीकार।

संस्कृत-व्याख्या—प्रकृतय: = स्वाम्यमात्यादय:, व्यसनानि = गुणप्रातिलोम्यादीनि, तेषां वर्ग: = समूहोऽत्राभिधीयते।

विशेष—इस प्रकरण में बताया गया है कि स्वामी, अमात्य आदि राजप्रकृतियों पर दैव और मानुष व्यसनों का प्रभाव पड़ता है। तब प्रधान या अप्रधान किसी भी प्रकृति के व्यसन के कारण शेष प्रकृतियों की भी हानि होती है। इसलिए जिस प्रकृति पर व्यसन आवे, उसका सद्य: समुचित प्रतीकार करना चाहिए।

राजराज्ययोर्व्यसनचिन्ता ॥ २ ॥

अनुवाद—राजा एवं राज्य के व्यसनों पर विचार।

संस्कृत-व्याख्या—राजा = स्वामी, राज्यम् = अमात्यादिप्रकृतिपञ्चकं द्रव्यप्रकृतिपञ्चकं च, तयोर्व्यसनस्य = विपत्ते:, चिन्ता = सम्प्रधारणम्।

विशेष—प्रकृति का संक्षिप्त स्वरूप राजा और राज्य है। अत: इस प्रकरण में उन दोनों की आपत्तियों के प्रतीकार का विविध प्रकार से विवेचन किया गया है।

पुरुषव्यसनवर्ग: ॥ ३ ॥

अनुवाद—सामान्य पुरुषों का व्यसनवर्ग।

संस्कृत-व्याख्या—पुरुषस्य व्यसनानि = पुरुषप्रभवा दोषा: तेषां वर्ग: = हेतुरूपोऽत्राभिधीयते।

विशेष—काम, कोप, लोभ आदि से अशिक्षित व्यक्ति व्यसनी हो जाते हैं। वे जुआ, मदिरा-सेवन, मृगया, स्त्री-संसर्ग आदि में आकृष्ट रहते हैं, अत: इस प्रकारण में सामान्यजनों के व्यसनों तथा उनके परित्याग का विवेचन किया गया है।

पीडनवर्ग: ॥ ४ ॥ स्तम्भनवर्ग: ॥ ५ ॥ कोशसङ्गवर्ग: ॥ ६ ॥

अनुवाद—पीडनवर्ग, स्तम्भनवर्ग एवं कोशसङ्गवर्ग।

संस्कृत-व्याख्या—पीडनानि = अग्न्युदकादिनिमित्ता: शक्त्यपचया:, तेषां वर्ग: = व्यसनसमूह:, स्तम्भनम् = राजकार्योपरोध:, तद्धेतूनां वर्ग:, कोशस्य = राजार्थस्य, सङ्ग: = अप्रदानम्, तद्धेतुवर्गश्चात्र वर्णितम्।

विशेष—राष्ट्र पर आने वाली दैवी विपत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं—

१. अग्नि, २. जल, ३. व्याधि, ४. दुर्भिक्ष और ५. महामारी। इन्हें पीडनवर्ग कहा जाता है। राजकर्मचारियों द्वारा अथवा अन्य आटविक पुरुषों द्वारा धन का रोका जाना स्तम्भन कहलाता है। इसमें आभ्यन्तर और बाह्य दोनों तरह से धन का स्तम्भन वर्णित है। जब राजकर्मचारियों एवं आटविकों की गलत नीतियों के कारण राजस्व या कर आदि धन खजाने तक नहीं पहुँचता है, तब वह कोशसङ्ग कहलाता है। इनके कारणों तथा प्रतीकार के उपायों का वर्णन इस प्रकरण में हुआ है।

बलव्यसनवर्गः ॥ ७ ॥ मित्रव्यसनवर्गः ॥ ८ ॥

अनुवाद—सेना के व्यसन और मित्रों के व्यसन।

संस्कृत-व्याख्या—बलस्य = चतुरङ्गसैन्यस्य, व्यसनानि = अमानितविमानितादिचतुस्त्रिंशत्प्रकाराः, तेषां वर्गः = समवायः, मित्रस्य = स्वपक्षस्थनृपस्य, व्यसनवर्गः = विपत्तयोऽत्र समुद्दिष्टाः।

विशेष—ये दो प्रकरण एक ही अध्याय में समाविष्ट हैं। इनमें सेना के चौंतीस प्रकार के व्यसनों का तथा मित्रों के व्यसनों एवं उनके परिहार के उपायों का समावेश किया गया है।

॥ इति व्यसनाधिकारिकमष्टममधिकरणम् ॥

अथ नवममधिकरणम्

शक्तिदेशकालबलाबलज्ञानम् ॥ १ ॥ यात्राकालाः ॥ २ ॥

अनुवाद—शक्ति, देश एवं काल के बलाबल का ज्ञान तथा यात्रा-काल।

संस्कृत-व्याख्या—शक्तेर्देशस्य कालस्य च बलाबलस्य = उचितानुचितावसरस्य, ज्ञानमित्यर्थः, यात्रायाः = शत्रुं प्रत्यभियानस्य, कालाः = समया ऋतव इत्यभिधीयन्ते।

विशेष—एक अध्याय में दोनों प्रकरणों का विवेचन किया गया है। इसमें राजा को शक्ति, देश, काल आदि पर विचार करते हुए विजय-यात्रा पर जाने का निर्देश दिया गया है। यात्राकाल को समतल, विषम, जलमय, स्थलमय, अल्पकालीन, दीर्घकालीन आदि परिस्थितियों तथा ऋतुओं के आधार पर विभक्त करने का विवेचन है।

बलोपादानकालाः ॥ ३ ॥ सन्नाहगुणाः ॥ ४ ॥ प्रतिबलकर्म ॥ ५ ॥

अनुवाद—सेना के संग्रह का समय, सैन्य-संगठन तथा शत्रु-सेना से मुकाबला।

संस्कृत-व्याख्या—बलानि = मौलभृतकादीनि षट्, तेषाम् उपादानकालाः = उपयोजनसमयाः, अमुकबलममुकसमये समुयोजयितव्यमित्यर्थः। सन्नाहः = शस्त्रावरणग्रहणम्, तस्य गुणाः = श्रेष्ठत्वप्रकाराः। प्रतिबलस्य = परबलाभिभवसमर्थस्य कर्म = करणप्रकारः।

विशेष—इन तीन प्रकरणों को एक अध्याय में रखा गया है। सेना के मौलबल, भृतकबल, श्रेणीबल, मित्रबल, अमित्रबल और अटवीबल को युद्ध के लिए तैयार करने का विभिन्न सेनाओं गुणों का तथा प्रतिपक्षी सेना से मुकाबला करने के उपायों का इसमें विवेचन किया गया है।

पश्चात्कोपचिन्ता ॥ ६ ॥ बाह्याभ्यन्तरप्रकृतिकोपप्रतीकार: ॥ ७ ॥

अनुवाद—पश्चात्कोप की चिन्ता तथा बाह्य-आभ्यन्तर प्रकृतियों के कोष के प्रतीकार के उपायों का चिन्तन।

संस्कृत-व्याख्या—पश्चात्कोप: = पार्ष्णिग्राहादिकृत: कोप:, तस्य चिन्ता = लाभहानिदृष्ट्या चिन्तनम्। बाह्यप्रकृतय: = राष्ट्रमुख्यान्तपालादय:, आभ्यन्तरप्रकृतय: = मन्त्रिपुरोहितादय:, तासां कोप: = चित्तविकार:, तस्य प्रतीकार: = प्रतिविधानम्।

विशेष—दो प्रकरणों वाले इस अध्याय में पश्चात्कोप की लाभ-हानि की स्थितियों में चिन्ता करना तथा बाह्य-अभ्यन्तर प्रकृतियों के क्रोध के प्रतीकार के उपायों का चिन्तन करना वर्णित है। विजिगीषु राजा के युद्ध में चले जाने पर राजद्रोही एवं आटविक आदि पश्चात्कोप को बढ़ा देते हैं। तब राजा को साम-दामादि से प्रतीकार करना चाहिए।

क्षयव्ययलाभविपरिमर्श: ॥ ८ ॥

अनुवाद—क्षय, व्यय और लाभ का विचार।

संस्कृत-व्याख्या—क्षय: = योग्यराजपुरुषापचय:, व्यय: = हिरण्यधान्यादिनाश:, लाभ: = द्वादशविधादेयादिप्राप्ति:, तेषां विपरिमर्श: = गौरवलाघवसंप्रधारणम्।

विशेष—हाथी-घोड़े एवं राजकर्मचारियों के नाश को क्षय और सोना-चाँदी एवं धान्य आदि के नाश को व्यय कहते हैं। विजिगीषु राजा क्षय और व्यय का ध्यान रखकर युद्ध के लिए प्रयाण करे। इस प्रकरण में लाभ के बारह गुणों एवं विघ्नों का भी विवेचन किया गया है।

बाह्याभ्यन्तराश्चापद: ॥ ९ ॥

अनुवाद—बाह्य तथा आभ्यन्तर विपत्तियाँ।

संस्कृत-व्याख्या—बाह्यापद: = बाह्यराष्ट्रमुख्यान्तपालाद्युत्पादिता विपद:, आभ्यन्तरापद: = मन्त्रिपुरोहिताद्युत्थापिता विपद:, तासां स्वरूपं प्रतिविधानं चात्र वर्णितम्।

विशेष—इस प्रकरण में अन्य राष्ट्रों अथवा देश के आन्तरिक षड्यन्त्रकारियों के द्वारा उपस्थित की गई विपत्तियों के प्रकार तथा उनसे रक्षा के उपायों का वर्णन बताया गया है।

दूष्यशत्रुसंयुक्ता: ॥ १० ॥

अनुवाद—राष्ट्रद्रोही एवं शत्रुओं के द्वारा उत्पन्न आपत्तियाँ।

संस्कृत-व्याख्या—दूष्याः = पौरजानपदास्तन्मुख्याश्च, शत्रवः = सहजकृत्रिमादयः, तत्संयुक्ताः = तदुत्पादिताः आपद इति विशेषार्थः।

विशेष—इस प्रकरण में राष्ट्रद्रोहियों और शत्रुओं द्वारा उत्पन्न की गई दो प्रकार की आपदाओं का अर्थात् दूष्यशुद्धा तथा शत्रुशुद्धा आपत्तियों का विवेचन किया गया है।

अर्थानर्थसंशययुक्ताः ॥ ११ ॥ तासामुपायविकल्पजाः सिद्धयः ॥ ११ ॥

अनुवाद—अर्थ, अनर्थ एवं सन्देह से युक्त विपत्तियाँ तथा उनके प्रतीकार के उपायों से प्राप्त होने वाली सिद्धियाँ।

संस्कृत-व्याख्या—अर्थः = हिरण्यभूम्यादिः, अनर्थः = तन्नाशः शरीरनाशश्च, संशयः = सन्देहोऽर्थप्राणयोः, तैर्युक्ता आपद इत्यर्थः। तासाम् = पूर्वोक्तानामापदाम्, उपायाः = प्रशमार्थाः सामादयः, तेषां विकल्पजाः = प्रयोगभेदजनिताः, सिद्धयः = प्रतीकारा लाभादयो वाऽत्र विवेचिताः।

विशेष—इन दो प्रकरणों को एक अध्याय में रखा गया है। राजा के समक्ष अर्थ-विपत्ति, अनर्थ-विपत्ति तथा अर्थानर्थ की सन्देहास्पद स्थिति में संशय-विपत्ति उपस्थित हो जाती है। इन विपत्तियों के प्रतीकार के उपायों के सिद्ध हो जाते ही उसे सिद्धियाँ प्राप्त करनी चाहिए।

॥ इति अभियास्यत्कर्म नवममधिकरणम् ॥

अथ दशममधिकरणम्

स्कन्धावारनिवेशः ॥ १ ॥

अनुवाद—छावनी का निर्माण।

संस्कृत-व्याख्या—स्कन्धावारस्य = सैन्यावासस्थानस्य, निवेशः = निर्माणविधिः।

विशेष—इस प्रकरण में सेनापति, कारीगर एवं ज्योतिषी (वास्तुविद्) के पारस्परिक परामर्श से छावनी का निर्माण, उसके आकार आदि का विवेचन किया गया है।

स्कन्धावारप्रयाणम् ॥ २ ॥ बलव्यसनावस्कन्दकालरक्षणम् ॥ ३ ॥

अनुवाद—सैन्य (छावनी) का युद्धार्थ गमन तथा विपत्ति एवं आक्रमण के समय सेना की रक्षा।

संस्कृत-व्याख्या—स्कन्धावारस्य = कटकस्य, प्रयाणम् = युद्धार्थगमनम्, बलव्यसनानि = सैन्यविपत्तयः, अवस्कन्दकालाः = दीर्घकान्तारानुदकाद्यध्वगमनकालाः, तेभ्यो रक्षणम् = सैन्यसंरक्षणम्।

विशेष—इस प्रकरण में बताया गया है कि सैन्य के लिए ठहरने योग्य स्थानों पर उपयोगार्थ आवश्यक सामग्री को साथ लेते हुए युद्धार्थ प्रयाण करना चाहिए। अन्य प्रकरण

में आपत्ति एवं शत्रुपक्ष के द्वारा आक्रमण के समय सेना की सुरक्षा के उपायों का विवेचन किया गया है। ये दोनों प्रकरण एक ही अध्याय में वर्णित हैं।

कूटयुद्धविकल्पाः ॥ ४ ॥ स्वसैन्योत्साहनम् ॥ ५ ॥

स्वबलान्यबलव्यायोगः ॥ ६ ॥

अनुवाद—कूटयुद्ध के भेद, अपनी सेना को प्रोत्साहन तथा अपनी व पराई सेना का प्रयोग।

संस्कृत-व्याख्या—कूटयुद्धस्य = कपटयुद्धस्य, विकल्पाः = भेदाः, स्वसैन्यस्य = आत्मयोधानाम्, उत्साहनम् = युद्धोत्साहजननम्, स्वबलस्य = स्वसैन्यस्य, अन्यबलापेक्षया = परसैन्यापेक्षया, व्यायोगः = विशिष्टमायोजनं व्यवस्थापनं व्यूहरचनं वा कार्यमिति विवेचितम्।

विशेष—इन तीन प्रकरणों को एक अध्याय में रखा गया है- शत्रुओं के साथ कूटयुद्ध के प्रकार, अपनी सेना को प्रोत्साहित करने के उपाय तथा शत्रु-सेना की अपेक्षा से अपनी सेना की व्यूहरचना आदि का प्रयोग। इन उपायों से विजिगीषु को सैन्य-प्रयाण में सफलता मिलती है।

युद्धभूमयः ॥ ७ ॥ पत्त्यश्वरथहस्तिकर्माणि ॥ ८ ॥

अनुवाद—युद्ध के योग्य भूमियाँ तथा पदाति, अश्वसेना, रथारूढ़ एवं गजसेना के कार्य।

संस्कृत-व्याख्या—युद्धार्थम् = युद्धानुगुणाः समस्थिराभिकाशादिलक्षणाः, भूमयः = भूभागाः, पत्तिः = पदातिः, अश्वरथहस्तियुक्तानां सैन्यसंघानां च, कर्माणि = व्यापाराः प्रकरणेऽस्मिन् विवेचिताः।

विशेष—इन दोनों प्रकरणों को एक अध्याय में रखा गया है। इनमें युद्ध के लिए समतल, दलदल-रहित, एकदम ठोस इत्यादि भूमि को चयन करने का वर्णन तथा पैदल, घुड़सवार, रथसेना एवं हस्तिसेना के कार्यों का वर्गन किया गया है। इसमें गधों एवं ऊँटों द्वारा खींची जाने वाली गाड़ियों की व्यवस्था करना भी वर्णित है।

पक्षकक्षोरस्यानां बलाग्रतो व्यूहविभागः ॥ ९ ॥

सारफल्गुबलविभागः ॥ १० ॥ पत्त्यश्वरथहस्तियुद्धानि ॥ ११ ॥

अनुवाद—पक्ष, कक्ष एवं उरस्य आदि विशेष व्यूहों का सेना के परिणामानुसार व्यूहविभाग, सार एवं फल्गु बलों का विभाग तथा चतुरंग-सेना (पैदल-अश्व-रथ-हस्तिसेना) का युद्ध।

संस्कृत-व्याख्या—पक्षौ = व्यूहरचनार्थं बलस्य बहिःपुरस्तात्कोट्यौ, कक्षौ = पश्चादन्तःपार्श्वे, उरस्यम् = मध्यम्, एतेषां बलाग्रतः = बलपरिमाणानुरूपेण व्यूहविभागः = व्यूहविधानम्। सारबलस्य = पितृपैतामहत्वादिदण्डसम्पद्युक्तस्य, फल्गुबलस्य = भीरुकबलस्य तद्विपरीतस्य वा, विभागः = विभज्यावस्थायनम्। 'असारं फल्गु' इत्यमरः, 'फल्गुः काकोदुम्बरिके वृक्षे निरर्थकेऽपि च' इति हैमः।

विशेष—इन तीन प्रकरणों को एक अध्याय में रखा गया है। सेनाओं को पक्ष-व्यूह, कक्ष-व्यूह और उरस्य व्यूह के अनुसार रखना चाहिए। इसी प्रकार क्षार एवं फल्गु सेना को अलग-अलग करके युद्धार्थ उनका यथास्थान प्रयोग करना चाहिए। युद्धभूमि में चतुरंगिणी सेना को निर्धारित या निर्दिष्ट विधियों से संस्थापित करना चाहिए।

दण्डभोगमण्डलासंहतव्यूहव्यूहनम्॥ १२॥

तस्य प्रतिव्यूहसंस्थापनम् ॥ १३॥

अनुवाद—दण्डव्यूह, भोगव्यूह, मण्डलव्यूह एवं असंगतव्यूह की रचना करना तथा उक्त दण्डादि व्यूहों के प्रतिव्यूहों की रचना करना।

संस्कृत-व्याख्या—दण्डव्यूहो भोगव्यूहो मण्डलव्यूहः असंहतव्यूहश्च इत्येतेषां प्रकृतिव्यूहानां तद्विकृतिव्यूहानां च व्यूहनम् = रचना, तस्य = दण्डादिव्यूहस्य, प्रतिव्यूहस्य संस्थापनम् = संरचनं कार्यमित्यर्थः।

विशेष—इन दोनों प्रकरणों को एक अध्याय में रखकर बताया गया है कि विजिगीषु राजा को प्रकृति व्यूहों एवं विकृति व्यूहों की रचना करके युद्धभूमि में उनके प्रतिव्यूहों की भी रचना करनी चाहिए।

॥इति साङ्ग्रामिकं दशममधिकरणम्॥

अथ एकादशमधिकरणम्

भेदोपादानानि॥ १॥ उपांशुदण्डः॥ २॥

अनुवाद—भेदक नीति का प्रयोग और उपांशु दण्ड।

संस्कृत-व्याख्या—भेदः = संघविश्लेषोपायः, तस्य उपादानानि = प्रयोगाः, उपांशुदण्डः = निगूढवधः, उपगता अंशवो यत्र, कर्णे किमपि कथयित्वा गुप्तरूपेण दण्डो वधो वेति भावः।

विशेष—इन दोनों प्रकरणों को एक ही अध्याय में रखा गया है। इसमें बताया गया है कि राजा को संघ लाभ होने पर साम, दाम आदि के द्वारा उसका उपभोग करना चाहिए। संघ के राजकुमारों को भड़काकर उन्हें आक्रमण के लिए भेजना चाहिए। बाद में कार्यसिद्ध हो जाने पर उसे प्रकाशित कर देना चाहिए अथवा दण्डित करना चाहिए। गुप्तरूप से कार्य-सम्पन्न करने को ही उपांशुदण्ड कहते हैं।

॥इति संघवृत्तमेकादशमधिकरणम्॥

अथ द्वादशमधिकरणम्

दूतकर्म॥ १ ॥

अनुवाद—दूतों के कार्यों का सम्पादन।

संस्कृत-व्याख्या—दूताः = निसृष्टार्थाः परिमितार्थाः शासनहरा इति त्रिविधाः, तेषां कर्म = व्यापारोऽभिधीयते।

विशेष—यदि बलवान् राजा दुर्बल राजा पर आक्रमण करे तो उसे चाहिए कि वह बलवान् राजा के दुर्ग, छावनी आदि को शस्त्र, विष, अग्नि के द्वारा नष्ट करा दे तथा बाद में सन्धि के लिए अपने दूत भेज दे।

मन्त्रयुद्धम्॥ २ ॥

अनुवाद—मन्त्रयुद्ध।

संस्कृत-व्याख्या—मन्त्रः = प्रज्ञोत्कर्षः, तेन युद्धम्। तच्च शत्रुषड्वर्गवशानेकभूमिपतिनाशोदाहरणादिना शत्रोर्मतिमुपजनय्य वञ्चनम्।

विशेष— इस प्रकरण में बताया गया है कि युद्ध के इच्छुक राजाओं को विभिन्न मन्त्रणाओं के द्वारा समझाना चाहिए। यदि वह सन्धि के लिए राजी न हो तो काम, क्रोधादि के वशीभूत अन्य राजाओं के उदाहरण देकर अमात्य आदि राजप्रकृतियों को कुपित करा देना चाहिए।

सेनामुख्यवधः॥ ३ ॥ मण्डलोत्साहनम्॥ ४॥

अनुवाद—सेनापतियों का वध और राजमण्डल को प्रोत्साहित करना।

संस्कृत-व्याख्या—सेना = चतुरङ्गबलम्, तत्र मुख्याः = सेनापतयः, तेषां वधः = विनाशोपायः। मण्डलम् = मित्रादिराजमण्डलम्, तस्य उत्साहनम् = आत्मरक्षार्थमुद्योजनं कर्त्तव्यमिति वर्णितम्।

विशेष—इन दोनों प्रकरणों को एक अध्याय में रखकर बताया गया है कि गुप्तचरों को चाहिए कि वे किसी तरह शत्रु राजा की सेना के प्रधानों के अन्तरंग बनकर उनको मार डालें तथा मन्त्री आदि राजमण्डल को प्रोत्साहित करके उनके अपने ही लोगों के द्वारा उन पर आक्रमण करा दें। इस तरह के उपाय विजिगीषु राजा को करने चाहिए।

शस्याग्निरसप्रणिधयः॥ ५ ॥ विवधासारप्रसारवधः॥ ६ ॥

अनुवाद—शस्य, अग्नि तथा रसों का गूढ प्रयोग और विवध (धान्य), आसार (मित्र सेना) एवं प्रसार (लकड़ी, घास आदि) का विनाश।

संस्कृत-व्याख्या—शस्याग्निरसानां प्रणिधयः = गूढप्रयोगाः, तथैव च विविधः = पर्याहारः, आसारः = सुहृद्बलम्, प्रसारश्च = वनाद् यवसेन्धनाहर्ता, तेषां वधः = विनाशोऽत्र निर्दिष्टः। 'पर्याहारश्च मार्गश्च विवधौ वीवधौ च तौ' इत्यमरः। 'वीवध' इति पाठोऽपि।

विशेष—दोनों प्रकरणों को एक अध्याय में रखकर बताया गया है कि शस्त्र द्वारा, अग्नि या शराब, पकवान आदि में विष मिलाकर शत्रु-सेना को मार डालना चाहिए। जिस समय विवध (धान्य), मित्रसेना और लकड़ी, घास आदि को किसी तंग रास्ते से ले जाया जा रहा हो, उस समय उसे नष्ट कर दिया जाय।

योगातिसन्धानम् ॥ ७ ॥ दण्डातिसन्धानम् ॥ ८ ॥ एकविजयः ॥ ९ ॥

अनुवाद—कपटपूर्ण उपायों (योग) का अतिसन्धान (प्रयोग), दण्ड का प्रयोग और आक्रमणादि के द्वारा विजयोपलब्धि।

संस्कृत-व्याख्या—योगः = शत्रोरुपरि शिलायन्त्रमोक्षणभित्तिपतनादिः कपटोपायः, तेनातिसन्धानम् = प्रयोगः, दण्डः = वधपरिक्लेशार्थाहरणादिः, तेन अतिसन्धानम् = अभिभवनम्, एकेन = सहायनिरपेक्षेणैव, विजिगीषुणा विजयः = शत्रोरभिभवोऽत्र वर्णितः।

विशेष—इन तीनों प्रकरणों को एक अध्याय में रखकर बताया गया है कि कपटपूर्ण उपायों एवं दण्ड के प्रयोगों के द्वारा तथा आक्रमण के द्वारा विजिगीषु राजा को विजय प्राप्त करनी चाहिए। शत्रुओं के विनाशार्थ अनेक प्रकार के कपटोपाय अपनाने चाहिए।

॥ इत्याबलीयसं द्वादशमधिकरणम् ॥

अथ त्रयोदशमधिकरणम्

उपजापः ॥ १ ॥

अनुवाद—उपजाप करना।

संस्कृत-व्याख्या—उपजापः = भेदः, संहतस्य शत्रोर्द्वैधीकरणम्।

विशेष—राजा को अपने शत्रु के गाँव या नगर पर अधिकार करने के लिए स्वयं को सर्वज्ञ तथा देवता का साक्षात्कार करने वाला बताकर स्वपक्ष को उत्साहित करना और शत्रुओं में बेचैनी फैलाना चाहिए।

योगवामनम् ॥ २ ॥

अनुवाद—कपटोपायों से शत्रु को लोभ में डालना।

संस्कृत-व्याख्या—योगः = मुण्डजटिलादिवेषान्यत्वग्रहणं तेनोपायेन वामनम् = शत्रोर्दुर्गान्निष्क्रामणमत्र निर्दिष्टम्।

विशेष—विजिगीषु राजा को चाहिए कि वह कपटपूर्ण साधु के वेष में चमत्कारिक उपायों के द्वारा शत्रु राजा को लोभ में डालकर मार दे।

अपसर्पप्रणिधिः ॥ ३ ॥

अनुवाद—गुप्तचरों का शत्रु-देश में निवास।

संस्कृत-व्याख्या—अपसर्गाः = गूढपुरुषाः, तेषां प्रणिधिः = शत्रुविषये निवासनमत्र वर्णितम्। 'यथार्हवर्णः प्रणिधिरपसर्पश्च स्पशः, चारश्च गूढपुरुषश्च' इत्यमरः।

विशेष—इस प्रकरण में बताया गया है कि शत्रु राजा के देश में गुप्तचरों को भेजकर वहाँ के लोगों को लालच देना और पूरा भेद जानकर उसे जीतने के उपाय करने चाहिए।

पर्युपासनकर्म ॥ ४ ॥ अवमर्दः ॥ ५ ॥

अनुवाद—शत्रु को घेरने का कार्य तथा उस पर अधिकार करना।

संस्कृत-व्याख्या—परि = परितः परदुर्गम्, उपासनकर्म = सैन्यनिवासव्यापारः, अवमर्दः = परदुर्गग्रहणं कदा कर्त्तव्यमिति प्रकृष्टोपायोऽत्र कथ्यते।

विशेष—इन दोनों प्रकरणों में बताया गया है कि किस प्रकार शत्रु राजा के दुर्ग को घेरना चाहिए और किस प्रकार उस दुर्ग को तोड़कर उसे अपने अधिकार में करना चाहिए।

लब्धप्रशमनम् ॥ ६ ॥

अनुवाद—विजित दुर्ग-देशादि में शान्ति स्थापना।

संस्कृत-व्याख्या—लब्धस्य = विजितस्य शत्रुराज्यदुर्गादेः, प्रशमनम् = विस्रम्भोत्पादनादिना शान्तिस्थापनम्।

विशेष—इस प्रकरण में बताया गया है कि विजिगीषु राजा को शत्रु-राज्य तथा दुर्ग आदि को प्राप्त कर लेने पर अपने गुणों से वहाँ के निवासियों को वश में करके शान्ति-स्थापना करनी चाहिए तथा जनता में विश्वास उत्पन्न करना चाहिए।

॥ इति दुर्गलम्भोपायस्त्रयोदशमधिकरणम् ॥

अथ चतुर्दशमधिकरणम्

परघातप्रयोगः ॥ १ ॥

अनुवाद—शत्रुवध के प्रयोग।

संस्कृत-व्याख्या—परेषाम् = शत्रूणाम्, घातस्य प्रयोगः = वधार्थमौषधप्रयोगः।

विशेष—इस प्रकरण में बताया गया है कि विविध रसायनों से युक्त विषैले धुँओं एवं औषधियों से शत्रुओं का वध कर देना चाहिए।

प्रलम्भनम् ॥ २ ॥

अनुवाद—प्रलम्भन प्रयोग।

संस्कृत-व्याख्या—प्रलम्भनम् = औषधमन्त्रप्रयोगद्वारेण क्षुत्प्रतीकारविरूपकरणादिना शत्रुवञ्चनम्।

विशेष—इस प्रकरण को दो अध्यायों में रखा गया है। एक में विविध औषध अथवा द्रव्यों के प्रयोग से शत्रुओं को बेचैन करना तथा दूसरे में अनिष्टकारक अद्भुत उत्पातों से शत्रुओं को नष्ट करके स्वजनों का उपकार करना वर्णित है।

स्वबलोपघातप्रतीकारः ॥ ३ ॥

अनुवाद—अपनी सेना के उपघात (शत्रुकृत घातक प्रयोगों) का प्रतीकार।

संस्कृत-व्याख्या—स्वबलस्य = स्वसैन्यस्य, उपघातः = परप्रयुक्तविषाम्बुदूषणादिनिमित्तो यः घातकप्रयोगः, तस्य प्रतीकारः = प्रतिरोधोऽत्रोच्यते।

विशेष—इस प्रकरण में अपनी तथा अपनी सेना की रक्षा के लिए राजा को विभिन्न औषधियों का प्रयोग करना तथा विषाक्त जल आदि से पशुओं पर प्रयोग करने का विधान एवं प्रतीकार करना वर्णित है।

॥ इत्यौपनिषदं चतुर्दशमधिकरणम्॥

अथ पञ्चदशमधिकरणम्

तन्त्रयुक्तयः॥ १॥

अनुवाद—अर्थशास्त्र की युक्तियाँ।

संस्कृत-व्याख्या—तन्त्रम् = अर्थशास्त्रम्, तस्य युक्तिः = व्याख्यानोपायभूतो न्यायः, अथवाऽधिकरणविधानादयोऽत्र प्रतिपाद्यते।

विशेष—इस प्रकरण में अर्थशास्त्र की अधिकरणादि बत्तीस प्रकार की युक्तियों का निरूपण किया गया है। अर्थशास्त्र भी अन्य शास्त्रों की तरह धर्म, अर्थ एवं काम-इन तीनों पुरुषार्थों की ओर प्रवृत्त कराता है।

॥ इति तन्त्रयुक्तिः पञ्चदशमधिकरणम्॥

शास्त्रसमुद्देशः पञ्चदशाधिकरणानि सपञ्चाशदध्यायशतं साशीतिप्रकरणशतं षट्श्लोकसहस्राणीति॥

अनुवाद—इस शास्त्र में पन्द्रह अधिकरण, एक सौ पचास अध्याय, एक सौ अस्सी प्रकरण और छह हजार श्लोक हैं।

संस्कृत-व्याख्या—शास्त्रस्य = कौटिलीयार्थशास्त्रस्य समुद्देशः, पञ्चदशसंख्यकानि अधिकरणानि, अध्यायाः पञ्चाशदधिकं शतानि, अशीत्यधिकं शतं प्रकरणम्, षट्सहस्रपरिमितिं च श्लोकयुक्तं वर्तते।

विशेष—इस अर्थशास्त्र को छः हजार श्लोक वाला बताया गया है। यह श्लोक-संख्या अक्षरों की गणना से की गई है। अनुष्टुप् छन्द को श्लोक भी कहते हैं। अनुष्टुप् के प्रत्येक पाद में आठ वर्ण तथा चारों चरणों में बत्तीस अक्षर होते हैं। इस कौटिलीय अर्थशास्त्र के समस्त अक्षरों को गिनकर यदि अनुष्टुप् छन्द में बाँध दिया जाये, तो छः हजार श्लोक बनते हैं। इसीलिए इसका प्रमाण सूत्र-संख्या न बताकर 'षट्श्लोकसहस्राणि' कहा गया है।

सम्पूर्ण अर्थशास्त्र में अधिकरणों, प्रकरणों एवं अध्यायों की उक्त गणना इस प्रकार की जा सकती है-

अधिकरण	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
प्रकरण	१८	३८	१९	१३	७	२	२९	८	१२	१३	२	९	६	३	१
अध्याय	२१	३६	२०	१३	६	२	१८	५	७	६	१	५	५	४	१

सुखग्रहणविज्ञेयं तत्त्वार्थपदनिश्चितम्।
कौटिल्येन कृतं शास्त्रं विमुक्तग्रन्थविस्तरम्॥

अनुवाद—कौटिल्य के द्वारा रचा गया यह शास्त्र (अर्थशास्त्र) सुखपूर्वक ग्रहण करके समझने योग्य, तत्त्वार्थ और पदों के प्रयोग से युक्त एवं व्यर्थ ग्रन्थ-विस्तार से सर्वथा मुक्त है।

संस्कृत-व्याख्या—कौटिल्येन = चाणक्येन, कृतं शास्त्रम् = रचितमिदमर्थशास्त्रम्, सुखं क्लेशसहं ग्रहणं बुद्धिर्येषां ते सुखग्रहणाः = सुकुमारमतयः, तैरपि विज्ञेयम् = विज्ञातुं शक्यम्, तत्त्वमर्थस्य शब्दाभिधेयः, पदं वाचकशब्दः, तत्त्वतोऽर्थतः पदतश्च निश्चितम् = सन्देहरहितं सम्यग् युक्तम्, विमुक्तग्रन्थविस्तरम् = ग्रन्थस्य व्यर्थविस्ताररहितम् सरलमतिजनैरपि सहजतया सुग्राह्यमस्ति।

विशेष—इस अर्थशास्त्र में तत्त्वार्थ और पदों का प्रयोग किया गया है। इसमें व्यर्थ का विस्तार नहीं है। सरल मति बालक भी इसे सुखपूर्वक समझ सकते हैं। इसीलिए यह ग्रन्थ सभी गुणों या विशेषताओं से समन्वित है।

॥इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके राजवृत्तिनिरूपणे प्रथमोऽध्यायः॥

* * *

द्वितीयोऽध्यायः

प्रथमं प्रकरणम्-विद्यासमुद्देशः-आन्वीक्षिकीस्थापना

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः ॥ १ ॥

अनुवाद—आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति-ये चार विद्याएँ हैं।

संस्कृत-व्याख्या—आन्वीक्षिकी = अर्थतत्त्वस्य हेतुभिः परीक्षणमन्वीक्षा, सा प्रयोजनमस्या इति आन्वीक्षिकी हेतुविद्या, त्रयी = ऋग्यजुःसामानि, वार्ता = कृषिः पशुपालनं वणिज्या च, दण्डनीतिः = राजनीतिश्च इति विद्याः = चतस्रो विद्याः।

विशेष—आन्वीक्षिकी हेतुविद्या या आत्मविद्या है। त्रयी के अन्तर्गत ऋग्वेद, यजुर्वेद व सामवेद का समावेश किया जाता है। कृषि, पशुपालन एवं व्यापार आदि का निर्देश करने वाली विद्या का नाम वार्ता है। दण्ड के स्वरूप का प्रतिपादन करने वाली दण्डनीति कहलाती है। इन चारों विद्याओं से धर्म और अर्थ का ज्ञान होता है, इसी विशेषता से इनका विद्यात्व निष्पन्न माना जाता है। कामन्दकीय नीतिसार में कहा भी गया है-

''आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती।
विद्याश्चैताश्चतस्त्रस्स्युः लोकसंस्थितिहेतवः॥''

तथा च-

''आन्वीक्षिक्यां तु विज्ञानं धर्माधर्मौ त्रयी स्थितौ।
अर्थानर्थौ तु वार्तायां दण्डनीत्यां नयानयौ॥''

त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति मानवाः। त्रयीविशेषो ह्यान्वीक्षिकीति॥ २ ॥

अनुवाद—मनु के अनुयायी (मानव) त्रयी, वार्ता और दण्डनीति-इन तीन विद्याओं को मानते हैं। वे आन्वीक्षिकी विद्या का समावेश त्रयी के अन्तर्गत मानते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—मानवाः = मनुशिष्याः, त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च = एतत्त्रितयमेव चेति स्वीकुर्वन्ति। अन्वीक्षिकी त्रयीविशेषः = त्रय्यनुगामितया त्रय्यर्थविचाररूपतया च त्रय्याः प्रकारः, नैव विद्यान्तरम्।

विशेष—मनु के अनुयायी आचार्य आन्वीक्षिकी को अलग से न मानकर उसका अर्न्तभाव त्रयी विद्या में ही कर लेते हैं। उनका कथन कामन्दकीय नीतिसार में इस प्रकार है-

''त्रयी वार्ता दण्डनीतिरिति विद्येति मानवाः।
त्रय्या एव विभागोऽयं सेयमान्वीक्षिकी मता॥''

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
धर्मशास्त्रं पुराणं च त्रयीदं सर्वमुच्यते॥

इस तरह आन्वीक्षिकी एवं त्रयी के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद हैं।

वार्ता दण्डनीतिश्चेति बार्हस्पत्याः।
संवरणमात्रं हि त्रयी लोकयात्राविद इति॥ ३॥

अनुवाद—वार्ता और दण्डनीति ये दो ही विद्याएँ हैं- ऐसा बृहस्पति के अनुयायियों का मत है, क्योंकि त्रयी विद्या तो लोक-व्यवहार जानने वालों के लिए संवरण-मात्र (आजीविका का साधन-मात्र) है।

संस्कृत-व्याख्या—बार्हस्पत्याः = बृहस्पतिशिष्याः, विद्यान्तरत्वाभावे त्रयी दण्डनीतिश्च द्वे विद्ये स्वीकुर्वन्ति। त्रयी लोकयात्राविदः = वार्तादण्डनीत्यनुष्ठानलक्षण-लोकतन्त्रविदुषः संवरणमात्रम् = संवृत्तिसाधनमेव। नास्तिकोऽयमिति लोकनिन्दानिरासार्थं त्रयीपरिग्रहस्य मुख्यं प्रयोजनम्। न तु तस्या विद्यान्तरमित्यभिप्रायः।

विशेष—बृहस्पति के अनुयायी त्रयी को संवरण मात्र कहते हैं। इसका आशय यह है कि त्रयी कोई विद्या नहीं है। इसे इसीलिए विद्या कहा गया है, ताकि इसी को न मानने के कारण कोई उन्हें नास्तिक नहीं कह सके। अर्थात् त्रयी कोई स्वतंत्र विद्या नहीं है। वार्ता और दण्डनीति ये दो ही विद्याएँ हैं। जब त्रयी को अलग से कोई विद्या नहीं माना जाता है, तो उसके अन्तर्गत रहने वाला आन्वीक्षिकी का भी अन्तर्भाव सिद्ध हो जाता है। आजीविका और शिक्षा आदि की दृष्टि से भी वार्ता और दण्डनीति को ही मानना चाहिए। बार्हस्पत्यों के इस मत को कामन्दक ने इस प्रकार उपस्थित किया है-

"वार्ता दण्डनीतिश्च द्वे विद्ये इत्यवस्थिते।
लोकस्यार्थप्रधानत्वाच्छिष्याः सुरपुरोधसः॥"

दण्डनीतिरेका विद्येत्यौशनसाः।
तस्यां हि सर्वविद्यारम्भाः प्रतिबद्धा इति॥ ४॥

अनुवाद—शुक्राचार्य के अनुयायियों का मत है कि केवल दण्डनीति ही एक विद्या है, क्योंकि उसी में सभी विद्याओं का स्थान एवं कारण निहित है।

संस्कृत-व्याख्या—दण्डनीतिरेवेका = दण्डनीतिस्तु एकैव प्राधान्येन, विद्या = विद्याव्यपदेशमर्हति, इति औशनसाः = शुक्राचार्यशिष्याः। हि = यतः, सर्वविद्यारम्भाः = सर्वासां विद्यानामारम्भाः योगक्षेमाः, तस्याम् = दण्डनीत्यां, प्रतिबद्धाः = प्रतिष्ठिताः सन्ति।

विशेष—शुक्राचार्य के अनुयायी दण्डनीति को ही एकमात्र विद्या मानते हैं। क्योंकि संसार के सारे योगक्षेम दण्डनीति से ही सम्पन्न होते हैं और सब उसी के भय से अपने-अपने कार्यों में लगे रहते हैं। कामन्दकीय नीतिसार में कहा गया है-

"एकैव दण्डनीतिस्तु विद्येत्यौशनसी स्थितिः।
तस्यां तु सर्वविद्यानामारम्भाः समुदाहृताः॥"

आगे चतुर्थ अध्याय में भी यही कहा गया है कि-

"आन्वीक्षिकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः।"

चतस्र एव विद्या इति कौटिल्यः।
ताभिर्धर्मार्थौ यद्विद्यात्,तद् विद्यानां विद्यात्वम्॥ ५॥

अनुवाद—आचार्य कौटिल्य का मत है कि चार ही विद्याएँ हैं। उनसे धर्म और अर्थ का ज्ञान होता है, वही विद्याओं का विद्यात्व (यथार्थता) है।

संस्कृत-व्याख्या—चतस्रः = आन्वीक्षिक्याद्यः, एव = त्रित्वादिपक्षव्यवछेदार्थमेवकारः, विद्या इति कौटिल्यः = चाणक्यः स्वीकरोति। ताभिः = चतसृभिः विद्याभिः, धर्मार्थौ यद्विद्यात् = यच्च ज्ञानं वेदनं च भवेत्, तदेव विद्यानाम् = आन्वीक्षिक्यादीनां सर्वासाम्, विद्यात्वम् = यथार्थस्वरूपफलनिरूपणम्।

विशेष—आचार्य कौटिल्य ने स्वमत को प्रकट करते हुए त्रयी, वार्ता, दण्डनीति एवं आन्वीक्षिकी की इन चारों विद्याओं को माना है, क्योंकि इनसे ही धर्म, अर्थ आदि सभी का यथार्थ ज्ञान हो पाता है तथा इनके स्वरूप-फल आदि में भी भिन्नता है।

साङ्ख्यं योगो लोकायतं चेत्यान्वीक्षिकी। धर्माधर्मौ त्रय्याम्।
अर्थानर्थौ वार्तायाम्। नयापनयौ दण्डनीत्याम्॥ ६॥

अनुवाद—सांख्य, योग और लोकायत (नास्तिक दर्शन) ये आन्वीक्षिकी विद्या के अन्तर्गत हैं। इसी प्रकार त्रयी में धर्म और अधर्म, वार्ता में अर्थ और अनर्थ तथा दण्डनीति में नीति और अनीति वर्णित है।

संस्कृत-व्याख्या—साङ्ख्यकम् = कपिलोक्तं प्रकृतिपुरुषविवेचकं शास्त्रम्, योगः = महेश्वरप्रोक्तं प्रत्याहारध्यानधारणादिप्रतिपादकं शास्त्रम्, लोकायतम् = ब्रह्मगार्ग्योक्तं न्यायशास्त्रं नास्तिकदर्शनं वा, एतत्त्रितयमान्वीक्षिकी। धर्माधर्मौ = धर्माधर्मौ उभौ, त्रय्याम् = तस्यामेव फलसूचनम्। अर्थानर्थौ = अर्थः कालबीजवापादिजन्यं फलम्, अनर्थोऽकालबीजवापादिजन्यं फलं वार्तायाम्। नयो योगक्षेमादिसाधकः, अनयस्तु सन्धिविग्रहादिविनाशकः एतौ दण्डनीत्यां वर्णितमस्ति।

विशेष—लोकायत का आशय जैन, चार्वाक एवं बौद्ध मत से है। सांख्य, योग और लोकायत को पूर्वपक्ष के रूप में माना गया है। आन्वीक्षिकी को उत्तरपक्ष में रखकर चारों विद्याओं के स्वरूप-फलादि का निरूपण संक्षेप में किया गया है। कामन्दक ने "आन्वीक्षिक्यां तु विज्ञानं धर्माधर्मौ" इत्यादि (पूर्वोक्त) वर्णन से इन चारों विद्याओं का स्वरूप सरलता से व्यक्त किया है।

बलाबले चैतासां हेतुभिरन्वीक्षमाणान्वीक्षिकी लोकस्योपकरोति, व्यसनेऽभ्युदये च बुद्धिमवस्थापयति, प्रज्ञावाक्यक्रियावैशारद्यं च करोति॥ ७॥

अनुवाद—इन (विद्याओं) की प्रधानता-अप्रधानता (बलाबल) को हेतुपूर्वक स्थापित करने वाली आन्वीक्षिकी विद्या लोक का उपकार करती है, विपत्ति एवं उन्नति में बुद्धि को स्थिर करती है तथा प्रज्ञा, बोलने एवं कार्य करने में सक्षम बनाती है।

संस्कृत-व्याख्या—एतासाम् = त्रय्यादीनां सर्वासां विद्यानाम्, हेतुभिः = उचितकारणैः, अन्वीक्षमाणा = सम्प्रधारयन्ती, आन्वीक्षिकी, लोकस्योपकरोति = उपकारकर्त्री भवति, व्यसने = विपत्तौ, अभ्युदये = उन्नतौ च, बुद्धिम् = मतिम्, अवस्थापयति = अविकृतां करोति, प्रज्ञावाक्यक्रियासु = विचारवचनकर्मसु, वैशारद्यम् = पाटवम्, च करोति = विदधाति।

विशेष—पूर्वोक्त त्रयी, वार्ता और दण्डनीति विद्याओं को भिन्न-भिन्न युक्तियों से प्रधान एवं अप्रधान बतलाती हुई आन्वीक्षिकी विद्या लोक का उपकार करती है, सुख-दुःख में बुद्धि को नियन्त्रित-संयमित रखती है तथा कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार करने, बोलने और कार्य करने की विशिष्ट क्षमता उत्पन्न करती है। इसीलिए आन्वीक्षिकी सभी विद्याओं में प्रधान है तथा इसका स्वरूप सर्वश्रेष्ठ है।

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।
आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षिकी मता॥ ८॥

अनुवाद—आन्वीक्षिकी विद्या सर्वदा सब विद्याओं का प्रदीप, सभी कार्यों का उपाय और सभी धर्मों का आश्रय मानी गई है।

संस्कृत-व्याख्या—आन्वीक्षिकी = हेतुविद्या, सर्वविधानाम् = त्रय्यादीनां सर्वासाम् प्रदीपः = परीक्षणसाधनत्वात्प्रकाशनसाधनम्, सर्वकर्मणाम् = आरम्भादिफलाधिगमरूपाणाम्, उपायः = उत्पादकः, सर्वधर्माणाम् = वैदिकलौकिकानां सर्वेषां धर्माणाम्, शश्वत् = सर्वदा, आश्रयः मता = आश्रयभूता वर्तते। एवञ्च त्रय्यादिविसदृशस्वरूपफलत्वादान्वीक्षिक्या विद्यान्तरत्वं सिद्धं भवति।

विशेष—आन्वीक्षिकी विद्या को सभी विद्याओं को प्रकाशित कराने वाली, सभी कर्मों का उपाय और सभी धर्मों का आश्रय बताने से यह सिद्ध किया गया है कि इसका विशिष्ट महत्त्व है तथा यह सभी साधनों-उपायों को फलीभूत करने में सक्षम है। अतएव विजिगीषु राजा को उसका अवधान करना चाहिए।

॥ इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे विद्यासमुद्देशे
आन्वीक्षिकीस्थापना नाम द्वितीयोऽध्यायः॥

❑❑❑

तृतीयोऽध्यायः

प्रथमं प्रकरणम्—त्रयी स्थापना

सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी। अर्थववेदेतिहासवेदौ च वेदाः।

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दोविचितिर्ज्योतिषमिति चाङ्गानि॥ १॥

अनुवाद—सामवेद, ऋग्वेद और यजुर्वेद इन तीनों को त्रयी कहते हैं। अथर्ववेद और इतिहासवेद वेद कहलाते हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दोविचिति और ज्योतिष ये छः अङ्ग (वेदाङ्ग) हैं।

संस्कृत-व्याख्या—सामर्ग्यजुर्वेदाः = सामवेदः ऋग्वेदो यजुर्वेद इति, त्रयः = त्रिसंख्याकाः सम्मिल्य, त्रयी = त्रयीपदवाच्याः, अथर्ववेदः, इतिहासवेदः = महाभारतादिश्च, वेदाः = वेदपदार्थाः। शिक्षा = वर्णोच्चारणोपदेशकं शास्त्रम्, कल्पः = क्रत्वनुष्ठानोपदेशपदं सूत्रम्, व्याकरणम् = शब्दानुशासनम्, निरुक्तम् = निर्वचनशास्त्रं यास्कप्रणीतम्, छन्दोविचितिः = पैङ्गलादि छन्दशास्त्रम्, ज्योतिषम् = ग्रहगत्यादिप्रतिपादकं च शास्त्रम्, अङ्गानि = वेदाङ्गानि कथ्यन्ते।

विशेष—मूल रूप से ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद-ये तीन वेद ही थे, इन्हें समष्टि रूप में 'त्रयी' कहा जाता है। बाद में अथर्ववेद को चौथा वेद और महाभारतादि इतिहास को पाँचवाँ वेद माना गया। इस प्रकार 'वेदाः' बहुवचन से उक्त पाँचों वेदों का निर्देश हुआ है। इन वेदों के छः अंग बताये गये हैं- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दोविचित और ज्योतिष। ये षड् वेदाङ्ग हैं-

शिक्षा—जिसके द्वारा वर्णों का ठीक-ठीक उच्चारण एवं सन्धि के नियम बताये जाते हैं, उसे शिक्षा नामक वेदाङ्ग कहते हैं।

कल्प—यज्ञानुष्ठान अथवा यज्ञ के विधि-विधान प्रतिपादक शास्त्र को कल्प कहते हैं, जिसमें आश्वलायनादि सूत्रों की गणना की जाती है।

व्याकरण—शब्दों के ज्ञान एवं व्युत्पत्ति कराने वाले शास्त्र को अथवा पाणिनि आदि प्रणीत शब्दानुशासन को व्याकरण कहते हैं।

निरुक्त—वैदिक साहित्य में प्रचलित शब्दों के निर्वचन को निरुक्त कहते हैं।

छन्दोविचिति—छन्दों का विचार करना, पिङ्गलादि प्रणीत छन्दों पर विचार करना और वैदिक छन्दों का विवेक करना छन्दोविचिति है।

ज्योतिष—ग्रह-नक्षत्र विद्या का ज्ञान कराने वाले को ज्योतिष वेदाङ्ग कहते हैं।

एष त्रयीधर्मश्चतुर्णां वर्णानामाश्रमाणां स्वधर्मस्थापनादौपकारिकः॥ २॥

अनुवाद—यह त्रयी में निरूपित धर्म चारों वर्णों एवं चारों आश्रमों को अपने-अपने धर्म में स्थापित करने के कारण उनका (लोक का) उपकारक है।

संस्कृत-व्याख्या—एषः = पूर्वोक्तः, त्रयीधर्मः = त्रय्युपदिष्टो धर्मः, चतुर्णां वर्णानाम् = ब्राह्मणादिवर्णानाम्, आश्रमाणाम् = ब्रह्मचर्याद्याश्रमाणां च, स्वधर्मस्थापनात् = स्वधर्माचरणमुपदिश्य तेषु नियन्त्रणात् स्थापनाद् वा, औपकारिकः = उपकारफलो वर्तते।

विशेष—त्रयी में प्रतिपादित धर्म को वर्णाश्रम-लोक का उपकारक एवं अपने-अपने धर्मों का उपदेशक बताया गया है।

स्वधर्मो ब्राह्मणस्वाध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति। क्षत्रियस्याध्ययनं यजनं दानं शस्त्राजीवो भूतरक्षणं च। वैश्यस्याध्ययनं यजनं दानं कृषिपाशुपाल्ये वणिज्या च। शूद्रस्य द्विजातिशुश्रूषा वार्ता कारुकुशीलकर्म च॥ ३॥

अनुवाद—ब्राह्मण का अपना धर्म अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ करना-यज्ञ कराना, और दान देना एवं दान लेना है। क्षत्रिय का धर्म पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, शस्त्रबल से जीविकोपार्जन करना और प्राणियों की रक्षा करना है। वैश्य का धर्म पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, कृषिकार्य, पशुपालन और व्यापार करना है। शूद्र वर्ण का धर्म ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य की सेवा करना, खेती-पशुपालन-व्यापार करना और कारीगरी, गायन-वादन एवं चारण-भाट आदि का कार्य करना है।

संस्कृत-व्याख्या—ब्राह्मणस्य स्वधर्मः, अध्ययनमध्यापनम् = पठनं पाठनं च, यजनं याजनम् = यज्ञकार्यं सम्पादनं च, दानं प्रतिग्रहः = दानस्य ग्रहणं च। क्षत्रियस्य धर्मः, अध्ययनम् = शास्त्राध्ययनम्, यजनं दानं शस्त्राजीवः = शस्त्रधारणेन जीविका वृत्तिर्वा, भूतरक्षणम् = प्राणिपालनम्। वैश्यवर्णस्य धर्मः अध्ययनं यजनं दानं कृषिपाशुपाल्ये = कृषिः केदारेषु बीजवापपरिकर्मादिविधानं पाशुपाल्यम् = गवाश्वादीनां पोषणचिकित्सादिकर्म, वणिज्या = क्रयविक्रयव्यवहारश्च। शूद्रस्य = अन्त्यजवर्णस्य धर्मः, द्विजातीनाम् = ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां शुश्रूषा = परिचरणम्, वार्ता = कृषिपाशुपाल्यवणिज्याः, कारुकुशीलवकर्म = शिल्पिकर्म चारणकर्म चास्ति।

विशेष—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्ण के धर्म अर्थात् कर्त्तव्य का निर्देश किया गया है। वार्ता का आशय कृषि-कर्म, पशुपालन एवं व्यापार है। वैश्य वर्ण के लिए इसका पालन-आचरण स्वधर्म बताया गया है। यज्ञोपवीत संस्कार होने से ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य को द्विजाति कहा गया है। शूद्र वर्ण का धर्म द्विजाति की सेवा करना बताया गया है। साथ ही कृषि, पशुपालन, व्यवसाय, कारीगरी, चारण, भाट, नट, दूतकार्य आदि सभी कार्यों को करना निर्दिष्ट है।

कुशीलव का अर्थ गायन-वादन आदि संगीत-कार्य एवं समाचार-प्रसारण आदि से है। नाटक के नर्तक आदि पात्र कुशीलव कहलाते हैं।

गृहस्थस्य स्वकर्माजीवस्तुल्यैरसमानर्षिभिर्वैवाह्यमृतुगामित्वं देवपित्रतिथि-भृत्येषु त्यागः शेषभोजनं च॥ ४॥

अनुवाद—गृहस्थ का धर्म अपनी परम्परा के अनुकूल कार्यों द्वारा जीविका चलाना, समान एवं असमान गोत्र वालों के साथ विवाह करना, ऋतुगामी (मासिक धर्म के पश्चात् स्त्री-सम्भोग करने वाला) होना, देव, पितर, अतिथि और सेवकों को भोजन कराके अन्त में अवशिष्ट भोजन करने वाला है।

संस्कृत-व्याख्या—गृहस्थस्य = गृहिण:, स्वकर्माजीव: = स्ववर्णोक्तकर्मप्रा वृत्ति:, तुल्यै: = कुलादिना समानै:, असमानर्षिभि: = भिन्नार्षगोत्रै:, वैवाह्यम् = विवाह: कार्यम्, ऋतुगामित्वम् = पुष्पस्नानादिनादूर्ध्वं स्त्रीगमनशीलत्वम्, देवपित्रतिथिभृत्येषु = देवा: पितर: अतिथय: भृत्याश्च, तेषु त्याग: = दत्तानन्तरम्, शेषभोजनम् = अवशिष्टान्नाशनं कार्यम्।

विशेष—इसमें गृहस्थ को वर्ण-परम्परा के अनुसार अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करने का निर्देश दिया गया है। देवता, पितर, अतिथि एवं भृत्यों को भोजन कराके अवशिष्टान्न को खाने का निर्देश गृहस्थ के लिए विशेषतया दिया गया है।

ब्रह्मचारिण: स्वाध्यायोऽग्निकार्याभिषेकौ भैक्षव्रतत्वमाचार्ये प्राणान्तिकी वृत्तिस्तदभावे गुरुपत्रे सब्रह्मचारिणि वा॥ ५॥

अनुवाद—ब्रह्मचारी का अपना धर्म है-नियमित स्वाध्याय करना, अग्नि-होत्र करना, नित्य स्नान करना, भिक्षाटन करना, आचार्य या गुरु के समीप रहना, गुरु की अनुपस्थिति में गुरु-पुत्र अथवा अपने किसी समान शास्त्राध्यायी (सहपाठी) के पास प्राणान्तिकी-वृत्ति का पालन करना।

संस्कृत-व्याख्या—ब्रह्म चरितुं शीलमस्येति ब्रह्मचारी, तस्य स्वधर्मो वर्तते स्वाध्याय: = स्ववेदाध्ययनम्, अग्निकार्याभिषेकौ = अग्निशुश्रूषात्रिषणस्नानम्, भैक्ष्यव्रतित्वम् = भिक्षावृत्तिव्रतित्वम्, आचार्ये स्वगुरौ, प्राणान्तिकी = आप्राणोत्क्रमणकालभाविनी, वृत्ति: = स्थिति: समाचरणं वा, गुरुपुत्रे = आचार्यपुत्रसमीपे, सब्रह्मचारिणि = समानशाखाध्यायिने वृद्धे वा पालनं कर्त्तव्यम्।

विशेष—प्राणान्तिकी वृत्ति का आशय जीवनपर्यन्त रहने वाला व्यवहार है। ब्रह्मचारी गुरुकुल या आचार्य के आश्रम में तब तक रहे, जब तक शास्त्राध्ययनादि के साथ ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति नहीं होवे। ब्रह्मचर्य की समाप्ति तक गुरु के समीप रहे, यदि गुरु न हो तो गुरुपुत्र या सहपाठी शास्त्राध्यायी ब्रह्मचारी के साथ निवास करे। अर्थात् समावर्तन संस्कारपर्यन्त वह गुरुकुल में रहे।

वानप्रस्थस्य ब्रह्मचर्यं भूमौ शय्या जटाऽजिनधारणमग्निहोत्राभिषेकौ देवतापित्रतिथिपूजा वन्यश्चाहार:॥ ६॥

अनुवाद—वानप्रस्थी का अपना धर्म ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना, भूमि पर सोना, जटा व मृगचर्म धारण करना, अग्निहोत्र व प्रतिदिन स्नान करना, देवता, पितर एवं अतिथि की सेवा-पूजा करना और वन के कन्द-मूल-फलादि का आहार करना है।

संस्कृत-व्याख्या—वानप्रस्थस्य = वने प्रकर्षेण तिष्ठतीति वानप्रस्थस्तस्य, वानप्रस्थाश्रमस्थस्य जनस्य, ब्रह्मचर्यम् = ऊर्ध्वरेतस्त्वम्, भूमौ = स्थण्डिले, शय्या = शयनम्, जटाऽजिनधारणम् = जटामृगचर्मधारणम्, अग्निहोत्राभिषेकौ = अग्निकार्यं नित्यस्नानं

च, देवतापित्रतिथिपूजा, वन्यः = वनोत्पन्नः वने भवो वा कन्दमूलफलादिः, आहारः = भोजनम्, तस्य कर्त्तव्यमास्ति।

विशेष—वानप्रस्थ आश्रम में भी ब्रह्मचर्य के समान अग्निहोत्र, स्नान, देव-पितर-अतिथि पूजा आदि का विधान बताया गया है। वन्य आहार इसका विशिष्ट धर्म है।

परिव्राजकस्य संयतेन्द्रियत्वमनारम्भो निष्किञ्चनत्वं सङ्गत्यागो भैक्षमनेकत्रारण्यवासो बाह्याभ्यन्तरं च शौचम्॥ ७॥

अनुवाद—संन्यासी का धर्म है-जितेन्द्रिय होना, सांसारिक कार्यों के प्रति अनासक्त या कामना रहित होना, निष्किंचन (अपरिग्रही) बने रहना, एकाकी रहना, प्राणरक्षार्थ भिक्षान्न पर जीवन-निर्वाह करना, वन में अनेक स्थानों पर निवास करना तथा बाह्य एवं आभ्यन्तर (मन, वचन, कर्म आदि से) पवित्र होना या रहना।

संस्कृत-व्याख्या—परिव्राजकस्य = परित्यज्य सर्वं व्रजतीति परिव्राजकः, संन्यासी तस्य, संयतेन्द्रियत्वम् = जितेन्द्रियता, अनारम्भः = नैष्कर्म्यम्, निष्किञ्चनत्वम् = निस्स्वम्, सङ्गत्यागः = प्रव्रजितान्तरेणापि संसर्गपरिहारः, भैक्षम् = भिक्षाटनम्, अनेकत्र = बहुषु स्थानेषु, अरण्यवासः = वनवासः, बाह्याभ्यन्तरम् = कायवाङ्मनोभिः, शौचम् = नैर्मल्यम्ः, तस्य कर्त्तव्यमस्ति।

विशेष—संन्यासी का धर्म बताया गया है कि वह इन्द्रियों पर विजय रखे, सांसारिक कार्यों में आसक्ति नहीं रखे, परिग्रह न करे, एकाकी और वन में अनेक स्थानों पर रहे, भिक्षा से जीविका निर्वाह करे और मन-वचन एवं शरीर-कर्म से पवित्र रहे। 'भैक्षमनेकत्र' एक पद मानने पर इसका आशय होगा- अनेक घरों में जाकर भिक्षाटन करे।

सर्वेषामहिंसा सत्यं शौचमनसूयाऽऽनृशंस्यं क्षमा च॥ ८॥

अनुवाद—सभी वर्णों-आश्रमों का धर्म है-अहिंसा, सत्य, पवित्रता का आचरण करना, ईर्ष्या न करना, दयावान् होना और क्षमाशील बने रहना।

संस्कृत-व्याख्या—सर्वेषाम् = सर्वेषां वर्णानामाश्रमाणां च धर्मोऽस्ति, अहिंसा = हिंसाकर्माभावः, सत्यं शौचम् = नैर्मल्यम्, अनसूया = ईर्ष्याभावो = गुणेषु पक्षपातो वा, आनृशंस्यम् = निष्ठुरत्वम्, क्षमा = क्षान्तिश्च।

विशेष—पहले चारों वर्णों एवं चारों आश्रमों के पृथक्-पृथक् अपने-अपने धर्म बताये गये हैं, इस कथन से सभी वर्णों एवं सभी आश्रमों के लिए आवश्यक धर्म का प्रतिपादन किया गया है। वस्तुतः यह धर्म मन, वचन, कर्म पर आधारित पवित्राचरण से युक्त एवं मानवीय उदात्त गुणों से सम्बन्धित है। इसका पालन सभी को करना चाहिए।

स्वधर्मः स्वर्गायानन्त्याय च। तस्यातिक्रमे लोकः सङ्करादुच्छिद्येत॥ ९॥

अनुवाद—अपने धर्म का पालन करने से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। उसका उल्लंघन करने से वर्ण एवं कर्म में संकरता आने से लोक का उच्छेद हो जाता है।

संस्कृत-व्याख्या—स्वधर्मः = स्वधर्मपालनम्, स्वर्गाय = परलोकसुखाय, आनन्त्याय = मोक्षाय च भवति। तस्य = स्वधर्मस्य, अतिक्रमे = उल्लंघने, लोकः = जगत्, सङ्करात् = कर्मसङ्करात् वर्णसङ्कराच्च, उच्छिद्येत = उत्सादं प्राप्नुयात्।

विशेष—आशय यह है कि प्रत्येक वर्ण एवं आश्रम में रहने वाले व्यक्ति को अपने-अपने धर्म का पालन करना चाहिए। इससे लोक-मर्यादा बनी रहती है तथा वर्ण-कर्मसंकरता न होने से सभी का हित होता है।

तस्मात्स्वधर्मं भूतानां राजा न व्यभिचारयेत्।
स्वधर्मं संदधानो हि प्रेत्य चेह च नन्दति॥ १०॥

अनुवाद—इसलिए राजा का कर्त्तव्य है कि वह प्रजा को धर्म और कर्म मार्ग से भ्रष्ट न होने दे। अपनी प्रजा को धर्म और कर्म में प्रवृत्त रखने वाला राजा लोक और परलोक में सुखी रहता है।

संस्कृत-व्याख्या—तस्मात् = उक्तकारणात्, राजा = नृपः, भूतानाम् = मनुष्याणाम्, स्वधर्मम् = स्वकर्माचरणम्, न व्यभिचारयेत् = व्यभिचरन्तं नानुमन्येत। हि = यतः, स्वधर्मं सन्दधानः = सम्यगनुष्ठापयन्, प्रेत्य = परलोके, इह = अस्मिन् लोके च, नन्दति = सुखीभवति।

व्यवस्थितार्यमर्यादः कृतवर्णाश्रमस्थितिः।
त्रय्या हि रक्षितो लोकः प्रसीदति न सीदति॥ ११॥

अनुवाद—पवित्र आर्यमर्यादा में अवस्थित, वर्णाश्रमधर्म में नियमित और त्रयी धर्म से रक्षित प्रजा दुखी नहीं होती, सदा सुखी रहती है।

संस्कृत-व्याख्या—व्यवस्थितार्यमर्यादः = व्यवस्थिता वर्णाश्रमप्रतिबद्धा आर्यमर्यादा सदाचारनियमो यस्य सः, कृतवर्णाश्रमास्थितिः = कृता विहिता वर्णाश्रमाणां स्थितिः = स्थापना येन सः, त्रय्या = ऋग्यजुस्सामभिः, रक्षितः = संरक्षितोनियमितश्च, लोकः प्रसीदति = मोदते, न सीदति = न दुखमश्नुते, नहि नश्यति।

विशेष—इन दोनों श्लोकों में राजा के लिए निर्देश दिया गया है कि वह धर्म का पालन करावे, वर्णाश्रम की स्थिति को बनाये रखे, आर्यपुरुषों की मर्यादा और त्रयी में प्रतिपादित धर्म के अनुसार प्रजा-रक्षण में संलग्न रहे। ऐसा करने से ही लोक-परलोक में आनन्द लाभ एवं सुख की प्राप्ति हो सकती है।

॥ इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे विद्यासमुद्देशे त्रयीस्थापना तृतीयोऽध्यायः॥

□□□

चतुर्थोऽध्याय:

प्रथमं प्रकरणम् — वार्तादण्डनीतिस्थापना

कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता। धान्यपशुहिरण्यकुप्यविष्टिप्रदानादौपकारिकी। तया स्वपक्षं परपक्षं च वशीकरोति कोशदण्डाभ्याम्॥ १॥

अनुवाद—कृषि, पशुपालन और व्यापार, ये वार्ताविद्या के विषय हैं। यह विद्या धान्य, पशु, हिरण्य, ताम्र आदि खनिज पदार्थ और नौकर-चाकर आदि की देने वाली परम उपकारिणी है। इसी विद्या से उपार्जित कोश और सेना के बल पर राजा स्वपक्ष तथा परपक्ष को वश में कर लेता है।

संस्कृत-व्याख्या—कृषि: = क्षेत्रबीजवापपरिकर्मादिप्रतिपादकं पराशरप्रोक्तं शास्त्रम्, पाशुपाल्यम् = गौतमशालिहोत्रादिप्रणीतं गवाश्वादिपालनप्रकारोपदेशकं शास्त्रम्, ते, वाणिज्या = क्रयविक्रयव्यवहारतन्त्रं च, वार्ता विद्या। सा च धान्यं पशु:, हिरण्यम् = अकुप्यं सुवर्णादि, कुप्यम् = सुवर्णरजतातिरिक्तं ताम्रादि, विष्टि: = कर्मकर:, तेषां प्रदानात् = उपलम्भनात्, औपकारिकी = उपकारकर्त्री। तया = वार्तया, कोशदण्डाभ्याम् = कोशो धननिचय: दण्ड: सेना ताभ्याम्, स्वपक्षं परपक्षं च राजा वशीकरोति = स्वायत्तीकरोति।

विशेष—वार्ता विद्या के अन्तर्गत खेती, पशुपालन और व्यापार आते हैं। यह विद्या धन-धान्य, स्वर्ण-ताम्र आदि को प्रदान करती है। अतएव सम्पन्नता बढ़ाने वाली होने से यह उपकारिणी है। इसी से कोश और दण्ड (सेना आदि) उपार्जित की जाती है तथा इसी से राजा सभी को अपने वश में कर लेता है। इस कारण वार्ता श्रेष्ठ विद्या है।

आन्वीक्षकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्ड:। तस्य नीतिर्दण्डनीति:। अलब्धलाभार्था, लब्धपरिरक्षिणी, रक्षितविवर्धिनी, वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादिनी च॥ २॥

अनुवाद—आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्ता विद्याओं के योगक्षेम (सुख-समृद्धि) का साधन दण्ड है। दण्ड (शासन) की प्रतिपादक नीति दण्डनीति कहलाती है। यह अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त कराने वाली, प्राप्त वस्तुओं की रक्षा कराने वाली, रक्षित वस्तुओं की वृद्धि कराने वाली और वृद्धि को प्राप्त वस्तुओं का उचित स्थानों या कार्यों में प्रतिपादन कराने वाली है।

संस्कृत-व्याख्या—आन्वीक्षिकीत्रयीवार्तानां विद्यानां योगक्षेमसाधन: = योगक्षेमौ साधयतीति योगक्षेमसाधन:, दण्ड: = दम: प्रधानभूतोपायविशेष:। तस्य नीति: = दण्डस्य

नयनमुपदेशकशास्त्रं वा दण्डनीतिः। सा च अलब्धलाभार्था = अप्राप्यवस्तुनः प्राप्तकर्त्री, लब्धपरिरक्षिणी = लब्धस्य रक्षणकर्त्री, रक्षितविवर्धिनी = रक्षितस्य संवर्धनकर्त्री, वृद्धस्य = वर्धितस्य च, तीर्थेषु = पुण्यक्षेत्राध्वरादिषु, प्रतिपादिनी = विनियोजनकारिणी वर्तते।

विशेष—आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्ता इन तीनों विद्याओं की प्राप्ति तथा रक्षा दण्ड के बिना सम्भव नहीं है। दण्डनीति विद्या का यही विशिष्ट फल एवं महत्त्व है। दण्डनीति से ही लोक के सारे कार्य सम्पन्न होते हैं। कहा भी गया है-

''सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिः क्वचित्।
दण्डस्य हि भयात् कृत्स्नं जगद् भोगाय कल्पते॥''

तस्यामायत्ता लोकयात्रा। तस्माल्लोकयात्रार्थी नित्यमुद्यतदण्डः स्यात्। न ह्येवंविधं वशोपनयनमस्ति भूतानां यथा दण्ड इत्याचार्याः॥ ३॥

अनुवाद—इस (दण्डनीति) पर ही संसार का लोक-व्यवहार आश्रित है। इसलिए लोक-व्यवहार को चलाने की इच्छा रखने वाला राजा हमेशा दण्ड देने के लिए उद्यत रहे। पुरातन आचार्यों का मत है कि दण्ड के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है, जिससे सभी प्राणियों को वश में किया जा सके।

संस्कृत-व्याख्या—लोकयात्रा = लोकवृत्तिः, तस्याम् = दण्डनीतौ, आयत्ता = अधीना। तस्मात् = लोकवृत्तेर्दण्डनीत्यधीनत्वात्, लोकयात्रार्थी राजा नित्यम् = सर्वदा, उद्यतदण्डः = दण्डप्रणयनोद्युक्तः स्यात्। हि = यतः, एवंविधं यथा दण्डस्तथाविधम्, भूतानाम् = जनानाम्, वशोपनयनम् = अनायत्तायत्तीकरणसाधनम्, न अस्ति = नास्त्येव, इति आचार्याः = पुरातानाचार्याः कथयन्ति।

विशेष—यहाँ पर आचार्य कौटिल्य ने पूर्वाचार्यों के इस मत को प्रस्तुत किया है कि प्रजाजनों अथवा सभी लोगों को वश में करने के लिए राजा को हमेशा दण्ड देने के लिए उद्यत रहना चाहिए। ऐसा करने पर ही वह राजा अपने शासन को सुचारु रूप से चला सकता है।

नेति कौटिल्यः। तीक्ष्णदण्डो हि भूतानामुद्वेजनीयः। मृदुदण्डः परिभूयते। यथार्हदण्डः पूज्यः। सुविज्ञातप्रणीतो हि दण्डः प्रजा धर्मार्थकामैर्योजयति ॥ ४॥

अनुवाद—किन्तु आचार्य कौटिल्य यह मत नहीं मानते हैं, क्योंकि कठोर दण्ड प्राणियों को उद्विग्न करने वाला होता है। कोमल दण्ड (राजा की) अवहेलना करता है। समुचित दण्ड देने वाला राजा पूज्य होता है, क्योंकि अच्छी तरह से प्रयुक्त दण्ड प्रजा को धर्म, अर्थ और काम में प्रवृत्त कराता है।

संस्कृत-व्याख्या—कौटिल्य: = चाणक्य:, नेति = पूर्वाचार्यमतं नोचितमिति प्रतिषेधयति। हि = यत:, तीक्ष्णदण्ड: = उग्रदण्ड:, भूतानाम् = प्राणिनां कृते, उद्वेजनीय: = उद्वेगजनक:। मृत्युदण्ड: = तीक्ष्णदण्डतया मृत्युदण्ड:, परिभूयते = अवहेलनाजनको भवति। यथार्हदण्ड: = युक्तदण्ड:, पूज्य: = लोकबहुमान्यो भवति। हि = यत:, सुविज्ञातप्रणीत: = सुष्ठु शास्त्रतोऽवगत्य प्रयुक्तो दण्ड:, प्रजा:, धर्मार्थकामै: = एतत्पुरुषार्थै:, योजयति = प्रवृत्तिं करोति।

विशेष—आचार्य कौटिल्य ने पूर्वाचार्यों के उस मत को अस्वीकार किया है जिसमें राजा को सदा कठोर दण्ड देने के लिए उद्यत रहने को कहा गया है। इसका कारण यह है कि कठोर दण्ड विधान से प्रजा भयभीत रहती है और कोमल दण्ड से राजा की अवहेलना करती है। इसीलिए दण्ड-विधान का प्रयोग अच्छी तरह सोच-समझकर करना चाहिए। उचित दण्ड से प्रजा धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ की ओर प्रवृत्त होती है।

दुष्प्रणीतः कामक्रोधाभ्यामज्ञानाद्वानप्रस्थपरिव्राजकानपि कोपयति, किमङ्ग पुनर्गृहस्थान्। अप्रणीतो हि मात्स्यन्यायमुद्भावयति। बलीयानबलं हि ग्रसते दण्डधराभावे। तेन गुप्तः प्रभवतीति॥ ५॥

अनुवाद—काम-क्रोध के वशीभूत होकर अज्ञानतापूर्वक अनुचित रूप से प्रयुक्त दण्ड वानप्रस्थ और संन्यासियों को भी कुपित कर देता है, फिर गृहस्थों की तो बात ही क्या है ? क्योंकि गलत ढंग से प्रयुक्त या अप्रयुक्त दण्ड मात्स्यन्याय उत्पन्न कर देता है। दण्ड धारण करने वाले (राजा) के अभाव में बलवान् निर्बल को निगल जाता है। दण्ड से रक्षित दुर्बल व्यक्ति भी समर्थ बन जाता है।

संस्कृत-व्याख्या—कामक्रोधाभ्यामज्ञानात् = कामात् क्रोधादज्ञानाच्च, दुष्प्रणीत: = अनुचितप्रयुक्त: दण्ड:, वानप्रस्थपरिव्राजकान् = वानप्रस्थसंन्यासाश्रमस्थितान् जितेन्द्रियानपि, कोपयति = कोपमुत्पादयति, अङ्ग = भो, पुन: गृहस्थान् = असंयतेन्द्रियान्, किम् = किमु कोपयतीति किं वक्तव्यम् ? हि = यत:, अप्रणीत: = अनुचितप्रयुक्तो दण्ड:, मात्स्यन्यायम् = बलवता दुर्बलस्य पीडनम्, उद्भावयति = प्रकटयति। हि = यत:, दण्डधराभावे = दण्डप्रणेतुरभावे, बलीयान् = बलशाली, अबलम् = निर्बलं ग्रसते। तेन = सुप्रणीतेन दण्डेन, गुप्त: = रक्षितो दुर्बलोऽपि, प्रभवति = बलयुक्तो भवति।

विशेष—आचार्य कौटिल्य का मत है कि दण्ड का प्रयोग सोच-समझकर और समुचित रूप से करना चाहिए। यदि राजा काम-क्रोध के वशीभूत होकर या अज्ञान से दण्ड-विधान करे, तो उससे वानप्रस्थ एवं संन्यास अपनाने वाले विरक्त लोग भी भड़क सकते हैं।

अनुचित ढंग से प्रयुक्त दण्ड से मात्स्य-न्याय उत्पन्न होता है, अर्थात् जैसे बड़ी मछली छोटी मछलियों को खा जाती है, वैसे ही बलवान लोग निर्बल लोगों को कष्ट

पहुँचा कर उनका अहित करते हैं। समुचित दण्ड-विधान से निर्बलों की रक्षा होती है और वे सबल बन जाते हैं। अतः दण्ड धारण करने वाले राजा का तथा समुचित दण्ड का होना परमावश्यक है।

चतुर्वर्णाश्रमो लोको राज्ञा दण्डेन पालितः।
स्वधर्मकर्माभिरतो वर्तते स्वेषु वेश्मसु॥ ६॥

अनुवाद—राजा की दण्ड-व्यवस्था से रक्षित चारों वर्ण और चारों आश्रम वाले लोग अपने-अपने धर्मों और कर्मों में प्रवृत्त होकर निरन्तर अपनी-अपनी मर्यादा पर बने रहते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—राज्ञा = नृपेण, दण्डेन = दण्डविधानेन, पालितः = रक्षितः, चतुर्वर्णाश्रमो लोकः = सर्वोऽपि प्रजाननः, स्वधर्मकर्माभिरतः = स्ववर्णाश्रमधर्मकर्मानुष्ठानपरः, स्वषु वेश्मसु = स्वगृहेषु स्वकर्त्तव्यमार्गेषु वा, वर्तते = स्वास्थ्येन वसति।

विशेष—उचित दण्डनीति से रक्षित प्रजा कहीं भी सुखपूर्वक रह सकती है, परन्तु दण्ड-पालनाभाव में अपने घर या मर्यादा में रहने पर भी प्रजा सुरक्षित-स्वस्थ नहीं रह सकती है। 'स्वधर्मकर्माभिरतः' का यही आशय है। अतएव दण्डनीति का राजा एवं लोक के लिए विशेष महत्त्व है।

॥ इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे विद्यासमुद्देशे
वार्तादण्डनीतिस्थापना चतुर्थोऽध्यायः॥

पञ्चमोऽध्यायः

द्वितीयं प्रकरणम् — वृद्धसंयोगः

तस्माद्दण्डमूलास्तिस्त्रो विद्याः। विनयमूलो दण्डः प्राणभृतां योगक्षेमावहः॥ १॥

अनुवाद—इसीलिए तीनों (आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्ता) विद्याएँ दण्डनीति पर शास्त्रविहित (विनयमूलक) उचित दण्ड प्राणियों के योग-क्षेम का साधक होता है।

संस्कृत-व्याख्या—तस्मात् = चतुर्वर्णाश्रमस्य लोकस्य राज्ञा सुविज्ञातप्रयुक्तदण्डेन पाल्यमानस्यैव स्वधर्मकर्मानुष्ठानप्रवणतोत्पादात्, तिस्रो विद्याः = आन्वीक्षिकीयीवार्तालक्षणाः, दण्डमूलाः = दण्डाधीनस्थितिकाः। दण्डः = दण्डनीतिः, विनयमूलो प्राणभृताम् = प्रजाजनानाम्, योगक्षेमावतः सुखस्समृद्धिसाधको वर्तते।

विशेष—आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्ता-तीनों विद्याओं को दण्डनीति पर आधारित बताया गया है। विनयमूलक दण्ड प्रजा में सुख-समृद्धि को बढ़ाता है।

कृतकः स्वाभाविकश्च विनयः। क्रिया हि द्रव्यं विनयति नाद्रव्यम्। शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणविज्ञानोहापोहतत्त्वाभिनिविष्टबुद्धिं विद्या विनयति नेतरम्॥ २॥

अनुवाद—विनय दो प्रकार का होता है- कृतक (कृत्रिम) और स्वाभाविक। क्रिया (विद्या) द्रव्य (सुपात्र) को विनीत बनाती है, अपात्र को नहीं। विद्या शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, विज्ञान, ऊहापोह (तर्क-वितर्क) में विवेक से अभिनिविष्ट बुद्धि वाले व्यक्ति को ही विनीत बनाती है, उससे रहित को नहीं।

संस्कृत-व्याख्या—विनयः कृतकः = क्रियया अभियोगलक्षणया निर्वृत्तः, स्वाभाविकः = विनापि क्रियां वासनावशात् सिद्धश्चेति द्विविधः। हि = यतः, क्रिया = संस्करणाभियोगः शाणघर्षणादिः, द्रव्यम् = खन्यादिप्रभवं पाषाणादिविशेषम्, विनयति = संस्करोति, न पुनरद्रव्यम् = सर्वमपि शिलादिखण्डम्। विद्या शुश्रूषा = श्रवणार्हेषु श्रोतुमिच्छा, श्रवणम् = आसेवा, ग्रहणम् = श्रुतार्थज्ञानम्, धारणम् = गृहीताविस्मरणम्, विज्ञानम् = धारितेष्वर्थेषु साध्यसाधनादिस्वरूपविवेकज्ञानम्, ऊहः = शब्दानुक्तस्य लिङ्गेनावगतिः, अपोहः = युक्तपेतस्य हानम्, तत्त्वाभिनिवेशः = वस्तुयाथात्म्यज्ञानम्, एवम्भूताष्टगुणयुक्तां बुद्धिं विनयति = संस्करोति, नेतरम् = उक्ताष्टौ गुणरहितं नैव।

पहुँचा कर उनका अहित करते हैं। समुचित दण्ड-विधान से निर्बलों की रक्षा होती है और वे सबल बन जाते हैं। अतः दण्ड धारण करने वाले राजा का तथा समुचित दण्ड का होना परमावश्यक है।

चतुर्वर्णाश्रमो लोको राज्ञा दण्डेन पालितः।
स्वधर्मकर्माभिरतो वर्तते स्वेषु वेश्मसु॥ ६ ॥

अनुवाद—राजा की दण्ड-व्यवस्था से रक्षित चारों वर्ण और चारों आश्रम वाले लोग अपने-अपने धर्मों और कर्मों में प्रवृत्त होकर निरन्तर अपनी-अपनी मर्यादा पर बने रहते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—राज्ञा = नृपेण, दण्डेन = दण्डविधानेन, पालितः = रक्षितः, चतुर्वर्णाश्रमो लोकः = सर्वोऽपि प्रजाननः, स्वधर्मकर्माभिरतः = स्ववर्णाश्रमधर्मकर्मानुष्ठानपरः, स्वषु वेश्मसु = स्वगृहेषु स्वकर्त्तव्यमार्गेषु वा, वर्तते = स्वास्थ्येन वसति।

विशेष—उचित दण्डनीति से रक्षित प्रजा कहीं भी सुखपूर्वक रह सकती है, परन्तु दण्ड-पालनाभाव में अपने घर या मर्यादा में रहने पर भी प्रजा सुरक्षित-स्वस्थ नहीं रह सकती है। 'स्वधर्मकर्माभिरतः' का यही आशय है। अतएव दण्डनीति का राजा एवं लोक के लिए विशेष महत्त्व है।

॥ इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे विद्यासमुद्देशे
वार्तादण्डनीतिस्थापना चतुर्थोऽध्यायः ॥

पञ्चमोऽध्यायः

द्वितीयं प्रकरणम् — वृद्धसंयोगः

तस्माद्दण्डमूलास्तिस्त्रो विद्याः। विनयमूलो दण्डः प्राणभृतां योगक्षेमावहः॥ १॥

अनुवाद—इसीलिए तीनों (आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्ता) विद्याएँ दण्डनीति पर शास्त्रविहित (विनयमूलक) उचित दण्ड प्राणियों के योग-क्षेम का साधक होता है।

संस्कृत-व्याख्या—तस्मात् = चतुर्वर्णाश्रमस्य लोकस्य राज्ञा सुविज्ञातप्रयुक्तदण्डेन पाल्यमानस्यैव स्वधर्मकर्मानुष्ठानप्रवणतोत्पादात्, तिस्रो विद्याः = आन्वीक्षिकीयीवार्तालक्षणाः, दण्डमूलाः = दण्डाधीनस्थितिकाः। दण्डः = दण्डनीतिः, विनयमूलो प्राणभृताम् = प्रजाजनानाम्, योगक्षेमावतः सुखस्समृद्धिसाधको वर्तते।

विशेष—आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्ता-तीनों विद्याओं को दण्डनीति पर आधारित बताया गया है। विनयमूलक दण्ड प्रजा में सुख-समृद्धि को बढ़ाता है।

कृतकः स्वाभाविकश्च विनयः। क्रिया हि द्रव्यं विनयति नाद्रव्यम्। शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणविज्ञानोहापोहतत्त्वाभिनिविष्टबुद्धिं विद्या विनयति नेतरम्॥ २॥

अनुवाद—विनय दो प्रकार का होता है- कृतक (कृत्रिम) और स्वाभाविक। क्रिया (विद्या) द्रव्य (सुपात्र) को विनीत बनाती है, अपात्र को नहीं। विद्या शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, विज्ञान, ऊहापोह (तर्क-वितर्क) में विवेक से अभिनिविष्ट बुद्धि वाले व्यक्ति को ही विनीत बनाती है, उससे रहित को नहीं।

संस्कृत-व्याख्या—विनयः कृतकः = क्रियया अभियोगलक्षणया निर्वृत्तः, स्वाभाविकः = विनापि क्रियां वासनावशात् सिद्धश्चेति द्विविधः। हि = यतः, क्रिया = संस्करणाभियोगः शाणघर्षणादिः, द्रव्यम् = खन्यादिप्रभवं पाषाणादिविशेषम्, विनयति = संस्करोति, न पुनरद्रव्यम् = सर्वमपि शिलादिखण्डम्। विद्या शुश्रूषा = श्रवणार्हेषु श्रोतुमिच्छा, श्रवणम् = आसेवा, ग्रहणम् = श्रुतार्थज्ञानम्, धारणम् = गृहीताविस्मरणम्, विज्ञानम् = धारितेष्वर्थेषु साध्यसाधनादिस्वरूपविवेकज्ञानम्, ऊहः = शब्दानुक्तस्य लिङ्गेनावगतिः, अपोहः = युक्तपेतस्य हानम्, तत्त्वाभिनिवेशः = वस्तुयाथात्म्यज्ञानम्, एवम्भूताष्टगुणयुक्तां बुद्धिं विनयति = संस्करोति, नेतरम् = उक्ताष्टौ गुणरहितं नैव।

विशेष—विनय दो प्रकार का बताया गया है- कृतक एवं स्वाभाविक। कृत्रिम, बनावटी एवं सतत विधाभ्यास से प्राप्त विनय को कृतक तथा पूर्वजन्म के संस्कारों से या पूर्व-वासनावश स्वतः सिद्ध विनय को स्वाभाविक बताया गया है।

बुद्धि के आठ गुण बताये गय हैं- शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, विज्ञान, ऊह, अपोह और तत्त्वाभिनिवेश। ऐसे गुणों से युक्त ही विद्या-बुद्धि से विनयी होता है। क्रिया संस्कारविशेष को कहते हैं। जिस प्रकार उत्तमकोटि के विशिष्ट पत्थर या मणिप्रस्तर, सुवर्ण आदि को शाणघर्षण आदि से संस्कारित किया जा सकता है। सामान्य पाषाणखण्ड को नहीं, उसी प्रकार सुपात्र को ही विद्या द्वारा संस्कारित कर विनयी बनाया जा सकता है, कुपात्र को नहीं। 'विद्या ददाति विनयम्' यह कथन इसी आधार पर कहा गया है।

विद्यानां तु यथास्वमाचार्यप्रामाण्याद् विनयो नियमश्च ॥ ३ ॥

अनुवाद—विभिन्न विद्याओं के तत्तत् आचार्यों के मतानुसार ही (शिष्य का) विनय (शिक्षण) और नियम होना चाहिए।

संस्कृत-व्याख्या—विद्यानां यथास्वम् = यस्या विद्याया यो य आचार्य उपदेष्टा, तस्य आचार्यस्य प्रामाण्यात् = तं तं शिष्यं प्रति तस्य धर्मानुशासनप्रभविष्णुत्वात्, विनयः = शिक्षणम्, नियमः = गुरुपरिचरणादिव्रतं च भवति।

विशेष—विद्याध्ययन काल में शिष्य को कैसा आचरण करना चाहिए और प्रत्येक विद्या का ज्ञान कैसे आचार्य से प्राप्त करना चाहिए, उस विषय में 'यथास्वमाचार्यप्रामाण्य' कहा गया है। गुरु से विद्या ग्रहण करना, गुरु के आने पर आसन से उठना, गुरु की आज्ञा पाकर बैठना आदि नियम की शिक्षा एवं संस्कार आचार्य से मिलते हैं।

वृत्तचौलकर्मा लिपिं संख्यानं चोपयुञ्जीत। वृत्तोपनयनस्त्रयीमान्वीक्षकीं च शिष्टेभ्यः, वार्त्तामध्यक्षेभ्यः, दण्डनीतिं वक्तृप्रयोक्तृभ्यः ॥ ४ ॥

अनुवाद—चौलकर्म संस्कार होने पर लिपि (वर्णमाला) एवं संख्यान (अंकमाला) का अभ्यास करना चाहिए। उपनयन संस्कार के बाद सदाचरणशील विद्वान् आचार्यों से त्रयी तथा आन्वीक्षिकी की, तत्तद् विभागीय अध्यक्षों से वार्ता की और वक्ता-प्रयोक्ता विशेषज्ञों (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव आदि के आचार्यों) के दण्डनीति की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

संस्कृत-व्याख्या—वृत्तचौलकर्मा = वृत्तं कृतं चौलकर्म त्रिवर्षे पञ्चवर्षे वा यस्य सः, लिपिम् = अक्षरम्, संख्यानम् = गणितं च, उपयुञ्जीत = नियमपूर्वकमधीयीत। वृत्तोपनयनः = लब्धगायत्र्युपदेशः, त्रयीम् आन्वीक्षिकीं च शिष्टेभ्यः = सम्यगधीतविद्वद्भ्यः, उपयुञ्जीत। वार्ताम् अध्यक्षेभ्यः = सीताध्यक्षादिभ्यः, दण्डनीतिं च वक्तृप्रयोक्तृभ्यः = प्रवचनप्रयोगकुशलेभ्यः, उपयुञ्जीत।

विशेष—चौलकर्म या मुंडन संस्कार पुत्रोत्पत्ति के बाद होने वाला विशिष्ट संस्कार है, जो कि तीसरे या पाँचवें वर्ष किया जाता है। मुण्डन-संस्कार के बाद लिपि अर्थात् वर्णमाला एवं संख्यान (गिनती या अङ्कमाला) अर्थात् गणित का अभ्यास प्रारम्भ करे। फिर शास्त्रानुसार उपनयन संस्कार होने पर वह विषय-विशेषज्ञ आचार्यों से त्रयी, आन्वीक्षिकी, वार्ता और दण्डनीति की शिक्षा ग्रहण करे।

उपनयन संस्कार जाति-वर्ण के अनुसार आठवें, ग्यारहवें या बारहवें वर्ष किये जाने का विधान है। उपनयन संस्कार होने पर ब्रह्मचारी को गुरु के पास भेजा जाता है। प्रत्येक विद्या का जो विशेषज्ञ आचार्य हो, उसी से ज्ञान वह विद्या ग्रहण करने का प्रयास करना चाहिए। ऐसा करने पर ही विद्या का उचित ज्ञान होता है तथा बौद्धिक संस्कार से वह आदर्श पात्र बनता है। दण्डनीति के जो भेद हैं, उनके वक्ता एवं प्रयोक्ता कर्म में कुशल आचार्यों से ही दण्डनीति की समग्र शिक्षा ग्रहण करने का निर्देश दिया गया है।

ब्रह्मचर्यं चाषोडशाद्वर्षात्। अतो गोदानं दारकर्म च। अस्य नित्यश्च विद्यावृद्धसंयोगो विनयवृद्ध्यर्थं तन्मूलत्वाद्विनयस्य॥ ५॥

अनुवाद—सोलह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करे। तदनन्तर गोदान (समावर्तन संस्कार) और विवाह करे। इसके बाद विनय (शिक्षा) की वृद्धि के लिए सदा ही विद्यावृद्ध पुरुषों के साथ रहे, क्योंकि विनय उन्हीं पर आश्रित है।

संस्कृत-व्याख्या—आषोडशाद् वर्षात् = षोडशं वयोऽभिव्याप्य, ब्रह्मचर्यम् = ब्रह्मचर्यरक्षणम्, अत: = पश्चात्, गोदानम् = समावर्तनं केशान्तकर्म वा, दारकर्म = विवाहश्च। अस्य = कृतदारस्य पश्चात्, नित्यश्च = सर्वदैव, विनयवृद्ध्यर्थम् = विनयस्य शास्त्रसंस्कारस्य वृद्धये, विद्यावृद्धसंयोग: = विद्यावृद्धै: सह परिचय: विनयस्य तन्मूलत्वात् = वृद्धसंयोगप्रभवत्वात्।

विशेष—गोदान संस्कार का ही दूसरा नाम समावर्तन या केशान्त-कर्म संस्कार है। यह विद्याध्ययन की समाप्ति पर होता है, इसमें बाल काट दिये जाते हैं तथा आचार्य के द्वारा शिष्य को गृहस्थाश्रम में प्रवेश की आज्ञा दी जाती है।

'ब्रह्मचर्यं चाषोडशात्' कथन से यह प्रतीत होता है कि कौटिल्य की सामाजिक व्यवस्था में सोलह वर्ष से पूर्व विवाह करने की राजकीय अनुमति नहीं थी। मनुस्मृति के अनुसार नौ से बारह वर्ष की अवधि तक गुरुकुल में विद्याध्ययन करने के बाद ही समावर्तन करने का विधान था और तत्पश्चात् ही विवाह होता था। विद्यारम्भ को लेकर समावर्तन तक की गणना करने पर मनुस्मृति के अनुसार यह अवस्था सत्रह वर्ष से अधिक हो जाती है।

सभी संस्कारों में दारकर्म या विवाह संस्कार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। गृहस्थ जीवन का आरम्भ इसी से होता है और मानव-जीवन का सम्पूर्ण व्यवहार विवाहपूर्वक ही होता है। इस सम्बन्ध में आचार्य कौटिल्य का यह कथन प्रमाण है-'विवाहपूर्वो व्यवहार:।'

पूर्वमहर्भागं हस्त्यश्वरथप्रहरणविद्यासु विनयं गच्छेत्। पश्चिममितिहासश्रवणे। पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः। शेषमहोरात्रभागमपूर्वग्रहणं गृहीतपरिचयं च कुर्यात्। अगृहीतानामाभीक्ष्ण्यश्रवणं च॥ ६॥

अनुवाद—दिन का पहिला भाग हाथी, घोड़ा, रथ, अस्त्र-शस्त्र विद्याओं की शिक्षा में बिताये। दिन के दूसरे भाग को इतिहास सुनने में लगाये। पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण (मीमांसा), धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र, ये सभी विषय इतिहास हैं। दिन और रात के बाकी बचे समय में नये ज्ञान का अर्जन और अधीत ज्ञान का मनन-चिन्तन करे। जो विषय एक बार सुनने में बुद्धिस्थ न हो सके, उसको बार-बार सुने।

संस्कृत-व्याख्या—पूर्वम् = प्रथमम्, अहर्भागम् = दिनस्यांशम्, हस्त्यश्वरथप्रहरणविद्यासु = हस्तिचर्यायामश्वचर्यायां रथचर्यायामायुधविद्यायां च, विनयम् = शिक्षाम्, गच्छेत् = यापयेत्, पश्चिम् = तृतीयमहर्भागम्, इतिहासश्रवणे विनयं गच्छेत्। पुराणं ब्राह्मादि, इतिवृत्तं रामायणमहाभारतादि, आख्यायिका दिव्यमानुषचरितात्मिका, उदाहरणं न्यायोपन्यासशास्त्रं मीमांसादि, धर्मशास्त्रं मनुस्मृत्यादि, अर्थशास्त्रं बार्हस्पत्यादि सर्वमपि इतिहासपदार्थः। शेषमहोरात्रभागम् = शिष्टं मध्यममहर्भागं रात्रौ च, अपूर्वग्रहणम् = प्रतिनवप्रमेयश्रवणम्, गृहीतपरिचयम् = गृहीतधारणार्थं चिन्तनं च कुर्यात्। अगृहीतानाम् = ईषद्गृहीतानां विद्यानाम्, आभीक्ष्ण्यश्रवणम् = सम्युग्बुद्धिस्थार्थं पुनःपुनः श्रवणं च कुर्यात्।

विशेष—इसमें विद्या-प्राप्ति के निमित्त दिन-रात का समय-विभाग बताया गया है। इतिहास के विषय-क्षेत्र को लेकर परम्परागत जो मत रहा, वह कुछ संकुचित है। इस सम्बन्ध में कहा गया है-"धर्मार्थकाममोक्षाणामितिहाससमन्वितम्। पूर्ववृत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते॥" परन्तु आचार्य कौटिल्य ने इतिहास का विषय-क्षेत्र कुछ व्यापक बताया है तथा इसमें पुराणों के साथ रामायण-महाभारतादि, आख्यायिका, मीमांसा, धर्मशास्त्र आदि का भी समावेश किया है।

'इतिवृत्तम्' का आशय रामायण-महाभारत आदि कथानक-प्रधान रचनाओं से है। संस्कृत-साहित्य में गद्य-काव्य के कथा और आख्यायिका नामक दो भेद माने गये हैं। कौटिल्य ने 'इतिवृत्त' से कथा की ओर संकेत कर आख्यायिका का अलग से निर्देश किया है, क्योंकि इसमें कथा के साथ-साथ कवि द्वारा आत्मचरित एवं अन्य समकालीन कवियों आदि की कथा भी समाविष्ट की जाती है।

श्रुताद्धि प्रज्ञोपजायते, प्रज्ञाया योगो योगादात्मवत्तेति विद्यासामर्थ्यम्॥ ७॥

अनुवाद—क्योंकि शास्त्र-श्रवण से प्रज्ञा (नवनवोन्मेषशालिनी बुद्धि) उत्पन्न होती है, प्रज्ञा से योग तथा योग से आत्मबल प्राप्त होता है। यही विद्या का सुपरिणाम है।

संस्कृत-व्याख्या—हि = यतः, श्रुतात् = शास्त्रश्रवणात्, प्रज्ञा = त्रैकालिकी बुद्धिः, उपजायते = उत्पद्यते; प्रज्ञायाः, योगः = शास्त्रोक्तानुष्ठानश्रद्धा, योगात्, आत्मवत्ता = मनस्विता सत्त्ववत्ता, उपजायते, इति विद्यासामर्थ्यम् = एतद् विद्याशक्तिजन्यं फलम्।

विशेष—प्रज्ञा पूर्वजन्म से भी प्रारब्धवश उत्पन्न होती है और शास्त्रों का अनुशीलन करने भी उत्पन्न होती है। योग का आशय शास्त्रों में प्रतिपादित निर्देशों-नियमों को अपनाना तथा तदनुसार आचरण करने की दृढ़ मनोभावना रखना है।

विद्याविनीतो राजा हि प्रजानां विनये रतः।
अनन्यां पृथिवीं भुङ्क्ते सर्वभूतहिते रतः॥ ८॥

अनुवाद—विद्यार्जन से विनयशील जो राजा प्राणिमात्र की हितकामना में लगा रहता है और प्रजा के शासन एवं शिक्षण में तत्पर रहता है, वह चिरकाल तक सम्पूर्ण पृथ्वी का निर्बाध उपभोग (शासन) करता है।

संस्कृत-व्याख्या—हि विद्याविनीतः = शास्त्रज्ञानेन विनयशीलो विद्वान्, राजा, प्रजानाम् = जनानाम्, विनये = शिक्षणे हितसाधने च, रतः = संलग्नो भवति, सर्वभूतहिते = सर्वप्राणिकल्याणसाधने, रतोऽसौ राजा, अनन्याम् = एकनाथाम्, पृथिवीं भुङ्क्ते = पृथिव्याः शासनसुखं प्राप्नोति।

विशेष—इस प्रकरण में 'वृद्धसंयोग' का फल प्रकारान्तर से बताया गया है।

॥ इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे वृद्धसंयोगः पञ्चमोऽध्यायः॥

* * *

षष्ठोऽध्यायः

तृतीयं प्रकरणम् — इन्द्रियजयः — अदिषड्वर्गत्यागः

विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजयः, कामक्रोधलोभमानम-दहर्षत्यागात्कार्यः। कर्णत्वगक्षिजिह्वाघ्राणेन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेष्वविप्रतिपत्तिरिन्द्रियजयः॥ १॥

अनुवाद—विद्या और विनय का हेतु इन्द्रियजय है; अतः काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष के त्याग से इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और नासिका को उनके विषयों-शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध में प्रवृत्त न होने देना ही इन्द्रियजय कहलाता है।

संस्कृत-व्याख्या—इन्द्रियविजयः = इन्द्रियाणां श्रोत्रादीनां विजयः शास्त्रानुष्ठानेन स्वायत्तीकरणम्, विद्याविनयहेतुः = विद्यासंस्कारकारणं भवति, कामः = स्त्रीविषयोऽभिलाषः, क्रोधः = अमर्षः, लोभः = परद्रव्येच्छा, मानः = अहम्मन्यता, मदः = गर्वः, हर्षः = प्रीतिः, एतेषां त्यागात् = वर्जनात्, इन्द्रियविजयः कार्यः = सम्पादनीयः। कर्णत्वगक्षिजिह्वाघ्राणानाम् = श्रोत्रचर्मनेत्रजिह्वानासिकाख्यानाम् इन्द्रियाणाम्, शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेषु = एतत्सर्वेषु क्रमेणोक्तगुणेषु, अविप्रतिपत्तिः = प्रवृत्त्याभावः स्वत एवाविरुद्धा प्रवृत्तिर्वा, इन्द्रियजयः = इन्द्रियविजयस्य हेतुरित्यर्थः।

विशेष—शास्त्रानुष्ठान अथवा विद्याध्ययन-संस्कार से, साथ ही वृद्धसंयोग से इन्द्रियविजय की जा सकती है। इसीलिए उसे विद्या और विनय का कारण बताया गया है।

इन्द्रियाँ दो प्रकार की हैं- ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ। इनमें भी ज्ञानेन्द्रियों का विशेष महत्त्व है। कान, त्वचा, अक्षि, जिह्वा एवं नासिका ये पाँच अपने विषयों से अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध में प्रवृत्त होती हैं, परन्तु ये ज्ञानेन्द्रियाँ यदि ऐसी प्रवृत्ति नहीं रखें, तो तभी वह इन्द्रियजय कहलाता है। कर्मेन्द्रियाँ भी इन ज्ञानेन्द्रियों की वशवर्ती रहती हैं। इसीलिए इनका विषयों से आसक्ति न रखना ही इन्द्रियविजय है।

शास्त्रानुष्ठानं वा। कृत्स्नं हि शास्त्रमिदमिन्द्रियजयः॥ २॥

अनुवाद—अथवा शास्त्रों का अनुष्ठान इन्द्रियजय कहलाता है, क्योंकि ये सम्पूर्ण शास्त्र इन्द्रियजय के कारण हैं।

संस्कृत-व्याख्या—शास्त्रानुष्ठानम् = शास्त्रार्थेषु उपादेयत्वेन प्रवृत्तिनियमः, वा इन्द्रियजयः। हि = यतः, कृत्स्नम् = सम्पूर्णम्, इदं शास्त्रमिन्द्रियजयः = शास्त्रेण प्रतिपाद्यमानः सर्वोऽर्थ इन्द्रियजयस्य कारणमस्ति।

विशेष—यहाँ शास्त्रों को इन्द्रियजय का कारण बताया गया है। शास्त्र से छन्द, व्याकरण, कोश, कला तथा अन्यान्य शास्त्रप्रतिपादक ग्रन्थों में प्रतिपादित विषयों को समझना चाहिए। आचार्य कौटिल्य ने इन्द्रियजय को कार्य तथा शास्त्रानुष्ठान को कारण बताया है, परन्तु यह कारणकार्य-सम्बन्ध गौण या उपचार रूप में ही समझना चाहिए।

तद्विरुद्धवृत्तिरवश्येन्द्रियश्चातुरन्तोऽपि राजा सद्यो विनश्यति। यथा दाण्डक्यो नाम भोजः कामाद् ब्राह्मणकन्यामभिमन्यमानः सबन्धुराष्ट्रो विननाश। करालश्च वैदेहः। कोपाज्जनमेजयो ब्राह्मणेषु विक्रान्तस्तालजङ्घश्च भृगुषु। लोभादैलश्चातुर्वर्ण्यमत्याहारयमाणः सौवीरश्चाजबिन्दुः। मानाद्रावणः परदारानप्रयच्छन्। दुर्योधनो राज्यादंशं च। मदाद् डम्भोद्भवो भूतावमानी हैहयश्चार्जुनः। हर्षाद्वातापिरगस्त्यमत्यासादयन्वृष्णिसंघश्च द्वैपायनमिति॥ ३॥

अनुवाद—शास्त्रविहित कर्त्तव्यों के विपरीत व्यवहार करने वाला, इन्द्रियों को वश में न रखने वाला राजा सम्पूर्ण पृथ्वी का अधिपति होता हुआ भी शीघ्र नष्ट हो जाता है। जैसे भोजवंशीय दाण्डक्य नाम का राजा काम के वशीभूत होकर ब्राह्मण-कन्या का अपहरण करने के अपराध से सपरिवार और सराष्ट्र नष्ट हो गया। विदेह के राजा कराल की यही गति हुई। क्रोधवश ब्राह्मणों से कलह करने से जनमेजय, भृगुवंशियों से कलह करने से तालजंघ राजा, लोभ के वशीभूत होकर चारों वर्णों से अत्याचारपूर्वक धन का अपहरण करने से इला का पुत्र पुरुरवा, सौवीर का राजा अजबिन्दु, परपत्नी के अपहरण के अपराध से अभिमानी रावण और अपने भाइयों को राज्य का अंश न देने से दुर्योधन नष्ट हुआ। अपनी प्रजा का तिरस्कार करने से मदोन्मत्त राजा डम्भोद्भव, हैहयराज अर्जुन, हर्ष के वशीभूत होकर वातापि नामक असुर अगस्त्य ऋषि के साथ तथा द्वैपायन ऋषि के साथ प्रवञ्चना करने से यादव-संघ का विनाश हुआ।

संस्कृत-व्याख्या—तद्विरुद्धवृत्तिः = शास्त्रविरुद्धानुष्ठानः, चातुरन्तः = चतुरन्ता चतुस्समुद्रपर्यन्ता भूमिस्तस्याधिपोऽपि, अवशेन्द्रियः = इन्द्रियविजयरहितः, राजा = भूपः, सद्यः = सपदि, विनश्यति = विनाशं गच्छति। यथा भोजः = तद्वंश्यः, दाण्डक्यः = तन्नामको राजा, कामात् = परस्त्रीविषयाभिलाषात्, ब्राह्मणकन्याम् = विप्रपुत्रीम्, अभिमन्यमानः = अपहृत्य तत्पित्रा शप्तः, सबन्धुराष्ट्रः = बान्धवराष्ट्रसहितः, विननाश = नष्टोऽभवत्। वैदेहः = विदेहाधिपः, करालः = तन्नामा राजा, ब्राह्मणीमभिलषन् ब्राह्मणेन शप्तो नष्टः। कोपात् = क्रोधात्, जनमेजयः = तन्नामा राजा, ब्राह्मणेषु विक्रान्तः = विप्रैः सह कलहायितस्तच्छापान्नष्टः, तथा भृगुषु = भृगुवंश्येषु, विक्रान्तस्तालजङ्घः = तन्नामको राजा नष्टः। लोभात् = परद्रव्यलिप्सातः, ऐलः = इलायाः पुत्रः पुरुरवा नाम राजा, चातुर्वर्ण्यम् = चतुर्णां वर्णानाम्, अत्याहारयमाणः = अतिमात्रधनहरणेन, तच्छापान्नष्टः, तथा सौवीरः = तद्देशस्य, अजबिन्दुः = तन्नामको नृपतिरपि नष्टः। परदारान् = परभार्यां सीतामित्याशयः, अप्रयच्छन् = अपहृत्यापि न संयच्छन्, मानात् = अहम्मन्यतावशात्, रावणः = लङ्केश्वरः, नष्टः, दुर्योधनः = धृतराष्ट्रपुत्रः, राज्यांशम् = पाण्डवेभ्यो राज्यभागमयच्छन्, नष्टः। मदात् = गर्वाद् डम्भोद्भवः = तन्नामको राजा, कृतसर्वप्रजावज्ञानो नरनारायणाभ्यां सह युद्धमासाद्य हतः, तथा भूताभिमानी हैहयः = हैहयाधिपः, अर्जुनः = कार्तवीर्यः, मदात्परशुरामपितरि कृतापराधः परशुरामेण हतः। हर्षात् = प्रीत्याश्च, वातापि = तन्नामासुरः, अगस्त्यम् = तन्नामकमृषिं वञ्चयन्, वृष्णिसंघः = यादवसंघश्च, द्वैपायनम् = व्यासम्, अत्यासादयन् = अतिसन्धित्सुः, ताभ्यां शप्तौ विनेशतुः इति प्रसिद्धैतिह्यानि।

विशेष—पूर्व में काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष- ये छः आन्तरिक शत्रु इन्द्रियविजय में बाधक बताये गये थे। उन्हीं को इस स्थल पर क्रमशः सोदाहरण बताया गया है। इन्द्रियों को वश में न रखने से उक्त विकार उत्पन्न होते हैं।

काम से भोजवंशीय दाण्डक्य नामक राजा का विनाश हुआ। दाण्डक्य ने कामातुर होकर एक ब्राह्मण-कन्या का अपहरण किया, जिससे क्रुद्ध होकर ब्राह्मण ने उसे शाप दे दिया और उसका समूल विनाश हुआ। विदेहराज कराल ने भी कामवश ऐसा ही आचरण किया।

क्रोध से जनमेजय एवं तालजंघ राजा का विनाश हुआ। जनमेजय के पिता परीक्षित् की मृत्यु सर्प के काटने से हुई थी। तब जनमेजय ने सर्प जाति के विनाश हेतु सर्पयज्ञ किया और उसमें ब्राह्मणों से कलह कर बैठा। तब ब्रह्महत्या के पाप से उसका भी अनिष्ट हुआ।

लोभ के कारण इलापुत्र पुरुरवा और सुवीर देश के राजा अजबिन्दु का विनाश हुआ, क्योंकि लोभ में आकर इन्होंने प्रजा से अत्यधिक धन का अपहरण किया था। उनके शाप से इनका अहित हुआ।

मान से लंकेश्वर रावण तथा कौरव-ज्येष्ठ दुर्योधन के समूल विनाश की कथा का संकेत किया गया है।

मद से राजा डम्भोद्भव ने प्रजा का तिरस्कार किया। हैहयराज कार्तवीर्य ने महर्षि जमदग्नि का अपमान किया, इसी कारण इनका विनाश हुआ। अत्यधिक हर्ष से वातापि नामक असुर ने महर्षि अगस्त्य को प्रवञ्चित किया, इस अपमान से क्रुद्ध होकर अगस्त्य ऋषि ने उसे निगल लिया और पूरा ही पेट में पचा दिया। हर्ष से यादवों ने द्वैपायन व्यास के साथ कपटाचरण किया, तब उन्होंने क्रुद्ध होकर नगरी सहित यादव संघ को जला दिया। इस प्रकार के उदाहरण देकर इन्द्रियविजय में इन छः मनोविकारों को परम बाधक बताया गया है और इनसे बचने के लिए कहा गया है।

उक्त सभी कथानक पुराणेतिहास के प्रसिद्ध इतिवृत्त हैं। आचार्य कौटिल्य ने सावधान रहकर शास्त्रोक्त विधान से कर्त्तव्यपालन का निर्देश दिया है।

एते चान्ये च बहवः शत्रुषड्वर्गमाश्रिताः।
सबन्धुराष्ट्रा राजानो विनेशुरजितेन्द्रियाः॥ ४॥

अनुवाद—ये (पूर्वोक्त) तथा अन्य और भी बहुत-से (कामादि) छः शत्रुओं के वशीभूत होने से इन्द्रियों को न जीतने वाले राजा अपने बन्धुओं एवं राष्ट्रों के सहित विनाश को प्राप्त हो गये।

संस्कृत-व्याख्या—एते = पूर्वोक्ताः, अन्ये = अपरे च राजानः = नृपाः, शत्रुषड्वर्गमाश्रिताः = कामक्रोधादिषट्शत्रुपरवशाः, अजितेन्द्रियाः = असंयतेन्द्रियाः, सबन्धुराष्ट्राः = बान्धवराज्यादिभिः सह, विनेशुः = विनष्टाः।

शत्रुषड्वर्गमुत्सृज्य जामदग्न्यो जितेन्द्रियः।
अम्बरीषश्च नाभागो बुभुजाते चिरं महीम्॥ ५॥

अनुवाद—इन (कामादि) छः प्रकार के शत्रुओं को त्यागकर जितेन्द्रिय परशुराम, अम्बरीष और नभाग के पुत्र ने चिरकाल तक पृथ्वी का भोग किया।

संस्कृत-व्याख्या—शत्रुषड्वर्गम् = कामक्रोधादिकं शत्रुसंघम्, उत्सृज्य = परित्यज्य, जितेन्द्रियः = इन्द्रियविजयी, जामदग्न्यः = जमदग्निपुत्रः परशुरामः, अम्बरीषः = एतन्नामा नृपः, नाभागः = नभागस्य पुत्रश्च, चिरम् = दीर्घकालं यावत्, महीम् = पृथिवीं राज्यसुखं वा, बुभुजाते।

विशेष—काम-क्रोधादि शत्रुषड्वर्ग के कारण अनर्थ होने का उल्लेख कर इसमें उन पर विजय पाने से निःश्रेयस् की प्राप्ति का निर्देश किया गया है। काम-क्रोधादि को

जीतकर एवं जितेन्द्रिय बनकर परशुराम, अम्बरीष और नाभाग ने सुखपूर्वक राज्य-भोग किया। अतएव राजा को जितेन्द्रिय बनकर उनकी तरह ही कर्त्तव्य-पालन करना चाहिए।

'बुभुजाते' यह क्रिया द्विवचन की होने से 'परशुराम एवं नाभाग के पुत्र अम्बरीष ने' ऐसा अर्थ करना पड़ेगा, परन्तु 'जामदग्न्यो जितेन्द्रियः' में विशेषण-पद से क्रिया का अध्याहार हुआ है। अतएव अम्बरीष और नाभाग दोनों ने पृथ्वी का भोग किया- यह अर्थ-संगति करनी चाहिए।

॥ इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे
इन्द्रियजयेऽरिषड्वर्गत्यागः षष्ठोऽध्यायः ॥

* * *

सप्तमोऽध्यायः

तृतीयं प्रकरणम् — इन्द्रियजयः — राजर्षिवृत्तम्

तस्मादरिषड्वर्गत्यागेनेन्द्रियजयं कुर्वीत। वृद्धसंयोगेन प्रज्ञां, चारेण चक्षुरुत्थानेन योगक्षेमसाधनं, कार्यानुशासनेन स्वधर्मस्थापनं, विनयं विद्योपदेशेन, लोकप्रियत्वमर्थसंयोगेन, हितेन वृत्तिम्॥ १॥

अनुवाद—इसलिए (काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष) छः शत्रुओं का त्याग करके इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना चाहिए। विद्या-वृद्धों की से सङ्गति से बुद्धि को, गुप्तचरों द्वारा चक्षु-वृत्तान्त (स्वराष्ट्र व परराष्ट्र के वृत्तान्त) को, उद्योग के द्वारा योग-क्षेम के साधन को, राजकीय नियमों द्वारा अपने-अपने धर्म में (प्रजा की) स्थापना को, विद्याओं के उपदेश से (प्रजा जनों में) विनय को, धनादि का सम्मान प्रदान करने से लोकप्रियता को तथा परहित करने से अपने व्यवहार को संवर्धित करता रहे।

संस्कृत-व्याख्या—तस्मात् = तत्कारणात्, अरिषड्वर्गत्यागेन = कामक्रोधादीनां त्यागेन, इन्द्रियजयम् = इन्द्रियविजयं कुर्वीत = विदध्यात् श्रेयस्साधनत्वात्। वृद्धसंयोगेन = विद्यावृद्धसङ्गत्या, प्रज्ञाम् = स्वबुद्धिं विकासयेत्, चारेण = गुप्तचरपुरुषेण, चक्षुः = स्वपरराष्ट्रवृत्तप्रत्यक्षीकरणं कुर्यात्, उत्थानेन = उद्योगेन, अनुष्ठानेन वा, योगक्षेमसाधनम् = राज्यस्य योगक्षेमसम्पादनम्, कार्यानुशासनेन = इदमीदृशमित्थं कर्त्तव्यमित्याज्ञापनेन, स्वधर्मस्थापनम् = स्वधर्मे लोकस्य नियन्त्रणम्, विद्योपदेशेन = शिक्षाप्रचारेण, विनयम् = लोकस्य विनीतभावत्वम्, अर्थसंयोगेन = धनस्य समुचितेषु पात्रेषु समर्पणेन ससम्मानधनप्रदानेन वा, जनप्रियत्वम् = लोकप्रियत्वम्, हितेन = परहिताचरणेन च, वृत्तिम् = यदुचितं पथ्यं तस्य सम्पादनं लोकयात्रायां कुर्वीत।

विशेष—१. राजा को सर्वप्रथम काम-क्रोधादि अरिषड्वर्ग पर विजय करनी चाहिए। फिर उसे राजर्षि-वृत्त अर्थात् साधु-स्वभाव का पालन करते हुए अपनी जीवनचर्या का पालन करना चाहिए।

२. यह प्रसंग तृतीय प्रकरण में 'इन्द्रियजय' से सम्बन्धित है। विद्या-वृद्धों की संगति, विनय, कार्यानुशासन आदि से राजा अपना, राज्य का तथा समस्त प्रजा का हित-सम्पादन करता है। वह गुप्तचर रूपी चक्षु से स्वपरराष्ट्र की गतिविधियों को देखता रहे। ऐसा आचरण करने पर वह कभी दुःख से आक्रान्त नहीं होता है।

एवं वश्येन्द्रियः परस्त्रीद्रव्यहिंसाश्च वर्जयेत्। स्वप्नं लौल्यमनृतमुद्धतवेषत्वमनर्थसंयोगं च; अधर्मसंयुक्तमनर्थसंयुक्तं च व्यवहारम्॥ २॥

अनुवाद—इस प्रकार इन्द्रियों को वश में रखता हुआ वह (राजा) पर-स्त्री, परद्रव्य और हिंसा-प्रवृत्ति को सर्वथा त्याग दे। कुसमय शयन करना, चंचलता, असत्य बोलना, अविनीत वृत्ति बनाये रखना, इस प्रकार के आचरणों को और दुर्जनों की संगति छोड़ दे। अधर्म से युक्त तथा अनर्थकारी व्यवहार का भी परित्याग कर दे।

संस्कृत-व्याख्या—एवम् = अनेन प्रकारेण, वश्येन्द्रियः = जितेन्द्रियो नृपः, परस्त्रीद्रव्यहिंसाः = परास्त्रियं परद्रव्यं परहिंसाञ्च, वर्जयेत् = परित्यजेत्, स्वप्नम् = अयथोचितां निद्राम्, लौल्यम् = चापलम्, अनृतम् = मिथ्यावादित्वम्, उद्धतवेषत्वम् = अविनीतवेषताम्, अनर्थसंयोगम् = उक्तस्यार्थसंयोगस्य प्रत्यनीकं च वर्जयेत्। अधर्मसंयुक्तम् = पापयुक्तम्, अनर्थसंयुक्तं च = अहितकरं च, व्यवहारमपि वर्जयेत्।

विशेष—राजा को जितेन्द्रिय बनकर सभी प्रकार के अवगुणों से मुक्त रहना चाहिए, तभी वह साधु स्वभाव का राजा (राजर्षि) बन सकता है।

धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत। न निःसुखः स्यात्। समं वा त्रिवर्गमन्योन्यानुबन्धम्। एको ह्यत्यासेवितो धर्मार्थकामानामात्मानमितरौ च पीडयति॥ ३॥

अनुवाद—धर्म और अर्थ को किसी प्रकार ही क्षति पहुँचाये बिना काम का सेवन करे। सर्वथा सुखरहित जीवनयापन न करे। परस्पर अनुबद्ध धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्ग का सन्तुलित सेवन करे। धर्म, अर्थ और काम में से अत्यधिक सेवन किया गया एक अपने को तथा दूसरे दोनों को कष्ट प्रदान करता है।

संस्कृत-व्याख्या—धर्मार्थाविरोधेन = धर्मार्थयोरबाधेन, कामम् = तृतीयपुरुषार्थम्, सेवेत। निःसुखः = सुखरहितः, न स्यात् = न भवेत्। वा = अथवा, अन्योन्यानुबन्धम् = परस्परसंसृष्टम्, त्रिवर्गम् = धर्मार्थकामान्, समम् = तुल्यमात्रया, सेवेत। हि = निश्चयेन, धर्मार्थकामानां मध्ये एकः = अन्यतमः, अत्यासेवितः = अतिमात्रं व्यसनितया सेवितः सन्, आत्मानम् = स्वकम्, इतरौ च = अर्थकामौ धर्मकामौ धर्मार्थौ वा, पीडयति = क्लेशयति।

विशेष—विजगीषु राजा को इन्द्रियजय के साथ अतिमात्र रूप में किसी एक ही पुरुषार्थ का सेवन नहीं करना चाहिए। काम पुरुषार्थ का उपभोग इस तरह करना चाहिए ताकि धर्म और अर्थ का विरोध नहीं होवे। सब पुरुषार्थ समान रूप से सेवित होने पर निश्चयतः फलदायी होते हैं।

अर्थ एव प्रधान इति कौटिल्यः; अर्थमूलौ हि धर्मकामाविति॥ ४॥

अनुवाद—आचार्य कौटिल्य का अभिमत है कि धर्म, अर्थ और काम-इन तीनों में अर्थ ही प्रधान है, क्योंकि धर्म और काम अर्थ पर निर्भर या आश्रित रहते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—अर्थ एव = अयमेव पुरुषार्थः, प्रधानः = धर्मकामयोरपेक्षया मुख्यः, हि = यतः, धर्मकामौ अर्थमूलौ = अर्थसाध्यौ भवतः।

विशेष—पूर्व में बताया गया कि धर्म, अर्थ और काम का समान रूप से उपभोग करना चाहिए। इस सम्बन्ध में आचार्य कौटिल्य ने धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों में अर्थ पुरुषार्थ को अधिक महत्त्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ बताया है। इससे कौटिल्य ने स्वाभिमत प्रकट कर धर्मादि सभी पुरुषार्थों के समप्राधान्य का विरोध किया है।

मर्यादां स्थापयेदाचार्यानमात्यान् वा। य एनमपायस्थानेभ्यो वारयेयुः। छायानालिकाप्रतोदेन वा रहसि प्रमाद्यन्तमभितुदेयुः॥ ५॥

अनुवाद—आचार्यों को और अमात्यों को राजा अपनी मर्यादा बतावे, जो कि राजा को अनर्थकारी कार्यों से रोकें। एकान्त में प्रमाद करते हुए राजा को छाया से तथा नलिका आदि से उद्बुद्ध करें।

संस्कृत-व्याख्या—आचार्यान् = गुरून्, अमात्यान् = मन्त्रिणः, वा = च, मर्यादाम् = सीमाम्, स्थापयेत् = विदध्यात्। ये = आचार्या मन्त्रिणो वा, एनम् = राजानम्, अपायस्थानेभ्यः = अनर्थकारणानुष्ठानेभ्यः, वारयेयुः = निर्वतयेयुः। रहसि = अन्तःपुरादौ, प्रमाद्यन्तम् = अतिप्रसजन्तमेनम्, छायानालिकाप्रतोदेन = छाया त्रिपौरुष्यादिरूपं छायाप्रमाणमतीतघटिकावेदकं नालिका घटिकाप्रमाणं तदुभयरूपेण प्रतोदेन कार्यान्तरकालातिपातसूचनद्वारा, प्रतोदनतुल्येन पुनः पुनः घटिकादिनिवेदनेन, अभितुदेयुः = परिव्यथयेयुः।

विशेष—१. यदि राजा अन्तःपुर आदि एकान्त स्थानों में प्रमाद करता हुआ समय का ध्यान न रखे, तो आचार्य, अमात्य आदि को चाहिए कि वे राजा को अपनी मर्यादा बतावें तथा उसे अनर्थकारी कामों से रोकने के उपाय करें। इसके लिए वे समय की सूचना देने वाले यन्त्रों से अथवा घण्टा आदि बनाकर उसे सचेत करें।

२. समय का विभाजन करने के लिए एक तरीका यह है कि सूर्योदय से लेकर जब तक छाया तीन पुरुष प्रमाण लम्बी रहे, उतना काल दिन का प्रथम भाग होता है। जब छाया एक पुरुष प्रमाण रहे, वह दिन का द्वितीय भाग होता है। तदनन्तर छाया चार अंगुल रहे, तब दिन का तृतीय भाग और छाया बिन्दुवत् सूक्ष्म रहे तो दिन का चतुर्थ भाग होता है। इसी प्रकार दिन के उत्तरार्द्ध के चार भाग होते हैं। सम्पूर्ण दिन का समय-विभाग छाया के प्रमाण से विभक्त रहता है। इस समय-विभाग की सूचना घण्टे आदि को बजाकर दी जाती है। आचार्य कौटिल्य ने इसका विवेचन राजप्रणिधि प्रकरण में अर्थात् उन्नीसवें अध्याय में किया है।

सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते।
कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां च शृणुयान्मतम्॥ ६॥

अनुवाद—एक पहिये की गाड़ी की भाँति राजकाज भी बिना सहायता-सहयोग से नहीं चलाया जा सकता है। इसलिए राजा को चाहिए कि सुयोग्य अमात्यों की नियुक्ति कर उनके परामर्शों को हृदयंगम करे।

संस्कृत-व्याख्या—सहायसाध्यम् = अमात्यादिसहायनिर्वाह्यम्, राज्यत्वम् = शासनकार्यम्, चक्रमेकम् = शकटादौ युक्तमेकं चक्रमिव, न वर्तते = सहायरहितं न प्रचलति। अतो नृपः सचिवान् = अमात्यान्, च = आचार्यान्, कुर्वीत = नियुजेत्, तस्मात् तेषां मतम् = परामर्शकथनम्, शृणुयात्, श्रुत्वा चानुतिष्ठेत्।

विशेष—जिस प्रकार किसी गाड़ी में एक पहिया दूसरे पहिये के बिना चल नहीं सकता है, उसी प्रकार अमात्यों आदि के बिना राजा का कार्य नहीं चलता है। इसलिए कार्यानुसार राजा को अमात्यों की नियुक्ति करनी चाहिए और उनके अभिमत पर विचार करना चाहिए। श्लोक में 'च' का प्रयोग अमात्यों के साथ ही आचार्यों की नियुक्ति का तथा उनके मतानुसार आचरण करने का अर्थ बोधित करा रहा है।

॥ इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे राजर्षिवृत्तं सप्तमोऽध्यायः ॥

अष्टमोध्याय:

चतुर्थ प्रकरणम् — अमात्योत्पत्तिः

सहाध्यायिनोऽमात्यान् कुर्वीत, दृष्टशौचसामर्थ्यत्वादिति भारद्वाजः। ते ह्यस्य विश्वास्या भवन्तीति॥ १॥

अनुवाद—आचार्य भारद्वाज का अभिमत है कि राजा अपने सहपाठियों को अमात्य पद पर नियुक्त करे, क्योंकि वह उनके हृदय की पवित्रता और कार्यक्षमता से सुपरिचित होता है। वे सहपाठी अमात्य (राजा के) विश्वासपात्र होते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—सहाध्यायिनः = सहपाठिनः, अमात्यान् = सचिवान्, कुर्वीत = विदध्यात्, दृष्टशौचसामर्थ्यत्वात् = शौचं हृदयशुद्धिः तच्च सामर्थ्यं कार्यनैपुण्यं च दृष्टं सहाध्ययनकाले प्रत्यक्षितं येषां तेषां भावस्तत्त्वं तस्मात्, इति भारद्वाजः = भारद्वाजाचार्यस्य मतम्। हि = यतः, ते = सहाध्यायिनोऽमात्याः, अस्य = राज्ञः, विश्वास्याः = विश्वासयोग्याः, भवन्ति = जायन्ते इति मुख्यं कारणम्।

विशेष—१. सहपाठियों के साथ रहने से उनकी हृदयगत पवित्रता, कार्य करने की क्षमता आदि का राजा को पहले से ज्ञान रहता है। इसलिए आचार्य भारद्वाज का मत है कि राजा अमात्य के पदों पर सहपाठियों को ही नियुक्त करे, क्योंकि वे विश्वास-योग्य होते हैं।

२. अमात्य राजा की हर तरह से सहायता करते हैं, राज्य-कार्य में उसे सक्षम बनाते हैं। इस विषय में भारद्वाज आदि सात आचार्यों के अभिमतों का उल्लेख किया गया है। सर्वप्रथम आचार्य भारद्वाज का मत यहाँ दिया गया है।

नेति विशालाक्षः। सहकीडितत्वात् परिभवन्त्येनम्। ये ह्यस्य गुह्यसधर्माणस्तानमात्यान् कुर्वीत, समानशीलव्यसनत्वात्। ते ह्यस्य मर्मज्ञभयान्नापराध्यन्तीति॥ २॥

अनुवाद—आचार्य विशालाक्ष का मत है कि यह ठीक नहीं है। साथ-साथ खेलने के कारण वे राजा का तिरस्कार कर सकते हैं। क्योंकि जो राजा के गुप्तकार्यों में साथ देने वाले हों, समान शील और समान व्यसन वाले हों, उन्हें अमात्य बनाना चाहिए। क्योंकि वे गुप्त बातों के खुल जाने के भय से राजा के प्रति कभी अपराध नहीं करते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—विशालाक्षः = एष आचार्यः नेति = पूर्वमतं न स्वीकरोति, प्रतिषेधयति वा। सहक्रीडितत्वात् = सहाध्ययनकाले सहक्रीडनवशात्, ते अमात्याः, एनम् = राजानम्, परिभवन्ति = अवजानन्ति। हि = यतः, ये = अमात्याः, अस्य गुह्यसधर्माणः = गुप्तकार्यसहयोगिनः, समानशीलव्यसनत्वात् = शीलच्युत्यादिकर्मसु समानाचरणात्,

तान् अमात्यान् = तथाविधान् सचिवान्, कुर्वीत = विदध्यात्। हि = यतः, ते = गुह्यसधर्माणः, मर्मज्ञभयात् = अस्मन्मर्मज्ञो राजेति भयात्, अस्य नापराध्यन्ति = अपराधं न कुर्वन्ति, यत्नेन शीलसौष्ठवमासाद्य स्वकर्म सम्यगनुतिष्ठन्तीत्यर्थः।

विशेष—१. विशालाक्ष नामक आचार्य सहपाठियों को अमात्य बनाया जाना ठीक नहीं मानते हैं। इसका कारण यह है कि सहपाठी खेल में होने वाली हार-जीत की बात का स्मरण कर कभी राजा का अपमान भी कर सकते हैं।

२. राजा ने जिनके साथ गुप्त कार्यों का सम्पादन किया हो, अर्थात् गुप्त कार्यों में जो सहयोगी रहे हों तथा जिनकी गुप्त बातों को राजा जानता हो, उन्हें अमात्य नियुक्त करना चाहिए। क्योंकि ऐसे अमात्य रहस्य प्रकट कर देने के भय से राजा का तिरस्कार नहीं करते हैं, कोई अपराध नहीं करते हैं।

साधारण एष दोष इति पराशरः। तेषामपि मर्मज्ञभयाकृताकृतान्यनुवर्तेत॥ ३॥

अनुवाद—आचार्य पराशर के मत में आचार्य विशालाक्ष के तर्क ठीक नहीं हैं। यह बात दोनों पक्षों पर घटित होती है। ऐसा करने पर गुप्त बातों का भेद खुल जाने के भय से राजा भी उनके अच्छे या बुरे सभी कार्यों का अनुसरण करेगा।

संस्कृत-व्याख्या—एष दोषः = दुःशीलत्वं तु, साधारणः = गुह्यसर्धणां राज्ञश्च समानः, इति पराशरः = एतन्नामकस्य आचार्यस्य मतमस्ति। अत्र दोषोऽस्ति तेषामपि = अमात्यानामपि, मर्मज्ञभयाकृताकृतानि = अमात्या मन्मर्मज्ञा इति भयात् कृताकृतानि = उचितानुचितकर्माणि, राजा अनुवर्तेत = अनुसरेत्।

विशेष—पराशर का मत है कि गुप्त बातों के प्रकाशन का भय तो दोनों ही पक्षों को रहेगा। राजा आचार्यों के मर्म को जानेगा और अमात्य राजा के मर्म को जानेंगे। ऐसे में सम्भव है कि अमात्य राजा का मर्म प्रकट कर दें और उसका तिरस्कार कर दें। तब राजा को मर्म-प्रकाशन के भय से अमात्यों के अच्छे और बुरे सभी कार्यों का अनुसरण करना पड़ेगा। इस तरह राजा अमात्यों की कठपुतली बन जायेगा।

यावद्भ्यो गुह्यमाचष्टे जनेभ्यः पुरुषाधिपः।
अवशः कर्मणा तेन वश्यो भवति तावताम्॥ ४॥

अनुवाद—राजा जिन लोगों से जितना ही अपनी गुप्त बातें प्रकट करता है, उतना ही शक्ति से क्षीण होकर वह उनके वश में हो जाता है।

संस्कृत-व्याख्या—पुरुषाधिपः = राजा, जनेभ्यः = मानवेभ्यः, गुह्यम् = स्वशीलभ्रंशम्, यावत्, आचष्टे = प्रकाशयति, तावद् भयः, तेन कर्मणा = गुह्यसधर्मणां प्रकाशनेन, अवशः = अधीरः, तावताम् = तेषाममात्यादीनाम् वश्यो भवति = वशीभूतो जायते।

विशेष—पराशर का मत है कि राजा कभी भी अपने शीलभ्रंश की गुप्त बात को किसी के सामने प्रकट नहीं करे। क्योंकि जिनके सामने वह अपनी गुप्त बातों को प्रकट करता है, उनसे वह यह सोचकर भयभीत और क्षीणशक्ति बना रहता है कि कहीं ये मेरी गुप्त बातों को प्रकट न कर दें। इसलिए गुह्यसधर्मा को अमात्य पद पर नियुक्त नहीं करना चाहिए।

य एनमापत्सु प्राणबाधयुक्तास्वनुगृह्णीयुस्तानमात्यान् कुर्वीत, दृष्टानुरागत्वादिति॥ ५॥

अनुवाद—जो पुरुष प्राणघातक आपत्तियों में राजा की रक्षा करे, उन्हीं को अमात्य बनाना चाहिए, क्योंकि उनके अनुराग की परीक्षा राजा कर चुका होता है।

संस्कृत-व्याख्या—पराशरस्य कथनमस्ति यत् प्राणबाधयुक्तासु = प्राणघातकेषु, आपत्सु = विपत्सु, यः = जनः, एनम् = राजानम्, अनुगृह्णीयुः = उपकुर्युः, दृष्टानुरागत्वात् = दृष्टपरीक्षितप्रेमाचरणत्वात्, इति कारणात्, तान् अमात्यान् = सचिवान्, कुर्वीत = कुर्यात्।

विशेष—जो व्यक्ति प्राणघातक विपत्तियों से राजा की रक्षा करे, वह निश्चय ही राजा से अनुराग रखता है, ऐसा मानकर उसे ही अमात्य पद पर नियुक्त करना चाहिए। यह पराशर आचार्य का मत है।

नेति पिशुनः। भक्तिरेष न बुद्धिगुणः। संख्यातार्थेषु कर्मसु नियुक्ता ये यथादिष्टमर्थं सविशेषं वा कुर्युस्तानमात्यान् कुर्वीत, दृष्टगुणत्वादिति॥ ६॥

अनुवाद—आचार्य पिशुन का मत है कि यह उचित नहीं है। यह तो भक्ति है, बुद्धिमत्ता नहीं। विशिष्ट राजकीय कार्यों पर नियुक्त होकर जो कार्यों को विशेष योग्यता के साथ सम्पन्न कर दें, उन्हें अमात्य बनाना चाहिए, क्योंकि उनकी बुद्धिमत्ता की परीक्षा (पहले ही) हो जाती है।

संस्कृत-व्याख्या—पिशुनः = एतन्नामा आचार्यः, नेति = पराशरमतं नोचितम्। एषा = स्वशरीरनैरपेक्ष्येण राजरक्षणकार्यं तु भक्तिः = सेवाधर्मः, न तु बुद्धिगुणः = प्रज्ञाचातुर्यम्। ये = जनाः, संख्यातार्थेषु = परिगणितद्रव्योत्पत्तिषु कर्मसु, नियुक्ताः = नियोजिताः, अर्थम् = कार्यजातम्, यथादिष्टं सविशेषं वा = विशिष्टयोग्यताप्रदर्शनपूर्वकं च, कुर्युः = सम्पादयेयुः, तान् अमात्मान् = सचिवान्, दृष्टगुणत्वात् = कृतबुद्धिवैशिष्ट्यपरीक्षणात्, इत्यस्मात्, कुर्वीत = कुर्यात्।

विशेष—१. आचार्य पिशुन (म. म. गणपति शास्त्री के अनुसार नारद) का मत है कि जो बताये गये समस्त कार्यों को विशेष योग्यता के साथ पूरा करें, उन्हें अमात्य नियुक्त करना चाहिए। क्योंकि निर्दिष्ट कार्य को कुशलता एवं बुद्धिमत्ता से सम्पन्न करने से उनकी योग्यता का परीक्षण हो जाता है। राजा की प्राणघातक आपत्तियों से रक्षा करना तो केवल राजभक्ति है, सेवाधर्म की भावना है, न कि कार्य-सम्पादन की विशिष्ट योग्यता। अतः आचार्य पराशर का मत उचित नहीं है।

नेति कौणपदन्तः। अन्यैरमात्यगुणैरयुक्ता ह्येते। पितृपैतामहानमात्यान् कुर्वीत, दृष्टापदानत्वात्। ते ह्येनमपचरन्तमपि न त्यजन्ति, सगन्धत्वात्। अमानुषेष्वपि चैतद् दृश्यते—गावो ह्यसगन्धं गोगणमतिक्रम्य सगन्धेष्वेवावतिष्ठन्ते इति॥ ७॥

अनुवाद—आचार्य कौणपदन्त का कथन है कि यह मत ठीक नहीं है। क्योंकि ऐसे लोग अमात्योचित गुणों से शून्य होते हैं। अमात्यपद जिनको वंश-परम्परा से उपलब्ध

रहा हो, उन्हीं को इस पद पर नियुक्त करना चाहिए। वे ही उसकी सम्पूर्ण रीति-नीति से सुपरिचित होते हैं। यही कारण है कि वे अपना अपकार होने पर भी, परम्परागत सम्बन्ध के कारण राजा को नहीं छोड़ते। यह बात पशु-पक्षियों तक में देखी जाती है; गाय, अपरिचित गोष्ठ को छोड़कर परिचित गोष्ठ में ही जाकर ठहरती है।

संस्कृत-व्याख्या—कौणपदन्तः नेति = पिशुनमतं नोचितं कथयति। हि = यतः, एते = जनाः, अन्यैः अमात्यगुणैः = धनभावनातिरिक्तैर्विश्वास्यत्वानुरक्तत्वादिभिर्गुणैः, अयुक्ताः = रहिता भवन्ति। पितृपैतामहान् = पितृपितामहक्रमागतान्, अमात्यान् कुर्वीत, यतो हि ते दृष्टापदानत्वात् = दृष्टं साक्षादनुभूतम् अपदानं पूर्ववृत्तं येषां तेषां भावस्तत्त्वं तस्मात्। ते = पितृपितामहक्रमागताः सचिवाः, अपचरन्तम् = आत्मापकारिणमपि, एनम् = राजानम्, सगन्धत्वात् = सम्बन्धित्वात् परम्परागतपरिचयवशात्, न त्यजन्ति = न परित्यागं कुर्वन्ति। एतत् = परिचयस्यात्यागकारणम्, अमानुषेषु = पशुपक्ष्यादिष्वपि, दृश्यते = विलोक्यते, यथा हि गावोऽसगन्धम् = अपरिचितम्, गोगणम् = गोसमूहम्, अतिक्रम्प, सगन्धेषु = परिचितेष्वेव, अवतिष्ठन्ते इति सुविदितमेव।

विशेष—आचार्य कौणपदन्त का मत है कि पितृपितामह की वंशपरम्परा से अमात्यों की नियुक्ति करनी चाहिए। क्योंकि वे वंश-परम्परा से राजा से परिचित रहते हैं और उसका कदापि साथ नहीं छोड़ते हैं। उदाहरण के लिए गायें अपरिचित गोष्ठ या अन्य पशुओं के समुदाय में नहीं जाती हैं, वे परिचित पशु-समूह में ही जाती हैं। इसी प्रकार अमात्य भी सुपरिचित होने चाहिए।

नेति वातव्याधिः। ते ह्यस्य सर्वमपगृह्य स्वामिवत् प्रचरन्तीति। तस्मान्नीतिविदो नवानमात्यान् कुर्वीत। नवास्तु यमस्थाने दण्डधरं मन्यमाना नापराध्यन्तीति॥ ८॥

अनुवाद—आचार्य वातव्याधि (श्री कृष्ण के मन्त्री एवं मित्र उद्धव) इस मत को ठीक नहीं मानते। उनका कथन है कि इस प्रकार के अमात्य राजा का सर्वस्व अपने अधीन करके स्वामी की तरह स्वतन्त्र आचरण करते हैं। इसलिए नीतिकुशल राजा नये नीतिज्ञ व्यक्तियों को अमात्य नियुक्त करे। नये अमात्य दण्डधारी राजा को यम का अवतार मानकर कभी भी अपराध या अवमानना नहीं करते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—वातव्याधिः = उद्धवः, नेति = कौणपदन्तमतं नानुमन्यते। हि = यतः, ते = कुलक्रमागता अमात्याः, अस्य = नृपस्य, सर्वम् = समस्तं विभवम्, अपगृह्य = स्वायत्तीकृत्य, स्वामिवत् प्रचरन्ति = स्वतन्त्रवृत्तयो भूत्वा स्वैरमाचरन्ति। तस्मात् कारणात्, नीतिविदः = नीतिशास्त्रज्ञान्, नवान् अमात्यान् = पूर्वकुलक्रमागतसम्बधरहितान् सचिवान्, कुर्वीत। नवास्तु = नवामात्यास्तु, दण्डधरम् = नृपम्, यमस्थाने मन्यमानाः = यमवदुग्रदण्डं बुध्यमानाः, नापराध्यन्ति = अपराधनमवमाननं वा नैव कुर्वन्ति, इति।

विशेष—१. आचार्य वातव्याधि ने कौणपदन्त के मत को अनुचित बताया है। उनके अनुसार पितृ-पितामह के कुलक्रम से नियुक्त किये गये अमात्य प्रायः स्वयं को

विशिष्ट मानकर चलते हैं। इसलिए वे स्वच्छन्द आचरण कर राजा के सर्वस्व पर अपना अधिकार जमा लेते हैं तथा उसकी अवमानना करते हैं।

२. नये लोगों को अमात्य पद पर नियुक्त करने से वे राजा से सदा भयभीत रहते हैं। इसलिए वे कोई भी अवमानना या अपराध नहीं करते हैं। ऐसे नये लोग नीतिशास्त्र के ज्ञाता होने चाहिए।

नेति बाहुदन्तीपुत्रः। शास्त्रविददृष्टकर्मा कर्मसु विषादं गच्छेत्। अभिजनप्रज्ञाशौचशौर्यानुरागयुक्तानमात्यान् कुर्वीत, गुणप्राधान्यादिति॥ ९॥

अनुवाद—बाहुदन्तीपुत्र इस मत को नहीं मानते हैं। शास्त्रों के ज्ञाता भी (अमात्य के) करणीय कर्मों से अपरिचित होने से कार्य-संचालन में असफल रहते हैं। इसलिए कुलीन, बुद्धिमान्, पवित्राचरण, वीर तथा अनुरागी (राजभक्त) लोगों को अमात्य बनाना चाहिए; क्योंकि उनमें गुणों की प्रधानता होती है।

संस्कृत-व्याख्या—बाहुदन्तीपुत्रः = इन्द्रः, नेति = इममपि पक्षं न सहते। शास्त्रवित् = नीतिशास्त्रनिष्णातः, अदृष्टकर्मा = तदर्थानुष्ठानपरिचयरहितः (अनभ्यस्तः), कर्मसु = अमात्यकर्मसु, विषादम् = अवसादम्, गच्छेत् = प्राप्नुयात्। तर्हि अभिजनः = वंशशुद्धिः, प्रज्ञा = बुद्धिमान्, शौचम् = उपधाशुद्धिः, शौर्यम् = उत्साहशक्तिः, अनुरागः = स्वामिभक्तिः, एतैर्युक्ता ये पुरुषास्तान्, अमात्यान् कुर्वीत = विदध्यात्। कुतः, गुणप्राधान्यात् = गुणानामेव प्रधानत्वात्, इति।

विशेष—बाहुदन्तीपुत्र का कथन है कि वातव्याधि द्वारा नवीन व्यक्तियों को अमात्य पद पर नियुक्त करने का मत अनुचित है। क्योंकि वे नवीन लोग भले ही नीतिशास्त्र में निष्णात हों परन्तु अमात्य-कर्म का उन्हें अनुभव न होने से असफलता मिलती है, वे सदा परेशान रहते हैं। अतएव जिस व्यक्ति में कुलीनता, बुद्धिमत्ता, पवित्रता अथवा विश्वासपात्रता, वीरता और राजा के प्रति अनुराग हो, उसे अमात्य पद पर नियुक्त करना चाहिए। क्योंकि ऐसे व्यक्ति में सभी गुण विद्यमान रहते हैं और वह अपने गुणों के कारण अमात्य के सभी कार्यों में सर्वथा सफल रहता है।

सर्वमुपपन्नमिति कौटिल्यः। कार्यसामर्थ्याद्धि पुरुषसामर्थ्यं कल्प्यते सामर्थ्यतश्च॥ १०॥

अनुवाद—पूर्वोक्त सभी मत उचित हैं-ऐसा कौटिल्य का अभिमत है। क्योंकि किसी पुरुष की समर्थता उसकी कार्यकुशलता एवं विद्या-बुद्धि के बल से जानी जाती है।

संस्कृत-व्याख्या—सर्वम् उपपन्नम् = शौचसामर्थ्यादयो गुणाः स्वामिपरिभवादिदोषाश्च भारद्वाजविशालक्षपराशरप्रभृतिभिः पूर्वोक्ताः सहाध्यायिप्रमुखाः न्याय्याः, इति कौटिल्यः = इति आचार्यचाणक्यस्य स्वमतम्। कुतः, हि = यस्मात् कारणात्, पुरुषसामर्थ्यम् = पुरुषस्य तत्तदधिकारपदयोग्यता, कार्यसामर्थ्यात् = कार्याणां सहाध्ययनक्रीडादीनां शक्त्या, सामर्थ्याच्च = प्रज्ञासंस्कारशौर्यादितारतम्ययोगित्वलक्षणात्, कल्पते = व्यवस्थाप्यते।

अर्थात् विश्वास्यत्वादिगुणयोगात् सहाध्यायिप्रभृतयो न हेयाः, नापि मन्त्रिपदे कर्त्तव्याः परिभवदोषादियोगात्, तत्तद्गुणापेक्षेषु कर्मसु देशकालानुरोधेन नियोक्तव्याः।

विशेष—आचार्य कौटिल्य ने पूर्व में भारद्वाज, विशालाक्ष, पराशर, पिशुन, कौणपदन्त, वातव्याधि और बाहुदन्तीपुत्र-इन सात आचार्यों के अभिमत का उल्लेख कर स्वाभिमत व्यक्त किया है। कौटिल्य ने पूर्वोक्त मतों को अलग-अलग विचार परम्परा से उचित ही माना है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अलग विशेषता होती है। कार्य-सम्पादन करने की क्षमता उसकी कार्यकुशलता एवं बौद्धिक-शक्ति पर निर्भर करती है। यदि किसी में कोई दोष या न्यूनता है, तो कोई गुण भी उसमें रहता है। इसलिए पूर्वोक्त सभी तरह के व्यक्तियों की कार्यकुशलता और बुद्धिमत्ता की परीक्षा करके ही उन्हें अमात्य पद पर नियुक्त करना चाहिए। अपने सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए आचार्य कौटिल्य अन्त में कहते हैं कि—

विभज्यामात्यविभवं देशकालौ च कर्म च।
अमात्याः सर्व एवैते कार्याः स्युर्न तु मन्त्रिणः॥ ११॥

अनुवाद—विश्वासपात्रतादि अमात्य-गुणसम्पत्ति को देश, काल और कार्य को उचित विभाजित करके ही सभी को अमात्य नियुक्त करना चाहिए, किन्तु उन्हें मन्त्री नहीं बनाना चाहिए।

संस्कृत-व्याख्या—अमात्यविभवम् = विश्वास्यत्वाद्यमात्यगुणसम्पदम्, देशकालौ च कर्म च = यस्मिन् देशे यस्मिन् काले यस्य कर्मणः सुष्ठु निष्पत्तये यो गुणोऽपेक्ष्यते, तं तं यथायथम्, विभज्य = विविच्य, सर्व एवैते = पूर्वोक्ताः, तत्तद्गुणवन्तः सहाध्यायादयः सर्वेऽपि, अमात्याः = कर्मसचिवाः, कार्याः = नियोज्याः, तु मन्त्रिणः = मन्त्रिपदे निवेश्याः, न स्युः = नैव भवेयुः।

विशेष—आचार्य कौटिल्य का मत है कि राजा को आचार्य भारद्वाज के मतानुसार सहपाठी, विशालाक्ष के अनुसार गुह्यसधर्मा, पराशर के अनुसार आपत्ति में सहायक, पिशुन के अनुसार निर्दिष्ट कार्यों का सफलता से सम्पादन करने वाला, कौणपदन्त के अनुसार वंशपरम्परागत, वातव्याधि के अनुसार नवीन और बाहुदन्तीपुत्र के अनुसार कुलीनता आदि गुणों से युक्त किसी भी व्यक्ति की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। यदि उसमें उक्त गुण हों, तो देश, काल और कार्य की उचित विवेचना करके इन्हें अमात्य पद पर नियुक्त करना चाहिए। परन्तु उन्हें अपना मन्त्री नहीं बनाना चाहिए।

॥ इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणेऽमात्योत्पत्तिर्नामाष्टमोऽध्यायः॥

❑❑❑

नवमोऽध्यायः

पञ्चमं प्रकरणम्—मन्त्रिपुरोहितोत्पत्तिः

जानपदोऽभिजातः स्ववग्रहः कृतशिल्पश्चक्षुष्मान् प्राज्ञो धारयिष्णुर्दक्षो वाग्मी प्रगल्भः प्रतिपत्तिमानुत्साहप्रभावयुक्तः क्लेशसहः शुचिर्मैत्रो दृढभक्तिः शीलबलारोग्यसत्त्वसंयुक्तः स्तम्भचापल्यवर्जितः संप्रियो वैराणामकर्तेत्यमात्यसम्पत्। अतः पादार्धगुणहीनौ मध्यमावरौ॥ १॥

अनुवाद—अपने जनपद (देश) में उत्पन्न, कुलीन, उत्तम बन्धुओं से युक्त, शिल्प का ज्ञाता, अर्थशास्त्र का ज्ञाता, बुद्धिमान्, स्मरणशक्ति सम्पन्न, चतुर, वाक्पटु, प्रगल्भ, प्रतीकार करने में समर्थ, उत्साही, प्रभावशाली, कष्टसहिष्णु, पवित्र, मित्रता के योग्य, दृढ-स्वाभिभक्ति वाला, सुशील, समर्थ, स्वस्थ, धैर्यवान्, अभिमान एवं चंचलता से रहित, प्रियदर्शी तथा द्वेषवृत्तिरहित व्यक्ति प्रधान अमात्य पद का आभूषण (योग्य) है। इनमें से एक-चौथाई अथवा आधी योग्यताओं (गुणों) से हीन व्यक्ति को (क्रमशः) मध्यम या निष्कृष्ट मन्त्री समझना चाहिए।

संस्कृत-व्याख्या—जानपदः = विजिगीषुराष्ट्रभवः, अभिजातः = विशुद्धान्वयः, स्ववग्रहः = शोभनबन्धुयुक्तः प्रमादादिकाकार्यप्रवृत्तेर्वारयितुं शक्यः सुखेन वावग्रहीतुं शक्यः, कृतशिल्पः = शिक्षितं समस्तं कलाशिल्पादिकं येन सः, चक्षुष्मान् = अर्थशास्त्रं चक्षुः तदभिज्ञः, प्राज्ञः = सहजबुद्धिसम्पन्नः, धारयिष्णुः = अविस्मरणीलः, दक्षः = क्षिप्रकारी, वाग्मी = मधुरोपपन्नवक्ता, प्रगल्भः = प्रौढः, प्रतिपत्तिमान् = प्रतिवक्तुं प्रतीकारे च समर्थः, उत्साहप्रभावयुक्तः = उत्साहप्रभुशक्तिसम्पन्नः, क्लेशसहः = जितश्रमः, शुचिः = चतुर्विधोपधाशुद्धः, मैत्रः = सदा स्निग्धव्यवहर्ता, दृढभक्तिः = प्रखरराजानुरागः, शीलबलारोग्यसत्त्वयुक्तः = सद्वृत्तशक्तिनिर्व्याधिधैर्ययुक्तः, स्तम्भचापल्यवर्जितः = गर्वरहितः स्थिरप्रकृतिश्च, संप्रियः = सौम्यदर्शनः, वैराणामकर्ता = स्त्रीभूम्यादिनिमित्तानां वैराणामनुत्पादकः शमयिता च, इति अमात्यसम्पत् = सचिवगुणवैभवं भवति। अर्थात् उक्तरीत्या पञ्चविंशतिगुणैः सम्पन्न उत्तमो मन्त्री भवति। अतः पादार्धगुणहीनौ = चतुर्थांशगुणहीनः, अर्धगुणहीनश्च, मध्यमावरौ = क्रमशः मध्यमकोटिकः अवरकोटिकश्च मन्त्री मन्यते।

विशेष—आचार्य कौटिल्य ने इसमें प्रधान अमात्य (मन्त्री) के विभिन्न गुणों का निर्देश किया है। ये सभी गुण पच्चीस हैं, यथा—

१. वह अपने ही देश में उत्पन्न हुआ हो।

२. श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न हो।

३. श्रेष्ठ बन्धु-बान्धवों वाला तथा प्रमादरहित हो।

४. गज-अश्वारोहण-रथचर्या-युद्ध-गायन-वादन आदि समस्त चतुष्पष्टि कलाओं का ज्ञाता हो।

५. राजनीति, अर्थशास्त्र का ज्ञाता और उत्तम दृष्टिवाला हो।

६. सहज बुद्धि से सम्पन्न हो।

७. स्मरण शक्ति से युक्त हो, भुलक्कड़ न हो।

८. कार्य में चातुर्य हो।

९. सुन्दर एवं औचित्यपूर्ण वक्ता हो।

१०. प्रौढ स्वभाव वाला एवं दबंग प्रकृति का हो।

११. प्रतीकार करने में एवं प्रतिवाद करने में समर्थ हो।

१२. उत्साह से युक्त हो।

१३. प्रभुशक्ति से सम्पन्न हो, प्रभावशाली हो।

१४. कष्टों को सहन करने में समर्थ हो।

१५. सब तरह से पवित्राचरण वाला हो।

१६. मित्रता के योग्य या अनुकूल हो।

१७. राजा के प्रति दृढ़ अनुराग (राजभक्ति) रखने वाला हो।

१८. सदाचारी (सुशील) हो।

१९. शक्तिशाली हो।

२०. स्वस्थ एवं नीरोग हो।

२१. धैर्यवान् (निर्भय) हो।

२२. अभिमान या गर्व से रहित हो।

२३. चंचल न होकर स्थिर प्रकृति का हो।

२४. सौम्य आकृति वाला हो।

२५. स्त्री-सम्पत्ति आदि के कारण किसी से शत्रुता न रखने वाला हो।

इस प्रकार उत्तम मन्त्री में पच्चीस गुण होने चाहिए। जिसमें एक-चौथाई गुण नहीं रहते हैं, वह मध्यम कोटि का मन्त्री तथा जिसमें आधे गुण नहीं रहते हैं, वह अधम कोटि का मन्त्री होता है।

उक्त गुणों में 'वाग्मी' तथा 'प्रगल्भ' अलग-अलग गुण बताये गये हैं, न कि एक ही। इसलिए ये गुण चौबीस न होकर पच्चीस हैं। वस्तुत: ये सभी गुण अमात्य के आभूषण हैं, अर्थात् उत्तम कोटि के मन्त्री की योग्यता के परिचायक हैं तथा ऐसे व्यक्ति को ही मन्त्री नियुक्त करना चाहिए।

तेषां जनपदमवग्रहं चाप्यतः परीक्षेत, समानविद्येभ्यः शिल्पं शास्त्रचक्षुष्मत्तां च; कर्मारम्भेषु प्रज्ञां धारयिष्णुतां दाक्ष्यं च; कथायोगेषु वाग्मित्वं प्रागल्भ्यं प्रतिभानवत्त्वं च; आपद्युत्साहप्रभावौ क्लेशसहत्वं च; संव्यवहाराच्छौचं मैत्रतां दृढभक्तित्वं च; संवासिभ्यः शीलबलारोग्यसत्त्वयोगमस्तम्भमचापल्यं च; प्रत्यक्षतः संप्रियत्वमवैरित्वं च॥ २॥

अनुवाद—(मन्त्री नियुक्त करने से पूर्व राजा को चाहिए कि वह) उनके निवास स्थान और बन्धु-बान्धव आदि के विषय में आप्त पुरुषों के द्वारा परीक्षा करे, सहपाठियों से उनकी शिल्पकला और शास्त्रों की योग्यता का, कार्यों में नियुक्त कर उनकी बुद्धि, स्मरण शक्ति तथा चातुर्य का, सभाओं अथवा व्याख्यानों के द्वारा उनकी वाक्पटुता, प्रगल्भता एवं प्रतिभा का, आपत्तियों से उत्साह, प्रभाव एवं सहिष्णुता का, समान व्यवहार से उनकी पवित्रता, मित्रता एवं दृढ़भक्ति का, सहवासी अथवा पड़ोसियों से उनके शील, बल, स्वास्थ्य, निर्भयता, गर्वराहित्य एवं स्थिरस्वभाव का परीक्षण करे (पता लगावे) और स्वयं प्रत्यक्ष व्यवहार से राजा उनके मधुर भाषी स्वभाव एवं द्वेषरहित प्रकृति का परीक्षण करे।

संस्कृत-व्याख्या—तेषाम् = प्रधानामात्यादीनाम्, राजा, आप्यतः = आप्तपुरुषेभ्यः, यथार्थदृष्टिवादिभ्यो वा, जनपदमवग्रहं च = निवासस्थानं बन्धुबान्धवगुणम्, परीक्षेत = परीक्षणं कुर्यात्, समानविद्येभ्यः = सहपाठिजनेभ्यस्तेषाम्, शिल्पम् = विविधकलाप्रावीण्यम्, शास्त्रचक्षुष्मत्तां च = राजनीतिशास्त्रज्ञतां च (परीक्षेत), कर्म्मारभ्भेषु = कार्यानुष्ठानेषु, प्रज्ञाम् = बुद्धिम्, धारयिष्णुताम् = स्मरणशक्तिम्, दाक्ष्यम् = चातुर्यं च (परीक्षेत), कथायोगेषु = कार्यकथनप्रसङ्गेषु व्याख्यानावसरेषु वा, वाग्मित्वम् = वाक्पटुत्वम्, प्रतिभानवत्वम् = नव-नवप्रज्ञोन्मेषशालित्वं च (परीक्षेत), आपदि = विपत्तौ, उत्साहप्रभावौ, क्लेशसहत्त्वम् = कष्टसहिष्णुत्वं च, संव्यवहारात् = समाचरणात्, शौचम् = शुचित्वम्, मैत्रताम् = मित्रत्वम्, दृढभक्तित्वं च = राजभक्तित्वं च, संवासिभ्यः = सहवासिभ्यः प्रतिवेशिभ्यः, शीलबलारोग्यसत्त्वयोगम् = सदाचरणशक्तिस्वास्थ्यनिर्भयत्वं च, अस्तम्भमचापल्यं च = गर्वराहित्यं स्थिरस्वभावं च (परीक्षेत), प्रत्यक्षतः = राजा स्वयमेव स्वस्यानुभवात्, संप्रियत्वम् = मधुरभाषित्वम्, अवैरित्वम् = द्वेषराहित्यं च परीक्षेत।

विशेष—१. आचार्य कौटिल्य ने मन्त्री के पच्चीस गुणों की परीक्षा करने के लिए अलग-अलग तरीके बताये हैं। आप्त पुरुषों, सहपाठियों और पड़ोसियों के द्वारा तथा कार्य-व्यापार से इन गुणों का परीक्षण हो जाता है। कुछ गुण प्रत्यक्ष आचरण से भी प्रकट हो जाते हैं।

२. वस्तुतः योग्यता की पहचान या परीक्षण प्रत्यक्ष, परोक्ष एवं अनुमेय इन तीनों प्रकार से हो सकता है। परन्तु राजा को प्रत्यक्ष व्यवहार पर विशेष ध्यान रखना चाहिए।

इसके लिए कर्मानुष्ठान, संव्यवहार और स्वयं अनुभव करने से जो परीक्षण किया जाता है वह श्रेष्ठ रहता है। इसी से प्रतिभा, शक्ति, शील आदि का भी परीक्षण हो जाता है।

प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया हि राजवृत्तिः। स्वयंदृष्टं प्रत्यक्षं, परोपदिष्टं परोक्षं, कर्मसु कृतेनाकृतावेक्षणमनुमेयम्। यौगपद्यात्तु कर्मणामनेकत्वादनेकस्थत्वाच्च देशकालात्ययो मा भूदिति परोक्षममात्यः कारयेदित्यमात्कर्म॥ ३॥

अनुवाद—राज-व्यवहार प्रत्यक्ष, परोक्ष और अनुमेय (तीनों प्रकार का) होता है। स्वयं देखा हुआ प्रत्यक्ष, दूसरों के द्वारा बतलाया गया परोक्ष और सम्पादित कार्यों से न किये गये एवं किये जा रहे कार्यांश का ज्ञान करना अनुमान कहलाता है। कार्यों का एक साथ होने के कारण, विविध होने के कारण तथा अनेक स्थानों पर होने के कारण देश और काल का उल्लंघन न हो, इसलिए (राजा) अमात्यों के द्वारा परोक्ष रूप में उन कार्यों को करवाये। इसी कारण अमात्यों की नियुक्ति एवं परीक्षा का ऐसा कर्म-विधान किया गया है।

संस्कृत-व्याख्या—हि = यतः, राजवृत्तिः = दण्डनीतिप्रतिपाद्यो राजव्यहारः, प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया = प्रत्यक्षं परोक्षमाप्तवाक्यमनुमानमिति प्रमाणत्रयं स्वीकर्त्तकम्। तत्र स्वयंदृष्टम् = स्वयमेव विलोकितं व्यवहारादिकम्, प्रत्यक्षं भवति, परोपदिष्टम् = आप्तजनवचनावगतम्, परोक्षं भवति, कर्मसु = कार्यजातेषु, कृतेन = अनुष्ठितेन कर्मांशेन, अकृतावेक्षणम् = करिष्यमाणांशपरिणामोत्प्रेक्षणम्, अनुमेयम् = अनुमानायत्तं भवति। तु = किन्तु कर्मणां यौगपद्यात् = कार्याणां समकालसमरूपत्वात्, अनेकत्वात् = विविधत्वात्, अनेकस्थत्वात् = विविधस्थानत्वात् च, देशकालात्ययः = देशस्य कालस्य चातिक्रमः, मा भूत् = न स्यात्, इति कारणात् राजा, अमात्यैः = कर्मसचिवैः, परोक्षं कारयेत् = कार्यसम्पादनार्थं नियोजयेत्, इति अमात्यकर्म = एष मन्त्रिनियुक्तिप्रकारो भवति।

अत्र यौगपद्यादिति कथनस्यायं भावः—राजकीयानि कर्माणि बहूनि बहुप्रकाराणि बहुप्रदेशस्थानि सद्यः करणीयानि च भवन्ति। तानि सर्वाणि साक्षादेव राजा स्वयमनुष्ठातुं न शक्नोति, इत्यस्मात्कारणात् यथादेशकालं तेषामनुष्ठानसिद्ध्यर्थममात्या एव तत्र राज्ञा नियोक्तव्याः। एवं परोक्षरूपेण तेषां कर्मानुष्ठानसम्पादनस्य परीक्षणं गुणपरीक्षणं वा सम्यक्तया कर्तुं शक्यते।

विशेष—प्रत्यक्ष, परोक्ष और अनुमेय, राजा के व्यवहार की ये तीन विधियाँ हैं। स्वयं देखा हुआ प्रत्यक्ष, दूसरों के माध्यम से जाना हुआ परोक्ष और सम्पादित कार्यों से किये जाने वाले कार्यों का अनुमान करना ही अनुमेय कहलाता है। कार्यों की विधियाँ और उनके विधान एक जैसे नहीं हैं। राजा उन कार्यों को अकेला नहीं कर सकता है। जिससे कार्यों के सम्पादन में देश-काल का अतिक्रमण न हो, एतदर्थ अमात्यों के द्वारा परोक्षरूप से राजा उन कार्यों को कराये। इसी हेतु अमात्यों की नियुक्ति और परीक्षा के लिए ऊपर वैसा विधान किया गया है।

पुरोहितमुदितोदितकुलशीलं षडङ्गे वेदे दैवे निमित्ते दण्डनीत्यां चाभिविनीतमापदां दैवमानुषीणाम् अथर्वभिरुपायैश्च प्रतिकर्तारं कुर्वीत। तमाचार्यं शिष्य:, पितरं पुत्रो, भृत्य: स्वामिनमिव चानुवर्तेत॥ ४॥

अनुवाद—उच्चकुलोत्पन्न, शीलगुणसम्पन्न, षड्-अंगों के सहित वेदों का ज्ञाता, ज्योतिषशास्त्र, शकुनशास्त्र और दण्डनीति में निपुण, दैवी तथा मानुषी विपत्तियों का अथर्ववेद में निर्दिष्ट उपायों से प्रतीकार करने में समर्थ ऐसी योग्यता वाले पुरोहित को नियुक्त करना चाहिए। आचार्य का जैसे शिष्य, पिता का जैसे पुत्र, स्वामी का जैसे भृत्य अनुसरण करता है, वैसे ही राजा उस (पुरोहित) का अनुगमन करे।

संस्कृत-व्याख्या—उदितोदितकुलशीलम् = उदितै: शास्त्रोक्तैर्विद्याभिजनादिभि: उदिता: समृद्धा: उदितोदिता:, तेषां कुलं शीलं वृत्तं च यस्य तं तथाभूतम्, षडङ्गे = शिक्षाकल्पादिषडङ्गसहिते वेदज्ञाने, दैवे = ज्योतिषशाक्त्रे पूर्वकर्मपरिपाकलक्षणदैवप्रतिपादके, निमित्ते = शकुनशास्त्रे, दण्डनीत्यां च = अर्थशास्त्रे च, अभिविनीतम् = सुशिक्षितम्, दैवमानुषीणाम् = देवकृतानां मानुषकृतानां च, आपदाम् = विपदाम्, अथर्वभि: = अथर्वमन्त्रप्रयोगै:, उपायै: = सामदानादिभिश्च, प्रतिकर्तारम् = परिहर्तारम्, पुरोहितं कुर्वीत = कुर्यात्। तम् = पुरोहितम्, शिष्य: = अन्तेवासी, आचार्यमिव = गुरुं यथा, पुत्र: = सुत:, पितरम् = जनकं यथा, भृत्य: = सेवक:, स्वामिनमिव = भर्तारमिव च, अनुवर्तेत = अनुसरेत् तदधीनो भवेदित्यर्थ:।

विशेष—आचार्य कौटिल्य के अनुसार ऐसे व्यक्ति को पुरोहित पद पर नियुक्त करना चाहिए, जिसमें ये गुण हों—

(१) विद्या आदि से सम्पन्न उच्च कुल में उत्पन्न हो।

(२) अतिशय सदाचारी एवं सुशील हो।

(३) शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दोविचिति एवं ज्योतिष-इन छ: अंगों सहित वेद में निपुण हो।

(४) पूर्वकर्मफल बतलाने वाले ज्योतिषशास्त्र में दक्ष हो।

(५) शकुनशास्त्र में भी पारंगत हो।

(६) दण्डनीति विद्या के प्रयोग में कुशल हो।

(७) अथर्ववेद में बताये गये उपायों या प्रयोगों के द्वारा दैवी एवं मानुषी आपत्तियों का प्रतीकार करने में समर्थ हो।

राजा को चाहिए कि वह उस पुरोहित का उसी प्रकार अनुसरण करे, जिस प्रकार शिष्य आचार्य का, पुत्र पिता का और भृत्य स्वामी का करता है। अर्थात् वह पूर्णतया पुरोहित का अनुगामी बना रहे। पुरोहित का सर्वगुण सम्पन्न होना आवश्यक है।

ब्राह्मणेनैधितं क्षत्रं मन्त्रिमन्त्राभिमन्त्रितम्।
जयत्यजितमत्यन्तं शास्त्रानुगतशस्त्रितम्॥ ५॥

अनुवाद—इस प्रकार ब्राह्मण (पुरोहित) के द्वारा वृद्धि को प्राप्त, मन्त्रियों की मन्त्रणा से अभिरक्षित और शास्त्रोक्त अनुष्ठानों के आचरण से सम्पृक्त क्षत्रिय (राजकुल) अजेय को भी जीत लेता है (अलभ्य को भी स्वायत्त कर लेता है)।

संस्कृत-व्याख्या—ब्राह्मणेन = यथोक्तगुणेन पुरोहितेन, एधितम् = संवर्धितम्, मन्त्रिमन्त्राभिमन्त्रितम् = मन्त्रिणो मन्त्रेण अर्थनिश्चयेन अभिमन्त्रितं संस्कृतम् अभिरक्षितं वा, शास्त्रानुगतशस्त्रितम् = शास्त्रानुगमात्मकशस्त्रयुक्तम्, क्षत्रम् = राजकुलम्, अत्यन्तम् = एकान्ततः, अजितं जयति = अजेयं जयति अलब्धं च लभते।

विशेष—आचार्य कौटिल्य का स्पष्ट कथन है कि यदि राजा पूर्वोक्त गुणों से सम्पन्न पुरोहित एवं मन्त्री को नियुक्त करता है तथा उनके निर्देश-सहयोग से राज्यकार्य का संचालन करता है तो वह शक्तिशाली बन जाता है। उससे वह अजेय शत्रु को जीत लेता है तथा अलब्ध-लाभ कर लेता है।

॥ इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरेण मन्त्रिपुरोहितोत्पत्तिः नवमोऽध्यायः ॥

❑❑❑

दशमोऽध्यायः

षष्ठं प्रकरणम्—उपधाभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानाम्

मन्त्रिपुरोहितसखः सामान्येष्वधिकरणेषु स्थापयित्वाऽमात्यानुपधाभिः शोधयेत्॥ १॥

अनुवाद—सामान्य अधिकार के पदों पर अमात्यों की नियुक्ति करके मन्त्री और पुरोहित के सहयोग से राजा गुप्त उपायों से उनके आचरणों की परीक्षा करे।

संस्कृत-व्याख्या—अमात्यान् सामान्येषु = साधारणेषु, अधिकरणेषु = अधिकारपदेषु, मन्त्रिपुरोहितसखः = मन्त्रिपुरोहितसमुपेतः, राजा, उपधाभिः = चतुर्धाभिः वक्ष्माणैरुपायैः, शोधयेत् = शौचयेत्।

विशेष—अमात्यों के आचरण का परीक्षण करने के लिए चार उपायों की विवेचना आगे की जा रही है। वे चार उपधा या उपाय हैं-धर्मोपधा, अर्थोपधा, कामोपधा और भयोपधा। राजा प्रधानमन्त्री तथा पुरोहित के सहयोग से अमात्यों के आचरण की पवित्रता पर ध्यान दे।

पुरोहितमयाज्ययाजनाध्यापने नियुक्तममृष्यमाणं राजावक्षिपेत्। स सत्रिभिः शपथपूर्वमेकैकममात्यमुपजापयेत्—अधार्मिकोऽयं राजा, साधु धार्मिकमन्यमस्य तत्कुलीनमवरुद्धं कुल्यमेकप्रग्रहं सामन्तमाटविकमौपपादिकं वा प्रतिपादयामः। सर्वेषामेतद्रोचते, कथं वा तवेति ? प्रत्याख्याने शुचिरिति धर्मोपधा॥ २॥

अनुवाद—राजा पुरोहित को किसी नीच जाति के यहाँ यज्ञ कराने के लिए एवं पढ़ाने के लिए नियुक्त करे, (पुरोहित द्वारा इस काम के लिए) मना करने पर उसे पद से च्युत कर दे। वह (पदच्युत पुरोहित) गुप्तचर स्त्री-पुरुषों के माध्यम से शपथपूर्वक प्रत्येक अमात्य को राजा से अलग करा दे। (वह कहे कि) 'यह राजा अधार्मिक है। इसलिए इसके स्थान पर उसके ही वंशज किसी श्रेष्ठ पुरुष को, किसी धार्मिक व्यक्ति को, समीपवर्ती किसी सामन्त को, किसी आटविक (जंगल के स्वामी) को अथवा एकमत से निश्चित कर किसी को भी नियुक्त करें। सभी को यह प्रस्ताव अच्छा लग रहा है। बताओ, तुम्हारी क्या सम्मति है ?' (पुरोहित की इस बात का) प्रतिषेध करने वाला अमात्य पवित्र हृदय वाला है-ऐसा उपाय 'धर्मोपधा' कहलाता है। गुप्त धार्मिक उपाय होने से इसे 'धर्मोपधा' कहा गया है।

संस्कृत-व्याख्या—राजा अयाज्ययाजनाध्ययने = याजयितुमनर्हस्य वृषलीपत्यादेर्याजनेऽध्यापने च, नियुक्तम् = आदिष्टम्, अमृष्यमाणम् = अधर्मनियोजनेन

कुप्यन्तम्, पुरोहितम् अवक्षिपेत् = अमन्येत स्वपदादवरोपयेद् वा। सः = अवक्षिप्तः पुरोहितः, सत्रिभिः = गूढस्त्रीपुरुषैः, एकैकम् = प्रत्येकम्, अमात्यं शपथपूर्वकम् = शपथप्रदानेन, उपजापयेत् = भेदयेत्, अयं राजा = नृपः, अधार्मिकः = अधर्मप्रवृत्तः। तत्कुलीनम् = प्रकृतराजवंशभवम्, साधु धार्मिकम् = श्रेष्ठं धर्मप्रवृत्तम्, अन्यम् = अपरम्, अवरुद्धम् = अवरुध्य रक्ष्यमाणं तत्पुत्रादिकम्, कुल्यम् = राजभावार्हकुलोत्पन्नम्, एकप्रग्रहम् = सर्वपूजितम् (एकः तुल्यः सर्वैः क्रियमाणः प्रग्रहः पूजा यस्य तम्), सामन्तम् = विषयान्तरं राजानम्, आटविकम् = अटवीपतिम्, औपपादिकम् = अस्माभिः सम्भूय सम्प्रधारणीयं वा, प्रतिपादयामः = वयमस्य स्थाने नियोजयामः। एतत् = उपन्यस्तं मतम्, सर्वेषां रोचते = सर्वैः स्वीक्रियते, कथं वा तव = मतं किमिति ? प्रत्याख्याते = नाहमीदृशं कुर्याम्' इति निषेधे कृते, सः शुचिः = पवित्रहृदयोऽमात्यः, इति धर्मोपधा = धर्मस्थापनवाचोयुक्त्या छलनं शोधनप्रकारः।

विशेष—१. गुप्त धार्मिक उपायों के द्वारा अमात्यों की पवित्रता की परीक्षा करना धर्मोपधा है। इसके लिए राजा सर्वप्रथम पुरोहित से गुप्त मन्त्रणा करके उसे नीच जाति के यहाँ यज्ञ करने तथा पढ़ाने के लिए नियुक्त करे। जब पुरोहित इस कार्य का क्रोधपूर्वक निषेध करे, तब राजा उसे उसके पद से च्युत कर दे। वह पदच्युत पुरोहित गुप्तचर स्त्री-पुरुषों के माध्यम से शपथपूर्वक अन्य अमात्यों को भड़कावे और कहे कि यह राजा अधार्मिक है। हमें इसके स्थान पर इसके ही वंशज किसी श्रेष्ठ धार्मिक व्यक्ति को, किसी समीप के सामन्त अथवा आटविक को स्थापित करना चाहिए, अथवा हम सब मिलकर एकमत से जिसका निर्णय कर लें, उसे नियुक्त करें। पुरोहित की इस बात को सुनकर जो इस प्रस्ताव को अस्वीकार करे, उसे पवित्र हृदय वाला समझना चाहिए।

२. यदि जो अमात्य पुरोहित के इस छद्म-प्रस्ताव का समर्थन करे, तो पुरोहित उसका रहस्य राजा को बता दे। तब राजा उस अमात्य को अविश्वस्त एवं कर्त्तव्यनिष्ठादि से रहित मानकर पदच्युत कर दे। इस तरह गुप्त धार्मिक पद्धति से अमात्यों के आचरण की परीक्षा करनी चाहिए। यह शौचाशौचज्ञान का प्रथम उपाय है।

सेनापतिरसत्प्रतिग्रहणावक्षिप्तः सत्रिभिरेकैकममात्यमुपजापयेल्लोभनीयेनार्थेन राजविनाशाय—सर्वेषामेतद्रोचते, कथं वा तवेति ? प्रत्याख्याने शुचिरित्यर्थोपधा॥ ३॥

अनुवाद—राजा द्वारा किसी अपूज्य या निन्दनीय व्यक्ति का सत्कार करने का आदेश देने से रुष्ट हुआ सेनापति गुप्तचर स्त्री-पुरुषों के माध्यम से एक-एक अमात्य को धन का प्रलोभन देकर राजा के विनाश के लिए उन्हें उकसावे। वह कहे कि 'मेरी यह युक्ति सभी को अच्छी लगती है। बताओ, तुम्हारी क्या सम्मति है ?' (तब उस अमात्य द्वारा) प्रतिषेध करने पर उसे पवित्र हृदय वाला समझना चाहिए, इसे 'अर्थोपधा' कहते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—असत्प्रतिग्रहणावक्षिप्त: = असद्ग्रहणेन अपूज्यपूजनेन निमित्तेन अवक्षिप्त: परिभूतो रुष्टो वा, सेनापति: = सेनाध्यक्ष:, सत्रिभि: = गुप्तचरै: स्त्री-पुरुषै:, एकैकम् = प्रत्येकम्, अमात्यं लोभनीयेनार्थेन = प्रलोभनरूपेण धनेन, राजविनाशाय = नृपानर्थाय, उपजापयेत् = शपथपूर्वकं भेदयेत्। स कथयेत्—एतत् = ममोपन्यस्तं कार्यम्, सर्वेषां रोचते = सर्वसम्मतं वर्तते, कथं वा तव = तव मतं किमिति ? प्रत्याख्याने = उपजापितोऽमात्यो 'नाहमीदृशं कुर्यामिति यदि निरस्येत् = तर्हि प्रतिषेधे सति स: शुचि: = पवित्रहृदय:, इति = एवंप्रकरेण परीक्षणम्, अर्थोपधा कथ्यते।

विशेष—अर्थोपधा का आशय गुप्त रूप से धन का प्रलोभन देकर अमात्यों की पवित्रता का पता लगाना है। राजा सेनापति के साथ गुप्त मन्त्रणा करके उसे किसी अपवित्र या अपूज्य व्यक्ति का सत्कार करने का आदेश दे। वह सेनापति इस बात पर सब अमात्यों के सामने दोष प्रकट करने का दिखावा करे और उन्हें धन का प्रलोभन देकर राजा के विनाश के लिए उकसावे। यदि सेनापति की ऐसी फूट डालने वाली युक्ति का कोई समर्थन नहीं करे, तो उस अमात्य को पवित्र हृदय वाला समझना चाहिए। इस तरह सेनापति के सहयोग से राजा द्वारा धन का प्रलोभन देकर परीक्षण करने से इसे अर्थोपधा कहा गया है।

परिव्राजिका लब्धविश्वासान्तःपुरे कृतसत्कारा महामात्रमेकैकमुपजपेत्-राजमहिषी त्वां कामयते। कृतसमागमोपाया महानर्थश्च ते भविष्यतीति। प्रत्याख्याने शुचिरिति कामोपधा॥ ४॥

अनुवाद—कोई संन्यासिनी का वेष धारण करने वाली विशेष गुप्तचर स्त्री को अन्त:पुर में ले जाकर राजा उसका स्वागत सत्कार करावे और फिर वह संन्यासिनी प्रत्येक अमात्य के पास जाकर भेदनीति अपनावे तथा कहे कि 'महामात्य, महारानी आप पर आसक्त हैं। तुम्हारे समागम का उपाय कर लिया गया है, इससे तुम्हें महान् अर्थलाभ होगा।' अमात्य के द्वारा प्रतिषेध करने पर उसे पवित्र हृदय वाला समझना चाहिए, इसे 'कामोपधा' कहते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—परिव्राजिका = भिक्षुकी, अन्त:पुरे = अवरोधे, लब्धविश्वासा कृत्सत्कारा = राजमहिषीभि: सम्पूजिता, एकैकम् = प्रत्येकम्, महामात्रम् = अमात्यम्, उपजपेत् = भेदयेत्, सा कथयेत्—राजमहिषी = साम्राज्ञी पट्टमहिषी वा, त्वां कामयते = अभिलषति, कृतसमागमोपाया = तव समागमोपायस्तया विहित:। अनेन च महानर्थ: = अत्यधिकं धनादिकं च, भविष्यति = लप्स्यते, इति कथिते सति प्रत्याख्याने = प्रतिषेधे, शुचि: = स अमात्य: पवित्रान्त:करण:, इति कामोपधा कथ्यते।

विशेष—कामोपधा का आशय है—गुप्त कामासक्ति के उपायों से राजा के द्वारा अमात्यों के हृदय एवं आचरण की पवित्रता की परीक्षा करना। इसके लिए राजा किसी

चतुर गुप्तचर स्त्री को संन्यासिनी का वेष धारण करवा कर और अन्तःपुर में बुलाकर सम्मानित करे। बाद में वह संन्यासिनी अमात्यों के पास जाकर कहे कि महारानी तुम पर आसक्त है। तुम्हारा महारानी से मिलने का प्रबन्ध कर दिया गया है। इससे तुम्हें काम की पूर्ति के साथ ही धन की प्राप्ति भी होगी। उस संन्यासिनी के इस प्रस्ताव का विरोध या निषेध करने वाला अमात्य पवित्र अन्तःकरण वाला सदाचारी माना जायेगा, परन्तु संन्यासिनी के कथन का समर्थन करने वाला पापाचारी सिद्ध हो जायेगा। तब राजा उसे उचित दण्ड दे सकेगा। इस उपाय में राजा गुप्तचर स्त्री का सहयोग लेकर परीक्षण करे, ऐसा आचार्य कौटिल्य का अभिमत है।

प्रवहणनिमित्तमेकोऽमात्यः सर्वानमात्यानावाहयेत्। तेनोद्वेगेन राजा तानवरुन्ध्यात्। कापटिकच्छात्रः पूर्वावरुद्धस्तेषामर्थमानावक्षिप्तमेकैकममात्यमुपजपेत्—असत्प्रवृत्तोऽयं राजा, सहसैनं हत्वाऽन्यं प्रतिपादयामः। सर्वेषामेतद्रोचते, कथं वा तवेति ? प्रत्याख्याने शुचिरिति भयोपधा॥ ५॥

अनुवाद—नौका-विहार के लिए एक अमात्य सभी अमात्यों को बुलावे; इस बात पर उत्तेजित होकर राजा उन सभी को दण्डित कर दे। कपट-वेषधारी छात्र (छात्र की वेशभूषा को धारण करने वाला गुप्तचर) तिरस्कृत एवं दण्डित उस अमात्य के पास जाकर कहे कि 'यह राजा कुमार्ग में प्रवृत्त है, सहसा इसे मारकर किसी दूसरे को राजा बनावें। सभी अमात्यों को यह प्रस्ताव मान्य है, तुम्हारी क्या सम्मति है ?' (उस अमात्य के द्वारा) निषेध या विरोध करने पर वह पवित्राचरण वाला समझना चाहिए, इस परीक्षणोपाय को 'भयोपधा' कहते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—प्रवहणनिमित्तम् = जलस्थलक्रीडानिमित्तं नौविहारार्थम्, एकोऽमात्यः = कर्मसचिवः, सर्वान् अमात्यान् = सचिवान्, आवाहयेत् = आनीय मेलयेत्। तेनोद्वेगेन = तन्निमित्तेन उद्वेगेन उत्तेजनया, राजा तान् = अमात्यान्, अवरुन्ध्यात् = अर्थमानापहारादिनापकुर्यात्। पूर्वावरुद्धः = राज्ञा पूर्वमपकृतः, कापटिकच्छात्रः = गूढपुरुषविशेषः छात्रः, तेषाम् = अमात्यानां मध्ये, अर्थमानावक्षिप्तम् = अर्थमानाभ्यां हापितम्, एकैकममात्यम्, उपजयेत् = राजसकाशाद् भेदयेत्। स कथयेत् = अयं राजा असत्प्रवृत्तः = अशोभनकर्मप्रवृत्तः, एनं राजानं सहसा हत्वा = मारयित्वा, अन्यम् = कमपि राजानमन्यम्, प्रतिपादयामः = तत्स्थाने नियोजयामः। सर्वेषामेतत् = ममैतत्कथनं सर्वेभ्यः रोचते = रुचिकरं प्रतीयते। कथं वा तव = तव मतं किमिति ? प्रत्याख्याने = प्रतिषेधे कृते, शुचिः = पवित्रान्तःकरणोऽयमिति भयोपधा = भीरुविषया उपधा।

विशेष—१. भयोपधा में राजा सर्वप्रथम एक गुप्तचर को छात्र वेष में तैयार करे और उसका पहले कृत्रिम अपमान कर दे। नौका-विहार आदि में प्रवृत्त अमात्यों को राजा दण्डित या अपमानित करे। तब वह कपटी छात्र उन अमात्यों से कहे कि यह राजा कुमार्ग

गामी है। इसका वध करके किसी दूसरे राजा को इसके स्थान पर स्थापित कर दें। यदि इस कपट बेषधारी छात्र की बात अमात्य मान ले, तो राजा उसे दण्डित कर दे, परन्तु उसके द्वारा निषेध करने पर उसे पवित्र हृदय वाला समझ ले। परीक्षण की इस विधि को 'भयोपधा' कहते हैं।

२. 'प्रवहण' का आशय ऐसा यान विशेष है, जिसे वाहकजन कन्धों पर उठाकर ले जाते हैं। अमरकोश के अनुसार 'कर्णीरथ: प्रवहणं डयनं च समं त्रयम्', अर्थात् 'पुरुषस्कन्धबाह्यं यानविशेषम्' अर्थ होता है। अत: 'प्रवहणनिमित्तम्' का अर्थ जल-स्थलयात्रा के लिए प्रयुक्त पालकी, डोली, वाहन या जलयान हो सकता है। आचार्य कौटिल्य का अभिमत भी इसी तरह का है। जलक्रीडा आदि कौतुक के निमित्त अथवा स्थल यात्रा से उद्यान-गोष्ठी आदि कौतुक के निमित्त प्रवृत्त होना इसका आशय है।

तत्र धर्मोपधाशुद्धान् धर्मस्थीयकण्टकशोधनेषु स्थापयेत्, अर्थोपधाशुद्धान् समाहर्तृसन्निधातृनिचयकर्मसु, कामोपधाशुद्धान् बाह्याभ्यन्तरविहाररक्षासु, भयोपधाशुद्धानासन्नकार्येषु राज्ञः। सर्वोपधाशुद्धान् मन्त्रिणः कुर्यात्। सर्वत्राशुचीन् खनिद्रव्यहस्तिवनकर्मान्तेषूपयोजयेत्॥ ६॥

अनुवाद—धर्मोपधा से शुद्ध अमात्यों को धर्मस्थानीय तथा कण्टकशोधन में नियुक्त करना चाहिए। अर्थोपधा से शुद्ध अमात्यों को समाहर्ता एवं सन्निधाता के कार्यों में, कामोपधा से शुद्ध अमात्यों को बाह्य विहार एवं अन्त:पुर आदि की रक्षा में तथा भयोपधा से शुद्ध अमात्यों को आसन्न कार्यों अर्थात् अंगरक्षक रूप में नियुक्त करना चाहिए। सभी उपधाओं में शुद्ध परीक्षित अमात्यों को मन्त्रिपद पर नियुक्त करना चाहिए। सभी परीक्षाओं असफल अमात्यों को खदानों, हाथियों और जंगलों आदि के कष्टसाध्य कार्यों में लगाना चाहिए।

संस्कृत-व्याख्या—तत्र = उपधाचतुष्टयशोधितेषु मध्ये, धर्मोपधाशुद्धान् अमात्यान्, धर्मस्थीयकण्टकशोधनेषु = धर्मस्थानुबन्धिषु कर्मसु कण्टकशोधनेषु च, स्थापयेत् = नियुञ्जीत, अर्थोपधाशुद्धान् अमात्यान्, समाहर्तृसन्निधातृनिचयकर्मसु = धनोत्थापनादि-लक्षणेषु समाहर्तृकर्मसु धनरक्षणलक्षणेषु कोषागारेषु नियुञ्जीत, कामोपधाशुद्धान्, बाह्याभ्यन्तरविहाररक्षासु = बाह्यविहारेषु बाह्यस्थितविलासस्थानेषु अन्त:पुररक्षाकर्मसु नियुञ्जीत, भयोपधाशुद्धान् अमात्यान्, राज्ञ: = नृपस्य, आसन्नकार्येषु = शरीररक्षणादिकर्मसु स्थापयेत्। सर्वोपधाशुद्धान् = चतसृष्वप्युपधासु दृष्टशौचान्, मन्त्रिण: कुर्यात् = मन्त्रिपदेषु नियुञ्जीत। सर्वत्राशुचीन् = सर्वासु उपधासु अशौचान्, खनिद्रव्यहस्तिवनकर्मान्तेषु = खनि: सुवर्णरजताद्युत्पत्तिस्थानं द्रव्यवनं दारुयोग्यवृक्षवनं हस्तिवनं गजोत्पत्तिवनम्, एतत्सम्बन्धिषु कर्मान्तेषु व्यापारस्थानेषु, उपयोजयेत् = श्रमसाध्यकर्मणि स्थापयेत्।

विशेष—१. धर्मोपधा में सफल रहने वाले अमात्यों को धमस्थानीय अर्थात् दीवानी न्यायालय एवं कण्टकशोधन अर्थात् फौजदारी न्यायालय में नियुक्त करना चाहिए। अर्थोपधा में सफल अमात्यों को समाहर्ता, कर वसूल करने वाला अधिकारी तथा सन्निधाता अर्थात् कोषाध्यक्ष के पदों पर रखना चाहिए। कामोपधा से शुद्ध अमात्यों को उपवन आदि बाहरी विलास-स्थानों तथा अन्तःपुर सम्बन्धी रक्षा के कार्य में नियुक्त करना चाहिए। भयोपधा से शुद्ध अमात्यों को राजा अपने समीपवर्ती, अर्थात् अंगरक्षा आदि कार्यों में नियुक्त करना चाहिए। चारों ही उपधाओं में पूर्णतया शुद्ध अमात्यों को मन्त्री बनाना चाहिए।

२. उक्त सभी उपधाओं में खरे न उतरने वाले अमात्यों को खदानों, जंगलों, हाथियों आदि के कष्टसाध्य कार्यों में नियुक्त करना चाहिए। उक्त सभी उपधाओं से शुचि अमात्यों के कार्यों का विवरण आगे के अधिकरणों में दिया गया है। इस तरह परीक्षित अमात्यों की नियुक्ति के सम्बन्ध में आचार्य कौटिल्य ने सर्वमान्य मत व्यक्त किया है।

त्रिवर्गभयसंशुद्धानमात्यान् स्वेषु कर्मसु।
अधिकुर्याद् यथाशौचमित्याचार्या व्यवस्थिताः॥ ७॥

अनुवाद—अर्थशास्त्रज्ञ सभी पुरातन आचार्यों का मत है कि धर्म, अर्थ, काम और भय द्वारा परीक्षित पवित्र अमात्यों को उनकी पवित्रता के अनुसार अपने-अपने कार्यों में नियुक्त किया जावे।

संस्कृत-व्याख्या—आचार्याः = अर्थशास्त्रज्ञाः पुरातनाचार्याः, त्रिवर्गभयसंशुद्धान् = त्रिवर्गैः धर्मार्थकामोपधाभिः, भयेन भयोपधया च संशुद्धान् दृष्टशौचान्, अमात्यान् यथाशौचम् = तत्तच्छुद्ध्यानुगुण्येन, स्वेषु कर्मसु = धर्मस्थानीयादिषु कार्येषु, अधिकुर्यात् = नियोजयेत्, इति = एवम्, व्यवस्थिताः = सन्निर्दिष्टाः, स्वमतं संस्थापिवन्तः।

न त्वेव कुर्यादात्मानं देवीं वा लक्ष्मीश्वरः।
शौचहेतोरमात्यानामेतत् कौटिल्यदर्शनम् ॥ ८॥

अनुवाद—किन्तु अमात्यों की पवित्रता की परीक्षा हेतु राजा स्वयं को अथवा रानी को माध्यम न बनावे—ऐसा आचार्य कौटिल्य का अभिमत है।

संस्कृतव्याख्या—तु = किन्तु, अमात्यानां शौचहेतोः = अमात्यशुद्धिपरीक्षार्थे, लक्ष्मीश्वरः = नृपः, आत्मानम् = स्वम्, देवीम् = महिषीम्, वा, नैव कुर्यात् = नहि कदापि स्थापयेत्, एतत् = एवं रूपम्, कौटिल्यदर्शनम् = कौटिल्यस्य स्वकीयं मतमस्ति।

न दूषणमदुष्टस्य विषेणेवाम्भसश्चरेत्।
कदाचिद्धि प्रदुष्टस्य नाधिगम्येत भेषजम्॥ ९॥

अनुवाद—निर्दोष अमात्य पर (छलपूर्ण गुप्तरीति से) दोषारोपण विष से युक्त जल की तरह हो जाता है। अतः दोषारोपण न करे। सम्भव है कि दोषारोपित उस अमात्य का फिर कभी सुधार न हो सके।

संस्कृत-व्याख्या—अदुष्टस्य = स्वभावाद् दोषशून्यस्य अमात्यस्य, दूषणम् = उपधया वञ्चनम्, अम्भस: = जलस्य, विषेण = गरलमिश्रेण दूषणमिव राजा न चरेत् = कुर्यात्। हि = यत:, कदाचित् प्रदुष्टस्य = प्रकर्षेण दोषयुक्तस्य, तस्य अशक्यप्रतीकारात्, भेषजम् = औषधम्, न अभिगम्येत = न प्राप्नुयात्। अर्थात् उपधावशाद् अदुष्टस्यापि अमात्यस्य नानर्थमापतेदिति विचारणीयम्।

विशेष—जल को जीवन कहा जाता है, परन्तु विषमय होने से वह अन्तत: मरण हेतु बन जाता है। इसी प्रकार अमात्य की पवित्रता हेतु उपधा द्वारा गुप्तरीति से परीक्षा की जाती है, परन्तु निर्दोष अमात्य के लिए कभी-कभी ऐसा प्रयोग हानिकारी रहता है और वह प्रतीकार करने में असमर्थ बन जाता है। इससे उस अमात्य और राजा दोनों का अनर्थ होता है। अत: राजा स्वयं को अथवा महारानी को परीक्षा का माध्यम नहीं बनावे।

कृता च कलुषा बुद्धिरुपधामिश्चतुर्विधा।
नागत्वाऽन्तर्निवर्तेत स्थिता सत्त्ववतां धृतौ॥ १०॥

अनुवाद—चार प्रकार की उपधाओं द्वारा कलुषित की गई चरित्रवान् लोगों की बुद्धि तब तक धैर्य नहीं प्राप्त करती है, जब तक वे अभीष्ट प्राप्त न कर लें, अर्थात् बदला न ले लें।

संस्कृत-व्याख्या—चतुर्विधा = पूर्वोक्ता, उपधाभि: कलुषा = दूषिता, कृता = विहिता, सत्त्ववतां बुद्धि: = चारित्र्यवतां धीराणां बुद्धि:, धृतौ स्थिता अन्त: न निवर्तेत = निरन्तरं यतमाना स्वाध्यवासितार्थसिद्धिमप्राप्य नैव विरमिता भवेत्।

तस्माद् बाह्यमधिष्ठानं कृत्वा चार्येचतुर्विधे।
शौचाशौचममात्यानां राजा मार्गेत सत्त्रिभि:॥ ११॥

अनुवाद—इसलिए उक्त चारों उपायों से परीक्षण के लिए राजा किसी बाह्य वस्तु को माध्यम बनावे और गुप्तचरों द्वारा अमात्यों की पवित्रता-अपवित्रता का पता लगावे।

संस्कृत-व्याख्या—तस्मात् = पूर्वोक्तकारणात्, राजा, चतुर्विधे चार्ये = उपधाप्रयोगे, बाह्यम् = बहिरङ्गं दूष्यम्, अधिष्ठानम् = लक्षम्, कृत्वा = विधाय, सत्त्रिभि: = गुप्तचरै:, अमात्यानां शौचाशौचम् = शुद्धिमशुद्धिं च, मार्गेत = परीक्षेत।

॥ इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे उपधाभि: शौचाशौचज्ञानममात्यानां दशमोऽध्याय:॥

❑❑❑

एकादशोऽध्यायः

सप्तमं प्रकरणम्—गूढपुरुषोत्पत्तिः

उपधाभिः शुद्धामात्यवर्गो गूढपुरुषानुत्पादयेत्। कापटिकोदास्थित-गृहपतिवैदेहकतापसव्यञ्जनान् सत्रितीक्ष्णरसदभिक्षुकीश्च॥ १॥

अनुवाद—धर्मोपधा आदि उपायों से अमात्य वर्ग की परीक्षा करने पर राजा गुप्तचरों की नियुक्ति करे। कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहक, तापस, सत्री, तीक्ष्ण, रसद एवं भिक्षुकी आदि अनेक गुप्तचर होते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—उपधाभिः = धर्मोपधादिभिः, शुद्धामात्यवर्गः = शोधितसचिववर्गः, राजा गूढपुरुषान् = गुप्तचरजनान्, उत्पादयेत् = नियोजयेत्। ते गूढपुरुषाः कापटिकः, उदास्थितः, गृहपतिकः, वैदेहकः, तापसः, सत्री, तीक्ष्णः, रसदः, भिक्षुकी इत्यादिव्यञ्जनः स्यात्। च = कुब्जवामनकिरातमूकबधिरजडान्धनटनर्तकगायनवादनवाग्जीवनकुशीलवा अपि गुप्ताचरपदे योज्या भवन्तीति चकारप्रयोगः।

विशेष—पूर्ववर्ती अध्याय में अमात्यों की परीक्षा और नियुक्ति का विवेचन कर उसमें गुप्तचरों नियुक्ति का विवेचन किया गया है। अमात्यवर्ग यदि शासन-संस्था के प्रतीक हैं तो गुप्तचर उसकी सञ्चार व्यवस्था के आधार हैं। सभी गुप्तचरों की विशेषताओं का आगे उल्लेख किया जा रहा है।

परमर्मज्ञः प्रगल्भश्छात्रः कापटिकः। तमर्थमानाभ्यामुत्साह्य मन्त्री ब्रूयात्—राजानं मां च प्रमाणं कृत्वा यस्य यदकुशलं पश्यति तत्तदानीमेव प्रत्यादिशेति॥ २॥

अनुवाद—दूसरों के रहस्यों को जानने वाला, बड़ा प्रगल्भ (दबंग) और विद्यार्थी की वेष-भूषा में रहने वाला गुप्तचर 'कापटिक' कहलाता है। इस गुप्तचर को धन, मान और सत्कार से सन्तुष्ट कर मन्त्री उससे कहे 'जिस-किसी की भी तुम हानि होते देखो, राजा को और मुझे प्रमाण मान कर तत्काल ही तुम सूचित कर दो।'

संस्कृत-व्याख्या—परमर्मज्ञः = परच्छिद्रवेदी, प्रगल्भः = प्रौढः, छात्रः = अध्यापकाध्येतृवृत्तिः निष्परिग्रहत्वाच्छरीरमात्रपरिच्छदो राजकार्यैकपरः, कापटिकः = कपटवृत्तित्वात् तन्नामको गुप्तचरः कथ्यते। तम् = कापटिकम् अर्थमानाभ्याम् = धनबहुमानाभ्याम्, उत्साह्य = संतृप्य, मन्त्री ब्रूयात् = कथयेत्, यस्य यदकुशलं पश्यसि = यस्य अमात्यादेः यदवद्यं चौर्यं परदाराभिमर्शनमित्येवं जानीयाः, तत्तदानीमेव = तत्सर्वं सपद्येव, राजानम् = नृपम्, मां च प्रमाणं कृत्वा = प्रमाणं मत्वा, प्रत्यादिश = विज्ञापय, इति।

प्रव्रज्याप्रत्यवसितः प्रज्ञाशौचयुक्त उदास्थितः। स वार्ताकर्मप्रदिष्टायां भूमौ प्रभूतहिरण्यान्तेवासी कर्म कारयेत्। कर्मफलाच्च सर्वप्रव्रजितानां ग्रासाच्छादनावसथान् प्रतिविदध्यात्। वृत्तिकामांश्चोपजपेत्—एतेनैव वेषेण राजार्थश्चरितव्यो भक्तवेतनकाले चोपस्थातव्यमिति। सर्वप्रव्रजिताश्च स्वं स्वं वर्गमुपजपेयुः॥ ३॥

अनुवाद—बुद्धिमान्, सदाचारी, संन्यासी के वेष में रहने वाले गुप्तचर का नाम 'उदास्थित' है। वह अपने साथ बहुत-से विद्यार्थी और बहुत-सा धन लेकर जहाँ कृषि, पशुपालन एवं व्यापार के लिए भूमि नियत है वहाँ उनसे कार्य करावे। उस कार्य को करने से जो लाभ हो, उससे वह सब संन्यासियों के भोजन, वस्त्र एवं निवास का प्रबन्ध करे। जो भी इस प्रकार की आजीविका की इच्छा करें, उन्हें अपने वश में करके कहे, 'तुम्हें इसी वेष में राजा का कार्य करना है। तुम्हारे वेतन तथा भत्ते का समय आने पर यहाँ उपस्थित हो जाना।' सारे अन्य संन्यासी भी अपने-अपने वर्ग के संन्यासियों को ऐसा भी कहें या समझावें।

संस्कृत-व्याख्या—प्रव्रज्याप्रत्यवसितः = चतुर्थाश्रमात् परिनिवृत्तः, संन्यासं प्राप्य ततश्च्युतो वा, प्रज्ञाशौचयुक्तः = प्रज्ञया मत्या शौचेन सत्त्वेन च युक्तः, उदास्थितः = तदाख्यो गूढपुरुषो भवति। प्रभूतहिरण्यान्तेवासी = प्रभूताः प्रचुराः हिरण्यान्तेवासिनः धनानि शिष्याश्च यस्य सः तथाभूतः, सः = उदास्थितः, वार्ताकर्मप्रदिष्टायाम् = वार्ताकर्मभ्यः कृषिवाणिज्यपशुपाल्यकर्मार्थे प्रदिष्टायाम् उपकल्पितायाम्, भूमौ कर्म = वार्ताकर्म, कारयेत् = सम्पादयेत्। कर्मफलात् च = तत्कर्मलाभाच्च, सर्वप्रव्रजितानाम् = सर्वेषां संन्यासादीनाम्, ग्रासाच्छदनावसथान् = अन्नवस्त्रवासस्थानानि, प्रतिविदध्यात् = संविदधीत। वृत्तिकामान् = अनेन प्रकारेण ये नित्याजीविकां कामयन्ते तान्, उपजपेत् = उपजापेन वशीकुर्यात्। स कथयेत्—एतेनैव वेषेण = अनेन गृहीतनैव बौद्धभिक्षुपाशुपतादिवेषेण, राजार्थः = राजप्रयोजनम्, चरितव्यः = युष्माभिरनुष्ठेयम्, गृहीतपरराष्ट्रवृत्तान्तैश्च भक्तवेतनकाले = धान्यतण्डुलादिभृतिग्रहणकाले, चोपस्थातव्यम् = सन्निधातव्यम् इति। सर्वप्रव्रजिताः = सर्वेऽपि संन्यासिनस्ते च, स्वं स्वं वर्गम् = स्वस्वजातीयम्, उपजपेयुः = उपजप्य स्वसहायान् कुर्युः।

विशेष—उदास्थित गुप्तचर संन्यास को अपनाने के बाद उससे पतित बौद्ध, शैव-व्रतादि से च्युत ऐसा कपटवेषधारी संन्यासी होता है जो गृहस्थों की तरह कृषि, पशुपालन, व्यापार आदि के काम में अपने शिष्यों को लगावे और उससे प्राप्त लाभ से सभी संन्यासियों के भोजन, वस्त्र, आवास आदि की सुव्यवस्था करे। इसी तरह अन्य लोगों को भी आजीविका देकर अपना अनुयायी बनावे। इस तरह वह कपट-संन्यासी के वेष में राजा का हित-सम्पादन करता रहे।

कर्षको वृत्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो गृहपतिकव्यञ्जनः। स कृषिकर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेण॥ ४॥

अनुवाद—बुद्धिमान्, पवित्र हृदय वाला और जिसकी आजीविका नष्ट हो गई हो ऐसे किसान के वेष में रहने वाला गुप्तचर 'गृहपतिक' कहलाता है। वह कृषि-कार्य के लिए नियत भूमि में जाकर उदास्थित के समान ही कार्य करे।

संस्कृत-व्याख्या—वृत्तिक्षीणः = कृषिवृत्त्या क्षयं प्राप्तः, प्रज्ञाशौचयुक्तः = बुद्धिमान् पवित्रान्तःकरणं च, कर्षकः = कृषिशीलः, गृहपतिकव्यञ्जनः = तन्नामा गुप्तचरो भवति। सः, कृषिकर्मप्रदिष्टायाम् = कृषिपाशुपाल्यकर्मार्थे उपकल्पितायां भूमौ, पूर्वेण समानम् = उदास्थितकृत्येन पूर्वोक्तेन तुल्यम्, सर्वमपि कार्यं कारयेद् इति।

विशेष—जिस प्रकार उदास्थित गुप्तचर प्रभूत धन देकर शिष्यों के साथ कृषि भूमि में जाकर कार्य कराता है, उसी प्रकार गृहपतिक नामक गुप्तचर भी कराता रहे और इस कपट-वेष में राजहित का सम्पादन करे।

वाणिजको वृत्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो वैदेहकव्यञ्जनः। स वणिक्कर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेण॥ ५॥

अनुवाद—बुद्धिमान्, पवित्र हृदय, गरीब, व्यापारी के वेष में रहने वाला गुप्तचर 'वैदेहक' है। वह व्यापारकार्य के लिए नियत भूमि में जाकर 'उदास्थित' गुप्तचर की भाँति कार्य करता हुआ रहे।

संस्कृत-व्याख्या—वृत्तिक्षीणः = धनविरहाद् वाणिज्यवृत्तिच्युतः, प्रज्ञाशौचयुक्तः = बुद्धिमान् पवित्रहृदयश्च, वाणिजकः = वणिग्वेषधारी, वैदेहकव्यजनः = तन्नामा गुप्तचरः कथ्यते। सः, वणिक्कर्मप्रदिष्टायाम् = वाणिज्यसञ्चालनकर्मार्थे उपकल्पितायां भूमौ, पूर्वेण समानम् = उदास्थितकृत्येन पूर्वकथितेन कर्मणा तुल्यं सर्वमपि कारयेद् इति।

विशेष—जिस प्रकार उदास्थित नामक गुप्तचर विद्यार्थियों से कार्य कराता है, उसी प्रकार वैदेहक भी व्यापार के लिए नियत भूमि में जाकर छात्रों से वे सब कार्य करावे और राजहित का गुप्त रूप से सम्पादन करे।

मुण्डो जटिलो वा वृत्तिकामस्तापसव्यञ्जनः। स नगराभ्याशे प्रभूतमुण्डजटिलान्तेवासी शाकं यवसमुष्टिं वा मासद्विमासान्तरं प्रकाशमश्नीयात्, गूढमिष्टमाहारम्। वैदेहकान्तेवासिनश्चैनं समिद्धयोगैरर्चयेयुः। शिष्याश्चास्यावेदयेयुः—असौ सिद्धः सामेधिक इति। समेधाशास्तिभिश्चाभिगतानामङ्गविद्यया शिष्यसंज्ञाभिश्च कर्माण्यभिजनेऽवसितान्यादिशेदल्पलाभमग्निदाहं चोरभयं दूष्यवधं तुष्टिदानं विदेशप्रवृत्तिज्ञानम् इदमद्य श्वो वा भविष्यतीदं वा राजा करिष्यतीति॥ ६॥

अनुवाद—जीविका के लिए सिर मुँडाए या जटा धारण किये हुए गुप्त वेष में रहने वाले को 'तापस' नामक गुप्तचर कहते हैं। वह नगर के समीप ही कहीं मुँड या जटिल बहुत से विद्यार्थियों को लेकर रहे और महीने दो महीने तक लोगों के सामने हरा शाक या मुट्ठीभर अनाज खाता रहे; परन्तु छिपे तौर पर अपनी इच्छानुसार सुस्वादु भोजन करता रहे।

वैदेहक तथा उसके अनुचर 'तापस' गुप्तचर की पूजा-अर्चना करें। शिष्यमंडली घूम-घूम कर यह प्रचार करे कि यह तपस्वी पूर्ण सिद्धयोगी और भविष्य-वक्ता है। अपना भविष्य-फल जानने की इच्छा से आये हुए लोगों की पारिवारिक पहिचान, उनके शारीरिक चिह्नों के माध्यम से तथा अपने शिष्यों के संकेतों के अनुसार बतावे। ऐसा भी बतावे कि इन-इन कार्यों में थोड़ा लाभ का योग है। इसके अतिरिक्त वह आग लगने, चोरी हो जाने; दुष्ट लोगों के वधस्वरूप इनाम देने; देश-विदेश के फल; यह कार्य आज होगा या कल; या इस कार्य को राजा करेगा; आदि बातों की भविष्यवाणी करे अर्थात् इस तरह की बातें बतावे।

संस्कृत-व्याख्या—मुण्डः = मुण्डितो भिक्षुक्षपणकादिः, जटिलः = जटायुक्तः शैवपाशुपतादिः, वा, वृत्तिकामः = जीविकानिर्वाहेच्छुः, तापसव्यञ्जनः = तन्नामा गुप्तचरः कथ्यते। सः = तापसः, नगराभ्याशे = नगरसमीपे कुत्रापि, प्रभूतमुण्डजटिलान्तेवासी = मुण्डजटिलशिष्ययुतः, शाकम् = हरिताख्यं शस्यम्, यवसमुष्टिम् = मुष्टिमेयं यवसान्नम्, वा = अथवा, मासद्विमासान्तरम् = एकमासव्यवहितं मासद्वयव्यवहितं वा, प्रकाशम् = सर्वजनसमक्षम्, गूढम् = अन्याविदितम्, मिष्टमाहारम् = सुस्वादुभोजनम्, अश्नीयात् = भक्षयेत्। वैदेहकान्तेवासिनः = वणिग्वृत्तयः शिष्याश्च, एवम् = तापसव्यञ्जनम्, समिद्धयोगैः = समृद्धैः योगैः धनलाभैः, अर्चयेयुः = सम्भावयेयुः। शिष्याश्च = तापसस्य शिष्याश्च, आवेदयेयुः = प्रख्यापयेयुः यदसौ सिद्धः = अयं तापसः सिद्धयोगी, सामेधिकः = भविष्यवक्ता, इति। समेधाशास्तिभिः = भाविसम्पद्विज्ञानाभिलाषैः, अभिगतानाम् = प्रष्टुमागतानाम्, अङ्गविद्यया = अङ्गानां शरीरावयवानां प्रश्नकालिकचेष्टाविशेषैः शुभाशुभप्रतिपादकेन, शिष्यसंज्ञाभिः = शिष्याणामक्षिभ्रूविलासादिसूचनैश्च, अभिजने = कुटुम्बिजने, अवसितानि कर्माणि = तत्कुलनिष्पन्नानि वृत्तानि, आदिशेत् = कथयेत्, इदं चापि कथयेद् यद् अल्पलाभम् = किञ्चिद्धनप्राप्तिम्, अग्निदाहं चोरभयं च, दूष्यवधम् = दूष्याः कृत्याः प्रष्टारस्तेषां वधम्, तुष्टिदानम् = सन्तोषनिमित्तमर्थदानम्, विदेशप्रवृत्तिज्ञानम् = दूरदेशवृत्तान्तज्ञानम्, इदमद्य = अद्यैव, श्वो वा = अपरेद्युः वा, भविष्यति, इदं वा कार्यं राजा = नृपः, करिष्यति = विधास्यति, इति आदिशेत्।

विशेष—'तापस' नामक गुप्तचर अपने शिष्यों की सहायता से लोगों के पारिवारिक कार्यों का, उनके भविष्य आदि का तथा राजा के द्वारा उनकी सहायता करने एवं अर्थलाभ आदि का निर्देश देवे। इस तरह वह गुप्तचरी करता रहे।

तदस्य गूढाः सत्रिणश्च संवादयेयुः। सत्त्वप्रज्ञावाक्यशक्तिसम्पन्नानां राजभाव्यमनुव्याहरेन्मन्त्रिसंयोगं च। मन्त्री चैषां वृतिकर्मभ्यां वियतेत॥ ७॥

अनुवाद—इस तापस के कथन को गुप्त रूप से रहने वाले गुप्तचर स्त्री-पुरुष पूरा करें। प्रश्नकर्त्ताओं में पराक्रम, बुद्धि एवं वाक्पटुता से युक्त लोगों से वह कहे कि तुम्हें राजा से धन प्राप्त होने की सम्भावना और मन्त्री से मुलाकात की आशा है। ऐसे लोगों को मन्त्री धन तथा आजीविका आदि देकर गुप्तचर की भविष्यवाणी को सिद्ध कर दे।

संस्कृत-व्याख्या—अस्य = तापसस्य, तद् = आदेशनम्, गूढा: सत्रिण: = गुप्तचरा: स्त्री-पुरुषा:, संवादयेयु: = सम्पादयेयु:। सत्त्वप्रज्ञावाक्यशक्तिसम्पन्नानाम् = धैर्यबुद्धिवाग्मित्वप्रभुशक्तिसंयुक्तानां प्रश्नकर्तृणाम्, राजभाव्यम् = राजसकाशाद् भाविनमर्थं धनादिलाभरूपम्, मन्त्रिसंयोगं च = मन्त्रिसमागमं च, अनुव्याहरेत् = आदिशेत्। मन्त्री च = घटितसमागमो मन्त्री, एषाम् = सत्त्वप्रज्ञादिसम्पन्नानाम्, वृत्तिकर्मभ्याम् = वृत्ति: आजीव:, कर्म व्यापार:, ताभ्याम्, वियतेत = विशिष्यं यत्नं कुर्यात्।

विशेष—गुप्तचर तापस की भविष्यवाणी को अर्थात् धनलाभ, अग्नि दाह, चोरभय आदि को प्रच्छन्न रूप से इस तरह करें कि वे सब घटनाएँ भविष्यवाणी के अनुरूप वास्तविक ही घटित हुई प्रतीत हों। मन्त्री भी धन एवं आजीविका आदि से तापस की भविष्यवाणी को सिद्ध करने में सहायक बने।

ये च कारणादभिक्रुद्धास्तानर्थमानाभ्यां शमयेत्, अकारणक्रुद्धान् तूष्णींदण्डेन राजद्विष्टकारिणश्च॥ ८॥

अनुवाद—जो लोग किसी कारणवश क्रुद्ध हों, उन्हें धन और सम्मान देकर शान्त करें, जो बिना कारण क्रुद्ध हों और राजा से द्वेष रखते हों, उन्हें मन्त्री चुपचाप दण्डित करें (मरवा दे या शान्त करें)।

संस्कृत-व्याख्या—ये = जना:, कारणात् = अपकाररूपात् प्रयोजनात्, अभिक्रुद्धा: = रुष्टा:, तान्, अर्थमानाभ्याम् = धनसत्काराभ्याम्, शमयेत् = सन्तोषयेत्, अकारणक्रुद्धान् = निष्प्रयोजनकुपितान्, राजद्विष्टकारिण: = नृपद्वेषवतश्च, तूष्णींदण्डेन = उपांशुवधेन, शमयेत्।

पूजिताश्चार्थमानाभ्यां राज्ञा राजोपजीविनाम्।
जानीयु: शौचमित्येता: पञ्च संस्था: प्रकीर्तिता:॥ ९॥

अनुवाद—धन और मान से राजा द्वारा पूजित गुप्तचर राजोपजीवी अमात्य आदि पुरुषों की पवित्रता को भलीभाँति जान लें। इस तरह पाँच प्रकार के गुप्तचरों की नियुक्ति एवं कार्य-विवरण का निरूपण किया गया है।

संस्कृत-व्याख्या—राज्ञा = नृपेण, अर्थमानाभ्याम् = धनसम्मानाभ्याम्, पूजिता: = सम्भाविताश्च गूढपुरुषा:, राजोपजीविनाम् = नृपाश्रितवृत्तीनाममात्यादीनाम्, शौचम् = शुद्धिम्, जानीयु:। इत्येता: = इत्थं कापटिकाद्येकैकप्रधाना:, पञ्च संस्था: = पञ्च प्रकारा राजप्रयोजनकारिण:, सम्यक्तिष्ठन्ति आस्विति संस्था: = गूढपुरुषकर्मस्थानानि, प्रकीर्तिता: = व्युत्पादिता:।

विशेष—इस अध्याय में कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहक एवं तापस इन पाँच प्रकार के गुप्तचरों का विवेचन किया गया है। ये गुप्तचर संगठित रूप में कार्य करते हैं, इसलिए इन्हें संस्था कहा गया है।

॥ इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे (संस्थोत्पत्ति:) गूढपुरुषोत्पत्तिरेकादशोऽध्याय:॥

❑❑❑

द्वादशोऽध्यायः

अष्टमं प्रकरणम्—गूढपुरुषप्रणिधिः

ये चास्य सम्बन्धिनोऽवश्यभर्तव्यास्ते लक्षणमङ्गविद्यां जम्भकविद्यां मायागतमाश्रमधर्मं निमित्तमन्तरचक्रमित्यधीयानाः सत्रिणः संसर्गविद्या वा ॥ १ ॥

अनुवाद—जो राजा के सम्बन्धी हों, जिनका भरण-पोषण करना (राजा को) आवश्यक हो, जो लक्षणशास्त्र, अंगविद्या, जम्भकविद्या, इन्द्रजाल, आश्रमधर्म, शकुनशास्त्र, पक्षिशास्त्र और संसर्गविद्या (कामशास्त्र एवं तत्सम्बन्धी नाचने-गाने की कला) के विद्वान् हों, वे '**सत्री**' कहलाते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—ये = जनाः, अस्य = राज्ञः, सम्बन्धिनः = सगन्धाः, अवश्यभर्त्तव्याः = अवश्यपोष्याः, च भवन्ति, ते लक्षणम् = सामुद्रिकम्, अङ्गविद्याम् = शिक्षाकल्पव्याकरणादिकम् अङ्गस्पर्शेन शुभाशुभपरिज्ञानविद्यां वा, जम्भकविद्याम् = वशीकरणान्तर्धानविद्याम्, मायागतम् = इन्द्रजालम्, आश्रमधर्मम् = मन्वादिधर्मशास्त्रम्, निमित्तम् = कपिञ्जलादिप्रणीतं शकुनशास्त्रम्, अन्तरचक्रम् = पक्षिशास्त्रम्, संसर्गविद्या वा = कामतदनुबन्धिगीतनृत्तादिशास्त्राणि वा, अधीयानाः = विज्ञातारः, सत्रिणः = सत्रिसंज्ञाः गूढचरा भवन्ति।

विशेष—१. पूर्व अध्याय '**गूढपुरुषोत्पत्तिः**' में कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहक एवं तापस नामक गुप्तचरों के स्वरूप का विवेचन किया गया है। ये गुप्तचर एक ही स्थान पर रहकर राजकार्य का सम्पादन करने के कारण '**संस्था**' कहलाते हैं। इस अध्याय में सञ्चरणशील या भ्रमणशील गुप्तचरों की विवेचना की गई है। ऐसे गुप्तचरों को '**संचार**' कहते हैं, क्योंकि ये घूम-घूमकर राजकार्य करते हैं।

२. किसी विशेष विद्या के जानकार, राजा के सम्बन्धी, जो राजा द्वारा अश्वयमेव भरण-पोषण योग्य होते हैं, वे यदि गुप्तचर का कार्य करते हैं तो उन्हें सत्री कहा जाता है। आदमी के मुख, गर्दन, हाथ-पैर आदि की रेखाओं के अनुसार भविष्यफल बताने वाले तथा हाथी, अश्व आदि के लक्षण बताने शास्त्रों को लक्षणशास्त्र कहते हैं। अङ्गविद्या का आशय वेद के शिक्षा, व्याकरण, कल्प, निरुक्त, छन्दोविचिति एवं ज्योतिषशास्त्र से भी है और शरीर के अंगों को देखकर शुभाशुभ का निर्देश करने से भी है। वशीकरण एवं अर्न्तधान आदि की शक्ति को जम्भक विद्या कहते हैं। पक्षियों के द्वारा शुभाशुभ का ज्ञान

करने वाली विद्या को अन्तरचक्र कहते हैं। कामशास्त्र एवं उससे सम्बन्ध रखने वाले नृत्य, गीत, वाद्य आदि में निपुणता का नाम संसर्ग विद्या है।

ये जनपदे शूरास्त्यक्तात्मानो हस्तिनं व्यालं वा द्रव्यहेतोः प्रतियोधयेयुस्ते तीक्ष्णाः ॥ २ ॥

अनुवाद—जनपद में जो शूरवीर अपने शरीर (प्राणों) की चिन्ता न करके हाथी, बाघ, साँप से भी धन के कारण भिड़ जाते हैं, उन्हें 'तीक्ष्ण' कहते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—ये जनपदे = स्वदेशे स्थिताः त्यक्तात्मानः = शरीरनिरपेक्षाः, शूराः = वीराः, द्रव्यहेतोः = धनलाभात्, हस्तिनम् = करिणम्, व्यालम् = व्याघ्रादिकम्, प्रतियोधयेयुः = युद्धं कुर्युः, ते = गुप्तचराः, तीक्ष्णाः = तदाख्याः मन्यन्ते।

विशेष—'व्यालम्' का आशय व्याघ्र, सर्प आदि हिंसक पशुओं से है।

ये बन्धुषु निःस्नेहाः क्रूराश्चालसाश्च ते रसदाः ॥ ३ ॥

अनुवाद—अपने भाई-बान्धवों से स्नेह न रखने वाले, क्रूर प्रकृति और आलसी स्वभाव वाले हों, वे 'रसद' कहलाते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—ये बन्धुषु = सहोदरेषु आत्मीयजनेषु वा, निःस्नेहाः = प्रेमरहिताः, क्रूराः = आततायिनः, च = विषदानेऽपि निशङ्काः, अलसाः = अनुत्साहाः प्रमादयुक्ताश्च, ते = गुप्तचराः, रसदाः = तदाख्याः भवन्ति।

विशेष—'रसद' का अर्थ रस अर्थात् जहरीला पेय या विष को देने वाला होता है। क्रूर स्वभाव के होने से ये स्नेहरहित होते हैं।

परिव्राजिका वृत्तिकामा दरिद्रा विधवा प्रगल्भा ब्राह्मण्यन्तःपुरे कृतसत्कारा महामात्रकुलान्यधिगच्छेत्। एतया मुण्डावृषल्यो व्याख्याताः। इति सञ्चाराः ॥ ४ ॥

अनुवाद—आजीविका की इच्छुक, दरिद्र, विधवा, प्रगल्भ ब्राह्मणी, अन्तःपुर में सम्मानित तथा अमात्यों के घर में प्रवेश पाने वाली 'परिव्राजिका' (भिक्षुकी) गुप्तचरी कहलाती है। इसी प्रकार मुंडा (मुंडित बौद्ध भिक्षुणी) एवं वृषली (शूद्रा आदि) गुप्तचारियों को भी समझना चाहिए। ये सभी 'संचार' नामक गुप्तचर हैं।

संस्कृत-व्याख्या—वृत्तिकामा = भोगार्थिनी, दरिद्रा = निर्धना, विधवा = मृतपतिका, प्रगल्भा = चातुर्ययुक्ता, ब्राह्मणी = ब्राह्मणजातीया, अन्तःपुरे = अवरोधे, कृतसत्कारा = विहितसम्माना, महामात्रकुलानि = अमात्यगृहाणि, अधिगच्छेत् = सत्कारस्वीकारार्थं तत्र बारं-बारं गच्छेत्, एवम्भूता सा परिव्राजिका = तदाख्या (भिक्षुकी) गुप्तचरी कथ्यते। एतया = ब्राह्मणपरिव्राजिकया पूर्वोक्तया, मुण्डावृषल्याः = मुण्डा बौद्धभिक्षुकी वृषल्यः शूद्रजातीयाश्च, व्याख्याताः, अर्थात् ताः सर्वाः ब्राह्मणभिक्षुकीसमानाचारा वेदितव्याः। इति = उक्तस्वरूपाः सत्रिप्रभृतयः, सञ्चाराः = सञ्चारनामा आख्यायन्ते।

विशेष—१. ब्राह्मणी परिव्राजिका के समान ही मुण्डा बौद्ध भिक्षुकी तथा शूद्रा भिक्षुणी का लक्षण मानना चाहिए—ऐसा आचार्य कौटिल्य का अभिमत है।

२. सत्री, तीक्ष्ण, रसद, परिव्राजिका, मुण्डा, शूद्रा आदि स्त्री-पुरुष गुप्तचर सदा भ्रमणशील रहकर अपना कार्य-सम्पादन करते हैं। इसलिए इन्हें 'संचार' कहा गया है।

तान् राजा स्वविषये मंन्त्रिपरोहितसेनापतियुवराजदौवारिकान्तर्वंशिकप्रशास्तृसमाहर्तृसन्निधातृप्रदेष्टृनायकपौरव्यावहारिककार्मान्तिकमन्त्रिपरिषदध्यक्षदण्डदुर्गान्तपालाटविकेषु श्रद्धेयदेशवेषशिल्पभाषाभिजनापदेशान् भक्तितः सामर्थ्ययोगाच्चापसर्पयेत्॥ ५॥

अनुवाद—राजा उन गुप्तचरों को अपने राज्य में मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, द्वारपाल, अन्त:पुर रक्षक, छावनी रक्षक, समाहर्ता (कर-संग्रह करने वाला अधिकारी), कोषाध्यक्ष, प्रदेष्टा (कमिश्नर), नायक (हवलदार), नगर-प्रधान, वकील, खदान-निरीक्षक, मन्त्रिपरिषद् अध्यक्ष, सेनारक्षक, दुर्गरक्षक, सीमारक्षक तथा वनपाल आदि अधिकारियों के समीप उनके विश्वसनीय देश, वेष, शिल्प, भाषा तथा कुलीनता के अनुसार उनकी भक्ति और सामर्थ्य की परीक्षा करने के बाद भेजे।

संस्कृत-व्याख्या—राजा स्वविषये = आत्मजनपदे, तान् = पूर्वोक्तान् सञ्चारान्, मन्त्रि-पुरोहित-सेनापति-युवराज-दौवारिका इति प्रसिद्धा:, अन्तर्वेंशिक: = अन्त:पुराधिकृत:, प्रशास्ता = स्कन्धावारनिवेशयिता, समाहर्ता = राजार्थसमाहरकर्ता, सन्निधाता = भाण्डागाराधिकृत:, प्रदेष्टा = कण्टकशोधनाधिकृत:, नायक: = एकद्विसहस्रपदातिनेता, पौरव्यावहारिक: = पुरमुख्य: पुरप्राड्विवाको वा, कर्मान्तिक: = आकरादिकर्माधिकृत:, मन्त्रिपरिषदध्यक्ष: = द्वादशमण्डलाधिकारेण मुख्य:, दण्डदुर्गान्तपाला: = दण्डपाल: सैन्यसेनामुस्थादिनेतार:, दुर्गपाल: = प्राकारादिरक्षी, अन्तपाल: = राज्यसीमारक्षी, आटविक: = अटवीपाल:, तेषु सर्वेषु समीपं तान् = सञ्चारान्, श्रद्धेयदेशवेषशिल्पभाषाभिजनापदेशान् = श्रद्धेयाद्य: अनभिशङ्कनीयाद्य:, तान् अपदेशान् निर्देशान्, भक्तित: = भक्तिभावात्, सामर्थ्ययोगात् = सामर्थ्यवशाच्च, अपसर्पयेत् = चारयेत्।

विशेष—आचार्य कौटिल्य ने बताया है कि राजा संचार नामक गुप्तचरों को उनके देश, वेषभूषा, शिल्प-कौशल, भाषा आदि के आधार पर उन्हें शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार विभिन्न राजकीय अधिकारियों के पास भेजे। अर्थात् जो मन्त्री या पुरोहित आदि अधिकारी जिस देव का भक्त है, जो भाषा आदि का व्यवहार करता है, उसी तरह के देवभक्त एवं भाषा आदि का रूप धारण करने में समर्थ गुप्तचर को उसके पास भेजे। ये गुप्तचर उनके सामान्य सेवक रूप में भी नियुक्त किये जा सकते हैं।

तेषां बाह्यं चारं छत्रभृङ्गारव्यजनपादुकासनयानवाहनोपग्राहिणस्तीक्ष्णा विद्युः। तं सत्त्रिणः संस्थास्वर्पयेयुः॥ ६॥

अनुवाद—उनमें से तीक्ष्ण नामक गुप्तचर का कर्त्तव्य है कि वह छत्र, चामर, व्यजन, पादुका, आसन, शिविका (पालकी) और घोड़े आदि बाहरी उपकरणों की देख-रेख करता हुआ अमात्य आदि की सेवा करे और उनके व्यवहारों को जाने। तीक्ष्ण गुप्तचर द्वारा जानी गई बातों को सत्री गुप्तचर संस्था गुप्तचरों (कापटिक आदि) का बता दे।

संस्कृत-व्याख्या—तेषाम् = मन्त्र्यादीनाम्, छत्रभृङ्गारव्यजनपादुकासनयानवाहनोपग्राहिणः = छत्रम् आतपत्रं भृङ्गारः पात्रभेदः व्यजनं तालवृन्तं पादुका उपानत् आसनं यानम् आन्दोलिका वाहनमश्वः, एतेषामुपग्रहणवृत्त्या तान् सेवमानाः, बाह्यं चारम् = बाह्योपकरणादिकं सेवमानाः, तीक्ष्णाः विद्युः = जानीयुः, तम् = तीक्ष्णविदितं चारम्, सत्रिणः = पूर्वोक्तलक्षणाः गुप्तचराः, संस्थासु = कापटिकादिगुप्तचरेषु, अर्पयेयुः = निवेदयेयुः।

विशेष—तीक्ष्ण गुप्तचर श्रमसाध्य कर्म में प्रवृत्त होकर मन्त्री आदि की सेवा करते हुए जो वृत्तान्त जाने, उसे सत्री गुप्तचरों को बतावें और वे सत्री उस वृत्तान्त को संस्था गुप्तचरों (आटविक आदि) को बता दें।

सूदारालिकस्नापकसंवाहकास्तरककल्पकप्रसाधकोदकपरिचारका रसदाः कुब्जवामनकिरातमूकबधिरजडान्धच्छद्मानो नटनर्तकगायनवादकवाग्जीवनकुशीलवाः स्त्रियश्चाभ्यन्तरं चारं विद्युः। तं भिक्षुक्यः संस्थास्वर्पयेयुः॥ ७॥

अनुवाद—सूद (रसोइया), आरालिक (मांस पकाने वाला), स्नापक (नहलाने वाला), संवाहक (हाथ-पैर दबाने वाला), आस्तरक (विस्तर बिछाने वाला), कल्पक (नाई), प्रसाधक (शृंगार करने वाला) और उदक-परिचारक (जल भरने वाला) आदि विभिन्न रूप-नामों में रहकर रसद नामक गुप्तचर, इसी प्रकार कुवड़े, बौने, किरात (जङ्गली आदमी), गूँगे, बहरे, मूर्ख, अन्धे आदि के वेष में गुप्तचर और नट, नाचने-गाने-बजाने वाले, कहानी कहने वाले, कूद-फाँद कर खेल दिखाने वाले आदि के वेष में स्त्री गुप्तचर मन्त्री आदि उच्चाधिकारियों के सब रहस्यों का पता लगा लें। भिक्षुकी वेष धारण करने वाली गुप्तचर महिला रसद आदि पुरुष गुप्तचरों से प्राप्त समाचारों को कापटिक आदि गुप्तचरों तक पहुँचा दे।

संस्कृत-व्याख्या—सूदारालिकः = सूदः अन्नकारः, आरालिकः भक्षकारः, स्नापकः स्नपयिता, संवाहकः अङ्गमर्दकः, आस्तरकः शय्यास्तरणकर्ता, कल्पकः नापितः, प्रसाधकः अलङ्कर्त्ता, उदपरिचारकः जलहारकः, एते सर्वे रसदाः = तदाख्या गुप्तचराः, कुब्जवामनकिरातमूकबधिरजडान्धच्छद्मनः = कुब्जः गण्डुलः, वामनः खर्वः, किरातः अल्पतनुः, जडः मूर्खः (अचेतनः), अन्धः नेत्ररहितश्च एते छद्मानः = कपटवेषधारिणः, नटनर्तकगायनवादकवाग्जीवनकुशीलवाः = नटः नाट्याभिनयकर्ता, नर्तकः अङ्गविक्षेपकर्त्ता,

गायनः गान्धर्ववित्, वादकः वाद्यवादयिता, वाग्जीवनः पुराख्यानवाचकः कुशीलवः लंघनप्लवनादिवृत्तिः वेणः, एवं कपटवेषवत्यः स्त्रियः, आभ्यन्तरं चारम् = गृहान्तर्गतं रहस्यम्, विद्युः = जानीयुः। तम् = रसदादिविज्ञातं चारम्, भिक्षुक्यः = मुण्डाः शूद्रा वा स्त्रियः, संस्थासु = कापटिकाद्यासु, अर्पयेयुः = निवेदयेयुः।

विशेष—इसमें बताया गया है कि संचार वर्ग के गुप्तचर मन्त्री, पुरोहित आदि उच्चाधिकारों के समीप विविध कपटवेष में रहें तथा उनके घर के भीतर के रहस्यों को जानकर भिक्षुकी गुप्तचर को बता दें। वह उस वृत्तान्त को संस्थायों (कापटिक आदि पाँच को प्रकार के गुप्तचरों) को बता दे।

संस्थानामन्तेवासिनः संज्ञालिपिभिश्चारसञ्चारं कुर्युः। न चान्योन्यं संस्थास्ते वा विद्युः॥ ८॥

अनुवाद—संस्थाओं (कापटिक आदि पाँच प्रकार के गुप्तचरों) के विद्यार्थी अपनी सांकेतिक लिपियों के द्वारा समाचार को (राजा तक) पहुँचावें। परस्पर एक-दूसरे की संस्थाएँ अर्थात् संस्था-गुप्तचरों को संचार-गुप्तचर और संचार-गुप्तचरों को संस्था-गुप्तचर प्रत्यक्षतः न जान सकें।

संस्कृत-व्याख्या—संस्थानाम् = कापटिकादीनाम्, अन्तेवासिनः = छात्राः शिष्याः वा, संज्ञालिपिभिः = अर्थसूचनाय स्वकल्पितसंकेतलिपिभिः पत्रे निवेशिताभिः, चारसञ्चारम् = बाह्याभ्यन्तरसमाचारप्रेषणम्, राज्ञि समर्पणं च कुर्युः। च = परन्तु, संस्थाः ते = संस्थाः सञ्चाराश्च अन्योन्यं न विद्युः = परस्परं न जानीयुः। अर्थात् संस्थाः संस्थान्तरवेदिनः सञ्चाराश्च सञ्चारान्तरवेदिनो न भवेयुः। अन्योन्यवेदने तु सर्वमपि कार्यजातं प्रकटितं भविष्यति।

भिक्षुकीप्रतिषेधे द्वाःस्थपरम्परा मातापितृव्यञ्जनाः शिल्पकारिकाः कुशीलवा दास्यो वा गीतपाठ्यवाद्यभाण्डगूढलेख्यसंज्ञाभिर्वा चारं निर्हारयेयुः। दीर्घरोगोन्मादाग्निरसविसर्गेण वा गूढनिर्गमनम्॥ ९॥

अनुवाद—यदि (अमात्य आदि के घरों में) भिक्षुकी का प्रवेश निषिद्ध हो तो वह द्वारपालों की परम्परा से माता-पिता बनकर शिल्पकारिकाओं, कुशीलवों या दासियों के रूप में गीतों, श्लोकों, बाजों, बर्तनों आदि में गूढ़ लेखों के संकेत से अन्तःपुर के समाचारों को बाहर लावे। भयानक रोग, पागलपन, आग लगाकर या जहर देकर गुप्त रूप से बाहर निकल आवे।

संस्कृत-व्याख्या—भिक्षुकीप्रतिषेधे = यदि भिक्षक्यो नान्तःप्रवेशं लभेरन्, तदा दाःस्थपरम्पराः = एको द्वाःस्थस्तदनन्तराय द्वाःस्थाय, स तदनन्तरायेति क्रमेण चरमो द्वाःस्थो बाह्यजनाय, मातापितृव्यञ्जनाः = अन्तःपुरसेवकजनस्याहं माता पिताऽहमिति व्यवहारेण,

शिल्पकारिकाः केशसंस्कारादिकर्त्र्यः, कुशीलवाः = गायन्यः, दास्यः = परिचारिका वा, गीतपाठ्यवाद्यभाण्डगूढलेख्यसंज्ञाभिः = गीतेन, पाठ्येन श्लोकेन, वाद्येन वंशवीणादिना, भाण्डगूढलेख्येन जलकुम्भादौ क्षिप्तेन गूढलेख्येन च याः संज्ञा अर्थ सूचनाः, ताभिर्वा, चारम् = अन्तःस्थसमाचारम्, निर्हारयेयुः = बहिः प्रापयेयुः। एतदभावे दीर्घरोगोन्मादाग्निरसविसर्गेण = दीर्घरोगेण गुल्मादिना, उन्मादेन ग्रहपीडया, अग्निरसविसर्गेण शालायामग्निदानेन अन्नादौ विषमिश्रणेन वा, गूढनिर्गमनम् = गूढपुरुषाणां सौकर्यात् निगर्मनं कुर्युः।

विशेष—इसमें निर्देश दिया गया है कि यदि अमात्य आदि के घरों में भिक्षुकी का अंतःप्रवेश निषिद्ध हो तो वह समाचार द्वारपालों के माध्यम से बाहर भिक्षुकी तक पहुँचे। यदि इसमें भी कुछ आशंका या असम्भव जान पड़े तो अंतःपुर के नौकरों के माता-पिता बनने का बहाना करके वृद्धा स्त्री-पुरुष भीतर प्रवेश करके रहस्य का पता लगायें। या तो रानियों के बाल सवाँरने वाली या नाचने-गाने वाली स्त्रियों अथवा दासियों द्वारा, अथवा निजी संकेतों वाले गीतों, श्लोकों, प्रार्थनाओं, या तो बाजों, बर्तनों, टोकरियों में गुप्त लेख रखकर, अथवा अन्य विधियों से, जैसा भी समय के अनुसार अपेक्ष्य हो, अंतःपुर के समाचारों को बाहर लाया जाय। यदि इन युक्तियों से भी सफलता न मिले तो गुप्तचर को चाहिए कि वह किसी भयङ्कर बीमारी अथवा पागलपन के बहाने से आग लगाकर या किसी को जहर देकर (जिससे अंतःपुर में कोलाहल मच जाये) चुपचाप बाहर निकल आवे।

त्रयाणामेकवाक्ये सम्प्रत्ययः। तेषामभीक्ष्णविनिपाते तूष्णींदण्डः प्रतिषेधो वा॥ १०॥

अनुवाद—तीन गुप्तचरों के द्वारा एक समान समाचार लाने पर विश्वास कर लेना चाहिए। परन्तु उनके बार-बार विपरीत समाचार होने पर उन्हें तूष्णी दण्ड अथवा प्रतिषेध दण्ड दिया जावे।

संस्कृत-व्याख्या—यदि अन्योन्यापरिचिताः त्रयो गूढपुरुषाः एकवाक्ये = परस्परवाक्यसंवादिनि वाक्ये चारं कथयेयुः, तर्हि सम्प्रत्ययः = विश्वासः कर्त्तव्यः। अभीक्ष्णविनिपाते = पौनःपुनिके वाक्यविसंवादे, तेषाम् = त्रयाणां गूढपुरुषाणाम्, तूष्णींदण्डः = उपांशु ताडनीयो दण्डः, प्रतिषेधः = तत्कर्मणो निवारणीयो वा।

विशेष—परस्पर अपरिचित तीन गुप्तचर यदि एक ही तरह का समाचार लायें, तो उस पर विश्वास करना चाहिए, अर्थात् उस समाचार को सही समझना चाहिए। यदि वे परस्पर विरोधी समाचार लायें, तो उस पर विश्वास नहीं करें और ऐसे अविश्वसनीय समाचार लाने वालों को तूष्णीदण्ड (किसी अपरिचित से पिटवा देना) दे या नौकरी से अलग कर दें।

कण्टकशोधनोक्ताश्चापसर्पाः परेषु कृतवेतना वसेयुः सम्पातनिश्चारार्थं, त उभयवेतनाः॥ ११॥

अनुवाद—कण्टकशोधन प्रकरण में बताये गये गुप्तचर विदेशों में (वहाँ सरकारी) नौकरी करते हुए वहाँ के गुप्त रहस्यों का पता लगाते रहें। ये गुप्तचर दोनों ओर (दोनों देशों—शत्रुदेश व मित्रदेश) से वेतन लें।

संस्कृत-व्याख्या—कण्टकशोधनोक्ताः = कण्टकशोधनाधिकरणोक्ताः, अपसर्गाः = गूढपुरुषाः, परेषु = शत्रुराज्येषु, कृतसेवनाः = कृतजीविकाः, सम्पातनिश्चारार्थम् = सम्पातानां चाराणां निश्चारार्थं निरासायानुष्ठानार्थं, वसेयुः = सेवां कुर्युः। ते = चाराः, उभयवेतनाः = स्वपक्षतः शत्रुपक्षतश्च वेतनग्राहिणः स्युः।

गृहीतपुत्रदारांश्च कुर्यादुभयवेतनान्।
तांश्चारिप्रहितान् विद्यात् तेषां शौचं च तद्विधैः॥ १२॥

अनुवाद—उभय वेतनभोगी गुप्तचरों के स्त्री-बच्चों को (राजा) अपने आश्रित रखे। शत्रु द्वारा भेजे गये उभय वेतनभोगी गुप्तचरों की जानकारी रखे तथा उनके द्वारा अपने उभय वेतनभोगी गुप्तचरों की पवित्रता की परीक्षा करे।

संस्कृत-व्याख्या—उभयवेतनान् = तथाविधगूढपुरुषान्, गृहीतपुत्रदारान् = गृहीताः राज्ञा पूजापूर्वमात्मवशे कृताः पुत्रा दाराश्च येषां तांस्तथाभूतान्, कुर्यात्, अरिप्राहितान् = शत्रुप्रेषितान्, तान् = उभयवेतनान्, विद्यात् = जानीयात्, तेषां शौचं च = स्वीयानामुभयवेतनानां शुद्धिं च, तद्विधैः = उभयवेतनद्वारेण, विद्यात्।

विशेष—राजा को चाहिए कि शत्रु देश में नौकर बनकर जो गुप्तचर रह रहे हैं, उनकी सन्तान एवं पत्नी आदि की राजा स्वयं सम्मानपूर्वक देखभाल करे। वह शत्रुपक्ष द्वारा भेजे गये उभय वेतनभोगी गुप्तचरों पर निगरानी रखे और उनके माध्यम से अपने उभय वेतनभोगी गुप्तचरों के क्रियाकलापों की जानकारी करता रहे।

एवं शत्रौ च मित्रे च मध्यमे चावपेच्चरान्।
उदासीने च तेषां च तीर्थेष्वष्टादशस्वपि॥ १३॥

अनुवाद—इस प्रकार विजिगीषु राजा शत्रु, मित्र, मध्यम तथा उदासीन राजाओं और उनके मन्त्री, पुरोहित, सेनापति आदि अठारह प्रकार के अधीनस्थ कर्मचारियों के पास अपने गुप्तचरों को नियुक्त करे।

संस्कृत-व्याख्या—एवम् = अनेन प्रकारेण, शत्रौ = रिपौ, मित्रे = स्वपक्षीये, च, मध्यमे = उभयपक्षीये उदासीने वा, चरान् = गूढपुरुषान्, आवपेत् = विसृजेत्। अष्टादशसु तेषां तीर्थेषु = शत्रुमित्रमध्यमेषु, उदासीने चाष्टादशप्रकारेषु, अपि चरान् आवपेत्।

विशेष—'अष्टादशसु तीर्थेषु' का आशय पूर्वोक्त मन्त्री, पुरोहित, सेनापति आदि अठारह प्रकार के अधीनस्थ कर्मचारियों-अधिकारियों से है। राजा उन सभी के पास तथा सभी स्थानों पर गुप्तचर नियुक्त करे।

अन्तर्गृहचरास्तेषां कुब्जवामनषण्डकाः।
शिल्पवत्यः स्त्रियो मूकाश्चित्राश्च म्लेच्छजातयः ॥ १४ ॥

अनुवाद—उनके (शत्रु, मित्र, मध्यम एवं उदासीन—चार प्रकार के राजाओं तथा अठारह प्रकार के अधिकारियों के) घरों में कुबड़े, बौने, नपुंसक (हिंजड़े), शिल्पकारिणी स्त्रियाँ, गूँगे तथा अनेक तरह से म्लेच्छ जाति के लोगों को नियुक्त करना चाहिए।

संस्कृत-व्याख्या—तेषाम् = शत्रुमित्रादितत्तीर्थान्तानाम्, अन्तर्गृहचराः = गृहाभ्यन्तरसञ्चारिणः, कुब्जवामनषण्डकाः = कुब्जा वामनाः षण्डकाः, शिल्पवत्यः = कलावत्यः स्त्रियः, मूकाः = वाग्विहीनाः, चित्राः = नानाप्रकाराश्च, म्लेच्छजातयः = निम्नजातीयाः पुरुषाः, नियोज्याः।

दुर्गेषु वणिजः संस्था दुर्गान्ते सिद्धतापसाः।
कर्षकोदास्थिता राष्ट्रे राष्ट्रान्ते व्रजवासिनः ॥ १५ ॥
वने वनचराः कार्याः श्रमणाटविकादयः।
परप्रवृत्तिज्ञानार्थाः शीघ्राश्चारपरम्पराः ॥ १६ ॥

अनुवाद—दुर्गों में व्यापारियों को, किले की सीमा पर सिद्ध तापसों को, राष्ट्र में कृषक एवं उदास्थित पुरुषों को और राष्ट्र की सीमा पर ग्वालों (चरवाहों) को, वन में शत्रुओं की गतिविधि जानने के लिए चतुर वानप्रस्थी एवं आटविकों को नियुक्त करना चाहिए।

संस्कृत-व्याख्या—दुर्गेषु = जलादिदुर्गवत्सु राजधान्यादिमहानगरेषु, वणिजः = व्यापारिणः, दुर्गान्ते = दुर्गसीमायाम्, सिद्धतापसाः = तापसजनाः, संस्थाः = गूढपुरुषाः कार्याः। एवमेव राष्ट्रे = स्वराज्ये देशे वा, कृषकोदास्थिताः = कृषकाः उदास्थिताश्च गूढपुरुषाः, राष्ट्रान्ते = राज्यसीमायाम्, व्रजवासिनः = गोपालाः गूढपुरुषाः कार्याः। वने = कानने, परप्रवृत्तिज्ञानार्थाः = शत्रुव्यापारज्ञानप्रयोजनाः, शीघ्राः = क्षिप्रचारिण्यः, श्रमणाटविकादयः = क्षपणकाटवीपालप्रभृतयः, वनचराः = वनवासिनः वानप्रस्था वा, कार्याः = गूढपुरुषाः कर्तव्याः।

विशेष—राजा को राज्य के सभी स्थानों पर अलग-अलग तरह के गुप्तचर नियुक्त करने का निर्देश दिया गया है।

परस्य चैते बोद्धव्यास्तादृशैरेव तादृशाः।
चारसञ्चारिणः संस्था गूढाश्चागूढसंज्ञिताः ॥ १७ ॥

अनुवाद—इस प्रकार ये गुप्तचर शत्रु के सभी संचार (सत्री, तीक्ष्ण आदि) गुप्तचरों एवं संस्था (कापटिक, उदास्थित आदि) गुप्तचरों को अपने ही अनुसार जान ले।

संस्कृतव्याख्या—एते तादृशाः = उक्तजातीयाः, गूढाः = छन्नरूपाः, तथापि अगूढसंज्ञिताः = अच्छन्नचिह्नधारिणः, परस्य रात्रोः, चारसञ्चारिणः = सत्रितीक्ष्णादयः, संस्थाः = कापटिकोदास्थितप्रभृतयश्च, तादृशैः = तज्जातीयैरेव, बोद्धव्याः = ज्ञातव्याः।

विशेष—इसमें बताया गया है कि प्रकट रूप में रहते हुए संचार गुप्तचर एवं संस्था गुप्तचर दोनों ही प्रकार के गुप्तचर अपने-अपने वर्ग के अनुसार शत्रु राजा के भी संचार एवं संस्था गुप्तचरों को पहचान लें।

अकृत्यान् कृत्यपक्षीयैर्दर्शितान् कार्यहेतुभिः।
परापसर्पज्ञानार्थं मुख्यानन्तेषु वासयेत्॥ १८॥

अनुवाद—अकृत्य (शत्रु के प्रलोभन में न आने वाले) विश्वस्त पुरुषों को कृत्यपक्ष के (शत्रु के वश में आने वाले) लोगों को वश में करने के उपायों के साथ राष्ट्र की सीमा पर नियुक्त किया जाना चाहिए।

संस्कृत-व्याख्या—अकृत्यान् मुख्यान् = असाध्यान् विरुद्धानपि राष्ट्रमुख्यान्, कृत्यपक्षीयैः = साध्यपक्षोचितैः, कार्यहेतुभिः = कार्यकारणैः, परापसर्पज्ञानार्थम् = शत्रुचारपुरुषज्ञानाय, अन्तेषु = राष्ट्रसीमसु, वासयेत् = निवासार्थं नियोजयेत्।

विशेष—अकृत्य पक्ष का आशय है कि जो कभी शत्रु के वश में नहीं आ सकें। शत्रु के वश में जो आते हैं, उन्हें कृत्यपक्ष कहते हैं। यहाँ आचार्य कौटिल्य ने विजिगीषु राजा को निर्देश दिया है कि वह उन लोगों को राष्ट्र की सीमा पर नियुक्त करे या बसावे, जो कि शत्रु के वश में नहीं आ सकें तथा उन्हें यह भी बता देना चाहिए कि शत्रुपक्ष को किस प्रकार वश में किया जा सकता है। वे शत्रुपक्ष के गुप्तचरों का पता भी लगाते रहें।

॥ इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे गूढपुरुषप्रणिधिः द्वादशोऽध्यायः॥

❑❑❑

त्रयोदशोऽध्यायः

नवमं प्रकरणम् — स्वविषये कृत्याकृत्यपक्षरक्षणम्

कृतमहामात्यापसर्पः पौरजानपदानपसर्पयेत् ॥ १ ॥

अनुवाद—अमात्य आदि के समीप गुप्तचरों की नियुक्ति के बाद राजा प्रजाजनों एवं नगरवासियों के मध्य भी गुप्तचरों की नियुक्ति करे।

संस्कृत-व्याख्या—कृतमहामात्यापसर्पः = कृतः विहितः महामात्यानां मन्त्रिपुरोहिताद्यष्टादशप्रमुखानाम् अपसर्पः चारप्रणिधानं येन सः, पौरजानपदान् = पुरजनपदवासिजनान्, अपसर्पयेत् = गूढपुरुषैः परिशोधयेत्, ते स्वस्मिन्ननुरागिणोऽवरागिणो वेति।

सत्त्रिणो द्वन्द्विनस्तीर्थसभाशालापूगजनसमवायेषु विवादं कुर्युः— सर्वगुणसम्पन्नश्चायं राजा श्रूयते। न चास्य कश्चिद् गुणो दृश्यते यः पौरजानपदान् दण्डकराभ्यां पीडयति इति॥ २॥

अनुवाद—सत्री नामक गुप्तचर पहले आपस में, फिर तीर्थस्थानों, सभाओं, विभिन्न दूकानों, कर्मचारियों के बीच तथा नाना प्रकार के लोगों में ऐसा विवाद करें कि यह राजा सर्वगुण-सम्पन्न सुना जाता है, किन्तु इसमें कोई सद्गुण नहीं दिखाई दे रहा है, यह तो जनपद के निवासियों को दण्ड देकर एवं कर लगाकर पीड़ा पहुँचा रहा है।

संस्कृत-व्याख्या—सत्रिणः = गूढस्त्रीपुरुषाः, द्वन्द्विनः = परस्परं कलहायमानाः सन्तः, तीर्थसभाशालापूगजनसमवायेषु = नद्यादितीर्थेषु ब्राह्मणदिसभासु अन्नपानीयादिशालासु पूगजनसमवायेषु कर्मकरवृन्देषु नानाजातीयजनसमूहेषु च, विवादम् = विरुद्धं वादम्, कुर्युः = सम्पादयेयुः, अयं राजा = नृपः, सर्वगुणसम्पन्नः = गुणगणमण्डितः, श्रूयते, परं चास्य कश्चिद्गुणः = प्रजारंजनरूपगुणः, न दृश्यते = नावलोक्यते, चः = राजा, पौरजानपदान् = नगरजनपदवास्तव्यान् प्रजाजनान्, दण्डकराभ्याम् = दण्डप्रदानेन करग्रहणेन च, पीडयति = तुदति, इति।

तत्र येऽनुप्रशंसेयुः, तानितरस्तं च प्रतिषेधयेत्—मात्स्यन्यायाभिभूताः प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं चक्रिरे। धान्यषड्भागं पण्यदशभागं हिरण्यं चास्य भागधेयं प्रकल्पयामासुः। तेन भृता राजानः प्रजानां योगक्षेमवहाः। तेषां किल्विषं दण्डकरा हरन्ति, योगक्षेमवहाश्च प्रजानाम्। तस्मादुञ्छषड्भागमारण्यका अपि

निवपन्ति—तस्यैतद् भागधेयं योऽस्मान् गोपायतीति। इन्द्रयमस्थानमेतद् राजानः प्रत्यक्षहेडप्रसादाः। तानवमन्यमानं दैवोऽपि दण्डः स्पृशति। तस्माद् राजानो वावमन्तव्याः इति क्षुद्रकान् प्रतिषेधयेत्॥ ३॥

अनुवाद—वहाँ पर इस (गुप्तचर की बात) का जो अनुमोदन करें, उन्हें और उस गुप्तचर को दूसरा गुप्तचर रोकते हुए कहे—मात्स्य-न्याय से पीड़ित प्रजा ने विवस्वान् के पुत्र मनु को अपना राजा बनाया। तभी से कृषि-उपज का छठा भाग, व्यापार की आय का दसवाँ भाग तथा कुछ स्वर्ण कर रूप में राजा का भाग नियत कर लिया। उस हिस्से को प्राप्त करके राजा प्रजाओं के योगक्षेम का भार वहन करते हुए तथा कर दण्ड के उत्पीडनों एवं दुर्गुणों को नष्ट करते हुए उनका योगक्षेम का सम्पादन करते हैं। इसलिए जंगलों में निवास करने वाले ऋषि-मुनि भी दाना-दाना करके एकत्रित अन्न का छठा भाग राजा को देते हैं कि यह उसका सनातन हिस्सा है जिसके बदले वह हमारी रक्षा करता है। इन्द्र और यम के समान ये राजा लोग प्रत्यक्ष रूप से निग्रह और अनुग्रह करने वाले होते हैं। इसका अनादर करने वाले लोगों को दैवी विपत्तियाँ भी आ जाती हैं। यह सोचकर राजाओं का अपमान नहीं करना चाहिए, इत्यादि कथनों से वह निन्दा करने वाले सामान्य लोगों को रोक दे।

संस्कृत-व्याख्या—तत्र = तीर्थादिषु, ये अनुप्रशंसेयुः = ये जनाः गुप्तचराश्चापि, यथोक्तराजनिन्दामुचितं कथयेयुः, तान् = जनान्, तं च = गुप्तचरं च, इतरः = सत्रिषु अन्यतमः, प्रतिषेधयेत् = वारयेत्, स कथयेत्—पुरा मात्स्यन्यायाभिभूताः = महामत्स्यो लघुमत्स्यान् भक्षयतीति निर्बलान् बलशाली पीडयतीति परम्परया दुखिताः, प्रजाः = जनाः, मनुं वैवस्वतम् = मनुनामानं विवस्वतः सुतम्, राजानं चक्रिरे = स्वस्य राजा कृतवन्तः। अस्य = राज्ञः, धान्यषड्भागम् = धान्यस्य षष्ठांशम्, पण्यदशभागम् = पण्यादीनां वस्त्रादीनां विक्रयद्रव्याणां दशमांशम्, हिरण्यं च = स्वर्णमपि, भागधेयम् = अंशम्, प्रकल्पयामासुः = नियतं चक्रुः। तेन भृताः = यथोक्तभागधेयरूपभृतिग्राहिणः सन्तः, राजानः = नृपाः, प्रजानां योगक्षेमवहाः = पौरजानपदानां योगक्षेमवहनतत्पराः, तेषां दण्डकराः = राजभिः प्रजासु प्रयुज्यमाना दण्डाः प्रजाभ्यो गृह्यमाणाः कराश्च, प्रजानाम् = जनानाम्, किल्विषम् = पापम्, हरन्ति, योगक्षेमवहाश्च = योगक्षेमसाधकाश्च भवन्ति। तस्मात् = कराणां रक्षाभृतिरूपत्वात्, आरण्यकाः = ऋषयोऽपि, उञ्छषड्भागम् = कणश आत्तस्य धान्यादेः षष्ठांशम्, यः अस्मान् गोपायति = रक्षति, तस्यैतद् भागधेयम् = अंशम् इति विचार्य निवपन्ति = वितरन्ति। राजानः = नृपाः, प्रत्यक्षहेडप्रसादाः = प्रत्यक्षनिग्रहानुग्रहाः, एतद् इन्द्रयमस्थानम् = इन्द्रयमस्थानभूताः सन्ति। तान् = नृपान्, अवमन्यमानम् = अनादरकृतवन्तम्, दैवोऽपि = दैव्यापत्तिरपि, दण्डः स्पृशति = दण्डयति। तस्मात् कारणात्,

राजानो नावमन्तव्याः = नैव अनादरणीयाः, इति = इत्थम्, क्षुद्रकान् = निम्नजनान् प्रतिषेधयेत् = निवारयेत्।

विशेष—इसमें निर्देश दिया गया है कि सत्री नामक गुप्तचर पहले तो आपस में किसी बात पर विवाद करते हुए झगड़ पड़ें और धार्मिक स्थानों पर, महापुरुषों एवं साधारण जनों की सभाओं, भोजन-पान की दूकानों पर तथा लोगों की भीड़ में इस प्रकार राजा की शक्ति एवं कर्त्तव्य आदि के विषय में कहें। एक गुप्तचर दूसरे गुप्तचर को समझाते या रोकते हुए उक्त प्रकार से प्रचार करें।

किंवदन्तीं च विद्युः ॥ ४॥

अनुवाद—गुप्तचर लोग किंवदन्तियों (अफवाहों) को भी जानें।

संस्कृत-व्याख्या—सत्रिणः किंवदन्तीम् = जनश्रुतिं च, विद्युः = जानीयुः।

विशेष—गुप्तचरों के लिए यह आवश्यक है कि वे प्रजा में फैली अफवाओं को निरर्थक न समझें तथा उन पर अच्छी तरह से ध्यान दें। यदि सत्य हों तो उनका निराकरण करने का प्रयास करें।

ये चास्य धान्यपशुहिरण्यान्याजीवन्ति, तैरुपकुर्वन्ति व्यसने अभ्युदये वा, कुपितं बन्धुं राष्ट्रं वा व्यावर्तयन्ति, अमित्रमाटविकं वा प्रतिषेधयन्ति, तेषां मुण्डजटिलव्यञ्जनास्तुष्टातुष्टत्वं विद्युः॥ ५॥

अनुवाद—जो लोग धान्य, पशु, हिरण्य आदि से राजा की सेवा करते हैं, विपत्ति तथा अभ्युदय में इसकी सहायता करते हैं, राजा के प्रति क्रुद्ध बान्धवों या राष्ट्र को क्रोध करने से रोकते हैं, शत्रु एवं जंगलों में रहने वाले वनपाल को शत्रुभाव से रोकते हैं; उनकी प्रसन्नता और क्रोध पर भी मुण्ड एवं जटिल गुप्तचर निगाह रखें।

संस्कृत-व्याख्या—ये = जनाश्च, अस्य = राज्ञः, धान्यपशुहिरण्यानि = धान्यादिकं वस्तुजातं प्रदाय, आजीवन्ति = उपजीवन्ति, तैः = धान्यादिभिः, व्यसने = विपत्तौ, अभ्युदये = अभ्युन्नतौ वा, उपकुर्वन्ति, कुपितम् = क्रुद्धम्, बन्धुं राष्ट्रं च व्यावर्तयन्ति = कोपान्निरवर्तयन्ति, ये वा अमित्रम् = शत्रुम्, आटविकम् = अटवीपालम्, प्रतिषेधयन्ति = शत्रुभावाद् वारयन्ति, तेषाम् = उक्तविधानां जनानाम्, तुष्टातुष्टत्वम् = प्रसन्नता-क्रोपभावत्वम्, मुण्डजटिलव्यञ्जनाः = मुण्डजटिलवेषा गुप्तचराः, विद्युः = जानीयुः।

तुष्टान् भूयः पूजयेत्। अतुष्टांस्तुष्टिहेतोस्त्यागेन साम्ना च प्रसादयेत्। परस्पराद्वा भेदयेदेनान् सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धेभ्यश्च। तथाप्यतुष्यतो दण्डकरसाधनाधिकारेण वा जनपदविद्वेषं ग्राहयेत्। विद्विष्टानुपांशुदण्डेन जनपदकोपेन वा साधयेत्। गुप्तपुत्रदारानाकरकर्मान्तेषु वा वासयेत् परेषामास्पदभयात्॥ ६॥

अनुवाद—सन्तुष्ट लोगों को धन और सम्मान द्वारा सन्तुष्ट करें। असन्तुष्ट लोगों की सन्तुष्टि के लिए धन से तथा सान्त्वना देने से प्रसन्न करें। अथवा असन्तुष्ट लोगों में आपसी कलह करा दें एवं सामन्त, आटविक और उनके सम्बन्धियों में फूट डलवा दें। फिर भी वे असन्तुष्ट रहें तो दण्ड सम्बन्धी या कर सम्बन्धी अधिकारों द्वारा (राजा) सम्पूर्ण राष्ट्र के साथ उनका द्वेष करा दे। लोगों के द्वेष के पात्र होने पर उपांशुदण्ड द्वारा अथवा जनपद के क्रोध के द्वारा उनका दमन करा दे। (अन्य उपाय यह भी है कि) इन असन्तुष्ट लोगों के पुत्र-पत्नी आदि को गुप्त रूप से खान के कामों में लगा दे, अन्यथा उनका शत्रुओं से मिल जाने का भय रहता है।

संस्कृत-व्याख्या—तुष्टान् = सन्तुष्टजनान्, भूयः = पुनः धनसम्मानादिना, पूजयेत् = सत्कुर्यात्। अतुष्टान् = अतुष्टजनान्, तुष्टिहेतोः = तुष्ट्यर्थम्, त्यागेन = अर्थदानेन, साम्ना = सान्त्ववादेन च, प्रसादयेत्। एनान् = अतुष्टान् वा, परस्पराद् भेदयेत् = मिथः कलहयुक्तं कुर्यात्, सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धेभ्यः = सामन्ताटविकानां तत्कुलीनावरुद्धेभ्यः, च = मा उपजापं कार्षुदिति भेदयेत्। तथापि = भेदेनापि, अतुष्यतः = आजर्वमप्रतिपद्यमानान्, दण्डकरसाधनाधिकारेण = दण्डदानेन करसाधनाधिकारेण वा, जनपदविद्वेषम् = जानपदविरोधम्, ग्राहयेत् = कारयेत्। विद्विष्टान् = प्राप्तजनपदविद्वेषान् तान्ः, उपांशुदण्डेन = रहोघातेन, जनपदकोपेन = जनपदवासिनां क्रोधेन, वा, साधयेत् = दमयेत्। किञ्च परेषाम् = शत्रुपक्ष्याणाम्, आस्पदभयात् = आश्रयग्रहणभयात्, गुप्तपुत्रदारान् = गुप्तरूपेण तेषां पुत्रदारान् स्वयमङ्गीकृत्य, आकरकर्मान्तेषु = खनिकर्मस्थानेषु वासयेत् = व्यापारयेत् संस्थापयेद् वा।

विशेष—यहाँ तक गुप्तचरों की कार्य-प्रणाली एवं व्यवहार-शैली का वर्णन किया गया है। गुप्तचर असन्तुष्टों को सन्तुष्ट कराने का प्रयास करें, परन्तु उनके फिर भी असन्तुष्ट रहने से राजा द्वारा उन्हें उपांशुदण्ड (गुप्त उपायों से चुपचाप मरवा डालना) दिला दें। अथवा उनके प्रति जनपद में विद्वेष करवाकर अपने रास्ते से हटा दें।

क्रुद्धलुब्धभीतावमानिनस्तु परेषां कृत्याः। तेषां कार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकव्यञ्जनाः परस्पराभिसम्बन्धम् अमित्रप्रतिसम्बन्धं वा विद्युः॥ ७॥

अनुवाद—क्रोधी, लोभी, डरपोक और अपमानित लोग सहज ही शत्रु के वश में हो जाते हैं। कार्यान्तिक (दैव या पूर्वकर्मों का ज्ञाता), नैमित्तिक (शुभाशुभ शकुनों का ज्ञाता) तथा मौहूर्तिक (भूत, भविष्य एवं वर्तमान काल के वृत्तान्त को जानने वाला) के वेष में रहने वाले गुप्तचर उन क्रुद्ध आदि लोगों के आपस के सम्बन्धों को, शत्रुओं के साथ किये गये सम्बन्ध को तथा आटविक के साथ किये गये सम्बन्ध को जानें।

संस्कृत-व्याख्या—तु = किन्तु क्रुद्धलुब्धभीतावमानिनः = क्रुद्धाः लुब्धाः भीताश्च अवमानिनश्च जनाः, परेषाम् = शत्रूणाम्, कृत्याः = साध्या भेद्या वा भवन्ति। अतस्ते

अकृत्याः शत्रुभिरभेद्याः कर्त्तव्याः। तेषाम् = क्रुद्धादीनाम्, कार्यान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकव्यञ्जनाः = कार्यान्तिकाः कृतान्तो दैवं पूर्वकर्म तद्वेदिनः नैमित्तिकाः शुभाशुभशकुनज्ञाः मौहूर्तिकाः त्रिकालवृत्तज्ञाश्च तद्व्यञ्जनाः = तत्स्वरूपवेषवन्तो गुप्तचराः, परस्पराभिसम्बन्धम् = अन्योन्यसम्बन्धम्, अमित्रप्रतिसम्बन्धम् = शत्रुसम्बन्धम्, वा = च, विद्युः = जानीयुः।

तुष्टानर्थमानाभ्यां पूजयेत्। अतुष्टान् सामदानभेददण्डैः साधयेत्॥ ८॥

अनुवाद—सन्तुष्ट लोगों को धन और सम्मान द्वारा पुनः सत्कृत करना चाहिए। असन्तुष्ट व्यक्तियों को साम, दान, भेद और दण्ड से (इन चारों उपायों में से किसी से भी या सभी से) वश में करना चाहिए।

संस्कृत-व्याख्या—तुष्टान् = राज्ञि प्रीतिमतः, अकृत्यपक्ष्यान् जनान्, अर्थमानाभ्याम् = बारं बारं पुनरपि वा धनमानादिभिः, पूजयेत् = सत्कुर्यात्। अतुष्टान् = सन्तोषरहितान् कृत्यान् जनान्, सामदानभेददण्डैः = साम्ना दानेन भेदेन दण्डेन च, येन केनाप्युपायेन वा, साधयेत् = दमयेत्।

विशेष—कृत्यपक्ष का आशय है जो शत्रु के वश में हो सकते हैं- ऐसे लोग, अकृत्यपक्ष का आशय है जिन्हें शत्रु अपने वश में नहीं कर सकते, अर्थात् जो घनिष्ठ मित्र हैं। यहाँ पर आचार्य कौटिल्य ने निर्देश दिया है कि राजा अपने राज्य या अपने देश में स्थित कृत्य-अकृत्य पक्ष का विवेचन कर इन सभी को शत्रुओं के उपजाप से सुरक्षित रखे, अर्थात् गुप्तचरों की सहायता से कृत्याकृत्यपक्ष का रक्षण करे।

एवं स्वविषये कृत्यानकृत्यांश्च विचक्षणः।
परोपजापात् संरक्षेत् प्रधानान् क्षुद्रकानपि॥ ९॥

अनुवाद—इस प्रकार बुद्धिमान् राजा को चाहिए कि वह अपने राज्य के छोटे-बड़े (प्रधान या क्षुद्र) कृत्य एवं अकृत्य लोगों को किसी भी प्रकार शत्रु के पक्ष में जाने से रोके।

संस्कृत-व्याख्या—एवम् = उक्तप्रकारेण, विचक्षणः = नीतिज्ञो नृपः, स्वविषये = स्वराज्ये, कृत्यानकृत्यान् = असन्तुष्टान् सन्तुष्टान्, च, प्रधानान् = मुख्यान्, क्षुद्रकान् = अमुख्यान् लघुजनान्, आपि, परोपजापात् = शत्रूणामुपजापात्, संरक्षेत् = संरक्षणं कुर्यात्।

विशेष—राजा के अपने राज्य में या अपने देश में कृत्य-अकृत्य को शत्रुओं के बहकावे में जाने से रोकने के समस्त उपाय करने चाहिए। विशेषतः कृत्यों पर नजर रखनी चाहिए।

॥ इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे स्वविषये कृत्याकृत्यपक्षरक्षणं त्रयोदशोऽध्यायः॥

❑❑❑

चतुर्दशोऽध्यायः

दशमं प्रकरणम्—परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः

कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः स्वविषये व्याख्यातः परविषये वाच्यः ॥ १ ॥

अनुवाद—अपने देश में कृत्य एवं अकृत्य पक्ष का उपजापादि से संग्रह बता दिया गया है, अब शत्रुदेश में कृत्याकृत्यपक्ष विवेचनीय है।

संस्कृत-व्याख्या—स्वविषये = स्वदेशे, कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः, कृत्यपक्षस्य असन्तुष्टवर्गश्च अकृत्यपक्षस्य तुष्टवर्गस्य च उपग्रहः = उपजापादिना संग्रहः स्वायत्तीकरणम्, व्याख्यातः = पूर्वमेव विवेचितः, अत्र परविषये = शत्रुदेशे वाच्यः = कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः विवेच्योऽस्ति।

संश्रुत्यार्थान् विप्रलब्धः, तुल्यकारिणोः शिल्पे वोपकारे वा विमानितः, वल्लभावरुद्धः, समाहूय पराजितः, प्रवासोपतप्तः, कृत्वा व्ययमलब्धकार्यः, स्वधर्माद् दायाद्याद् वोपरुद्धः, मानाधिकाराभ्यां भ्रष्टः, कुल्यैरन्तर्हितः, प्रसभाभिमृष्टस्त्रीकः, काराभिन्यस्तः, परोक्तदण्डितः, मिथ्याचारवारितः, सर्वस्वमाहारितः, बन्धनपरिक्लिष्टः, प्रवासितबन्धुरिति क्रुद्धवर्गः ॥ २ ॥

अनुवाद—धन देने की प्रतिज्ञा करके जिसको धन न दिया गया हो, समान रूप से कार्य करने वाले शिल्पकार या उपकारी व्यक्ति में से एक का अनादर किया गया हो, विश्वस्त कर्मचारियों ने जिसे राजभवन में प्रवेश करने से रोक दिया हो, जिसे बुलाकर अपमानित कर दिया हो, प्रवास के दण्ड से दुःखित, व्यय करने पर भी अभीष्टकार्य पूरा (फलप्राप्ति) न हो, जिसे अपने धर्म से या उत्तराधिकार से रोक दिया गया हो, सम्मानित तथा अधिकारपूर्ण पद से जिसे च्युत किया गया हो, राजपुरुषों द्वारा जिसे बदनाम किया गया हो, बलपूर्वक जिसकी स्त्री को छीन लिया गया हो, जिसे जेल में डाल दिया गया हो, दूसरे के कहने मात्र से जिसे दण्ड दिया गया हो, झूठे आरोप लगाकर जिस पर प्रतिबन्ध लगा दिया हो, जिसका सर्वस्व छीन लिया गया हो, अशक्त कार्यों में लगाकर जिसे पीड़ित किया गया हो और जिसके बन्धुओं को देश से निकाल दिया गया हो, ऐसे लोग 'क्रुद्ध वर्ग' कहलाते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—अर्थान् = धनानि, संश्रुत्य = ददामीति प्रतिज्ञाय, विप्रलब्धः, तददानेन वञ्चितः, शिल्पे उपकारे वा, तुल्यकारिणोः = समानं कर्मकृतवतोर्मध्ये, विमानि = एकोऽभिनन्दितः, वल्लभावरुद्धः = राज्ञः परमाप्तसेवकैः प्रतिषिद्धराजकुलप्रवेशः, सम्

= समाकार्य, पराजितः = तिरस्कृतः, प्रवासोपतप्तः = स्वदेशनिर्वासनात् पीडितो दुःखितो वा, व्ययं कृत्वा = कार्यसम्पादनार्थं राजपुरुषेभ्य उत्कोचं दत्त्वाऽपि, अलब्धकार्यः अलब्धप्रयोजनः, स्वधर्माद् दायाद्यात् = धर्माचरणात् प्राप्तोत्तराधिकाराद् वा, उपरुद्धः = प्रतिषिद्धः, मानाधिकाराभ्याम् = मानः छत्रान्दोलिकादिः परिच्छदबहुमानः अधिकारः समाहर्तृसन्निधातृप्रभृतिनियोगः, ताभ्याम्, भ्रष्टः = प्रच्यावितः, कुल्यैः = कुलभवैः राजपुरुषैः, अन्तर्हितः = दोषारोपादप्रकाशं गतः, प्रसभाभिमृष्टस्त्रीकः = बलात्कारधर्षितदारः, काराभिन्यस्तः = कारायां बन्दीकृतः, परोक्तदण्डितः = अविचार्यैव परवंचनप्रत्ययमात्रेण विहितदण्डः, मिथ्याचारवारितः = मिथ्यारोपात्, वारितः प्रतिबन्धितः, सर्वस्वम् = धनादिकं सर्वमपि, आहारितः = स्वायत्तीकृतः, बन्धनपरिक्लिष्टः = बन्धनेन अयथार्थनियन्त्रया परिक्लिष्टः पीडितः, प्रवासितबन्धुः = प्रवासितः स्वदेशनिष्कासितः बन्धुः पुत्रादिर्यस्य सः, इति = एवञ्जातीयः, क्रुद्धवर्गः (कृत्यवर्गः) कथ्यते।

विशेष—पूर्व के अध्याय में क्रुद्ध, लुब्ध, भयभीत एवं अवमानित ये चार कृत्य व्यक्ति बतलाये गये हैं। ये कृत्य व्यक्ति शत्रुओं के द्वारा आसानी से अपने वश में कर लिये जाते हैं। अतएव राजा को इनकी पहचान कर निगरानी रखनी चाहिए। यहाँ क्रुद्ध-वर्ग के व्यक्तियों की पहचान बतायी गई है।

स्वयमुपहतः, विप्रकृतः, पापकर्माभिख्यातः, तुल्यदोषदण्डेनोद्विग्नः,
त्तभूमिः, दण्डेनोपहतः, सर्वाधिकरणस्थः, सहसोपचितार्थः,
नीनोपाशंसुः प्रद्विष्टो राज्ञा, राजद्वेषी चेति भीतवर्गः॥ ३॥

वाद—जो स्वयं (लोभवश) किसी की हिंसा करके दूसित हुआ हो, राजा के
करने वाला हो, पापपूर्ण कर्म करने से कुख्यात हो, अपने समान अपराधी को
खकर जो घबरा गया हो, भूमि का अपहरण करने वाला, जो दण्ड के द्वारा
हो; सभी राजकीय विभागों पर जिसका अधिकार हो, अपनी कार्यक्षमता
न एकत्र कर लिया हो, जो राजा के किसी वंशज हिस्सेदार के निकट
हो, जिससे राजा शत्रुता रखता हो और जो राजा से शत्रुता रखता
लोग 'भीतवर्ग' कहलाते हैं।

स्वयम् = धनार्थं स्वकृतेन परमारणादिकर्मणा, उपहतः = दूषितः,
रम्भः, पापकर्माभिख्यातः = ब्रह्माहत्यादिपापकर्माभिशप्तः,
ऽन्यस्मिन् दण्डप्रयोगं दृष्ट्वा, उद्विग्नः = भीतः, पर्यात्तभूमिः
कर्शितः, सर्वाधिकरणस्थः = सर्वेषु राजकीयविभागेषु
सा अकस्मात् साहसेन वा, उपचितार्थः = वर्धितधनः,
दायादम्, उपाशंसुः कामुकः, राज्ञा = नृपेण, प्रद्विष्टः
षयुक्तश्च, इति = एवंविधः, भीतवर्गः कथ्यते।

विशेष—भीतवर्ग के लोग धन के लालच में हिंसा आदि करते हैं, परन्तु वे भयभीत भी रहते हैं। कभी-कभी राजा धन देकर उनसे नृशंस कर्म करवा देता है, इस कारण भी वे भयभीत रहते हैं। राजा को ऐसी आशंका भी रहती है कि ये धन-लालच में शत्रुपक्ष से भी मिल सकते हैं। अपने ही समान दूषित या नृशंस कर्म करने वाले को दण्डित होते देखकर ये घबरा जाते हैं कि मुझे भी ऐसा दण्ड मिल सकता है। इस तरह के लोगों की पहचान करके राजा को उनसे सावधान रहना चाहिए। भीतवर्ग के लोग सरलता से शत्रुपक्ष में मिल सकते हैं।

परीक्षीणोऽत्यात्तस्वः कदर्यो व्यसन्यत्याहितव्यवहारश्चेति लुब्धवर्गः ॥ ४ ॥

अनुवाद—जिसका सब धन-वैभव नष्ट हो गया हो, जो कंजूस, व्यसनी और अपव्ययी हो, ऐसा व्यक्ति 'लुब्ध वर्ग' में आता है।

संस्कृत-व्याख्या—परिक्षीणः = विनष्टसर्ववैभवः, अत्यात्तस्वः = अत्यात्तं राज्ञा दण्डकररूपतयातिमात्रं गृहीतं स्वं धनं यस्य सः, कदर्यः = कृपणः, व्यसनी = मद्यपानादिव्यसनवान्, अत्याहितव्यवहारः = अतिमात्रधनव्ययकर्त्ता च, इति - एवंविधः, लुब्धवर्गः = कृत्यपक्षीयो मन्यते।

आत्मसम्भावितो मानकामः शत्रुपूजामर्षितो नीचैरुपहितस्तीक्ष्णः साहसिको भोगेनासन्तुष्ट इति मानिवर्गः ॥ ५ ॥

अनुवाद—अपने को महान् समझने वाला, सम्मान की इच्छा रखने वाला, शत्रु के सम्मान को सहन न करने वाला, नीच लोगों द्वारा प्रशंसित, तीक्ष्ण प्रकृति, साहसी और भोग्य-पदार्थों से कभी सन्तुष्ट न होने वाला वर्ग ही 'मानीवर्ग' कहलाता है।

संस्कृतव्याख्या—आत्मसम्भावितः = अहमतीव विद्वान् शूर इति, मानकामः = धनमवधीर्य पूजामात्राभिलाषी, शत्रुपूजामर्षितः = अनेन मम शत्रुः पूजित इति प्राप्तामर्षः, नीचैः = दुर्जनैः, उपहितः = कार्येऽभिनिवेशितः प्रशंसितो वा, तीक्ष्णः = तीक्ष्णप्रकृतिः साहसिकः = साहसयुक्तः, भोगेन = भोग्यपदार्थानामास्वादेन, असन्तुष्टः = तृप्तिमप्राप्तः, इति = एवञ्जातीयः, मानिवर्गः मन्यते।

विशेष—मानी वर्ग के लोग थोड़ा-सा आदर-सत्कार पाने से किसी भी पक्ष में जा सकते हैं। प्रखर स्वभाव के एवं सम्मान के इच्छुक ऐसे लोगों से राजा को सावधान रहना चाहिए और उन्हें अपने पक्ष में कर लेना चाहिए।

तेषां मुण्डजटिलव्यञ्जनैर्यो यद्भक्तिः कृत्यपक्षीयस्तं तेनोपजापयेत्॥ ६ ॥

अनुवाद—उन (क्रुद्ध, लुब्ध, भीत और अवमानित) कृत्यपक्ष के लोगों में से मुण्ड या जटिल गुप्तचर के जो भक्त हो, उन्हें वही गुप्तचर अपने वश में करे।

संस्कृत-व्याख्या—तेषाम् = क्रुद्धलुब्धादीनां मध्ये, कृत्यपक्षीयो यः = जनः, यद्भक्तिः = श्रद्धायुक्तः स्यात्, तमेव, मुण्डजटिलव्यञ्जनैः = एवंप्रकारैः गूढपुरुषैः, तेन = दानादिना उपायेन, उपजापयेत् = स्ववशं कुर्यात्।

यथा मदान्धो हस्ती मत्तेनाधिष्ठितो यद्यदासादयति तत् सर्वं प्रमृद्गात्येवमयमशास्त्रचक्षुरन्धो राजाऽन्धेन मन्त्रिणाऽधिष्ठितः, पौरजानपद-वधायाभ्युत्थितः। शक्यमस्य प्रतिहस्तिप्रोत्साहनेनापकर्तुम्। अमर्षः क्रियताम्-इति क्रुद्धवर्गमुपजापयेत्॥ ७॥

अनुवाद—(गुप्तचर क्रुद्धवर्ग के लोगों में फूट डालने के लिए कहे कि) जैसे उन्मत्त पीलवान के द्वारा चलाया गया मतवाला हाथी अपने सामने जिसे भी देखता है, उसे कुचल डालता है, उसी प्रकार शास्त्ररूपी नेत्र से हीन यह राजा अन्धे मन्त्री के साथ रहता हुआ राष्ट्र और प्रजा को नष्ट करने के लिए उद्यत है। (ऐसी दशा में) प्रतिपक्ष के लोगों को उभाड़ देने से इसका अपकार किया जा सकता है। अतः इस पर क्रोध करो। इस प्रकार क्रुद्धवर्ग को राजा से फोड़ डाले।

संस्कृत-व्याख्या—यथा मत्तेन = प्रमादयुक्तेन, अधिष्ठितः = हस्तिपकेन नियम्यमानः, मदान्धः = मदमस्तः, हस्ती = गजः, यद् यद् आसादयति = मार्गे यं यं दृष्टिविषयं करोति, तत्सर्वम्, प्रमृद्गाति = नाशयति, एवम् = अनेन प्रकारेण, अयमशास्त्रचक्षुः = शास्त्रनेत्ररहितः, अन्धो राजा, अन्धेन = अज्ञानिना, मन्त्रिणा अधिष्ठितः = तेन संयुक्तः, पौरजानपदवधाय = पौराणां जानपदानां सर्वेषां राष्ट्रनगरवासिप्रजानां विनाशाय, अभ्युत्थितः = उद्युक्तो भवति। अस्य = राज्ञः प्रतिहस्तिप्रोत्साहनेन = प्रतिपक्षीयोत्साहजननेन, अपाकर्तुं शक्यम् = अपकारः कर्तुं शक्यते। अतोऽस्मिन् अमर्षः = प्रकोपः, क्रियताम् = विधीयताम्, इति = अनेन प्रकारेण, क्रुद्धवर्गम् उपजापयेत् = भेदयेत्।

विशेष—इसमें क्रुद्धवर्ग के लोगों को गुप्तचरों के द्वारा राजा से अलग करने की युक्ति निर्दिष्ट की गई है।

यथा लीनः सर्पो यस्माद् भयं पश्यति तत्र विषमुत्सृजत्येवमयं राजा जातदोषाशङ्कस्त्वयि पुरा क्रोधविषमुत्सृजति। अन्यत्र गम्यताम्-इति भीतवर्गमुपजापयेत्॥ ८॥

अनुवाद—(भीतवर्ग को वश में करने के लिए गुप्तचर ऐसा कहे कि) जैसे डरा हुआ साँप जिससे भय खाता है, उसी पर अपना विष उगल देता है, उसी प्रकार यह राजा भी तुमसे शंकित है और सर्वप्रथम यह तुम्हारे ऊपर क्रोधरूपी विष उगलने वाला है। इसलिए यहाँ से अन्यत्र चले जाओ - ऐसा कहकर भीतवर्ग का भेदन करे।

संस्कृत-व्याख्या—यथा लीनः सर्पः = भययुक्तो व्यालः यस्मादात्मनो भयम् = भीतिम्, पश्यति = विलोकयति, आशंकते वा, तत्र सः, विषम् = गरलं स्वकीयम्, उत्सृजति = उत्क्षिपति, एवम् = अनेन प्रकारेण, अयं राजा, पुरा जातदोषाशङ्कः =

पूर्वमुत्पन्नदोषवितर्कः, त्वयि क्रोधविषम् = कोपगरलम्, उत्सृजति = उद्गीर्णं करिष्यति, तस्मात्त्वमन्यत्र = अन्यं राजानमाश्रयं वा, गम्यताम् = प्रयाहि। इति = एवंप्रकारेण, भीतवर्गम्, उपजापयेत् = भेदयेत्।

यथा श्वगणिनां धेनुः श्वभ्यो दुग्धे न ब्राह्मणेभ्यः एवमयं राजा सत्त्वप्रज्ञावाक्यशक्तिहीनेभ्यो दुग्धे नात्मगुणसम्पन्नेभ्यः। असौ राजा पुरुष विशेषज्ञः सेव्यताम्—इति लुब्धवर्गमुपजापयेत्॥ ९॥

अनुवाद—(लुब्धवर्ग को वश में करने के लिए गुप्तचर कहे कि) जैसे चाण्डालों की गाय चाण्डालों के लिए दूध देती है, ब्राह्मणों के लिए नहीं, उसी प्रकार यह राजा भी बल, बुद्धि और वाक्यशक्ति से हीन लोगों के लिए ही लाभदायक है, आत्मगुणों से सम्पन्न लोगों के लिए नहीं। इसकी अपेक्षा अमुक राजा बड़ा गुणज्ञ है, उसी को आश्रय में रहना चाहिए - ऐसा कहकर लुब्धवर्ग का भेदन करे।

संस्कृत-व्याख्या—यथा श्वगणिनाम् = चाण्डालानाम्, धेनुः = गौः, श्वभ्यः चाण्डालेभ्यः, दुग्धे = क्षीरं स्रावयति, न ब्राह्मणेभ्यः = विप्रजातीयेभ्यः, एवम् = तथैव, अयं राजा, सत्त्वप्रज्ञावाक्यशक्तिहीनेभ्यः = बलबुद्धिवाक्पटुत्वरहितेभ्यः दुग्धे = फलं ददाति, न आत्मगुणसम्पन्नेभ्यः = सर्वगुणसंयुक्तेभ्यो जनेभ्यः। असौ = विप्रकृष्टः, राजा = सामन्तो वा, पुरुषविशेषज्ञः = पुरुषगुणज्ञः, सेव्यताम् = आश्रीयताम्, इति = एवं प्रकारेण, लुब्धवर्गम्, उपजापयेत् = भेदयेत्।

यथा चण्डालोदपानश्चण्डालानामेवोपभोग्यो नान्येषामेवमयं राजा नीचो नीचानामेवोपभोग्यो न त्वद्विधानामार्याणाम्। असौ राजा पुरुषविशेषज्ञः, तत्र गम्यताम्—इति मानिवर्गमुपजापयेत्॥ १०॥

अनुवाद—(मानीवर्ग का भेदन करने के लिए गुप्तचर उससे कहे कि) जैसे चाण्डालों का कुँआ अकेले उन्हीं के लिए उपयोगी है, उसी प्रकार राजा भी नीच लोगों के लिए ही सुखकर है, तुम्हारे जैसे श्रेष्ठ पुरुषों के लिए नहीं। किन्तु वह अमुक नाम का राजा स्वयं गुणी और गुणज्ञों का आदर करने वाला है। तुम्हें उसी के आश्रय में जाकर रहना चाहिए। इस प्रकार मानीवर्ग को उसके स्वामी से अलग करे।

संस्कृत-व्याख्या—यथा चण्डालोदपानः = चण्डालानां कूपः, चण्डालानामेव = श्वगणिनामेव, उपयोग्यः = उपभोगयोग्यः, न अन्येषाम्, एवम् = तथैव, अयं राजा = नृपः, नीचानामेव = निम्नपुरुषाणामेव, उपभोग्यः = सुखकरः, न त्वद्विधानाम् = भवत्सदृशाणाम्, आर्याणाम् = शिष्टजनानाम्। असौ राजा = विप्रकृष्टोऽन्यो वा नृपः सामन्तो वा, पुरुषविशेषज्ञः = पुरुषतारतम्यवेदी वर्तते, अत एव तत्र = तस्य सविधे, गम्यताम् = स्थीयताम्, इति = एवंप्रकारेण, मानिवर्गम्, उपजापयेत् = भेदयेत्।

विशेष—यहाँ तक निर्देश दिया गया है कि क्रुद्ध, भीत, लुब्ध एवं मानी वर्ग के लोगों को राजा गुप्तचर द्वारा फोड़ डाले।

तथेति प्रतिपन्नांस्तान् संहितान् पणकर्मणा।
योजयेत यथाशक्ति सापसर्पान् स्वकर्मसु॥ ११॥

अनुवाद—इस प्रकार अपने पक्ष में किये गये व्यक्तियों को शपथ, सन्धि आदि से विश्वास दिलाकर उन्हें उन्हीं कार्यों में नियुक्त कर दे, जिन पर वे नियुक्त थे, परन्तु उनके पीछे गुप्तचरों को लगा दे।

संस्कृत-व्याख्या—तथेति प्रतिपन्नान् = आज्ञापानुरोधेन परपक्षप्रवेशमङ्गीकृतवतः पणकर्मणा = सत्यशपथादिना, संहितान् = कृतसन्धानान्, तान् = कृत्यान्, सापसर्पान् = चारसहितान् कृत्वा चारदृष्टिपथगामिनो विधाय, यथाशक्ति = योग्यतानुसारम्, स्वकर्मसु = स्वकार्येषु, योजयेत = नियुञ्जीत।

लभेत सामदानाभ्यां कृत्यांश्च परभूमिषु।
अकृत्यान् भेददण्डाभ्यां परदोषांश्च दर्शयेत्॥ १२॥

अनुवाद—राजा शत्रु देश में कृत्य-पक्ष के पुरुषों को साम तथा दान के द्वारा अपनी ओर मिलावे, परन्तु अकृत्य - पक्ष के पुरुष उन्हें भेद तथा दण्ड के द्वारा अपनी ओर करता रहे और उनके सामने या सबके सामने शत्रु के दोषों को दिखाते रहें।

संस्कृत-व्याख्या—परभूमिषु = परकीये जनपदे, कृत्यान् = कृत्यपक्षीयजनान्, सामदानाभ्याम् = सामदामप्रयोगेण, लभेत = साधयेत्, तेषु भेदस्य स्वत एव सिद्धत्वादित्यभिप्रायः। अकृत्यान् = अकृत्यपक्षीयपुरुषान्, भेददण्डाभ्यां लभेत = साधयेत्, परदोषान् = शत्रुपक्षीयदोषान्, च, दर्शयेत् = बोधयेत्, स्फुटतया निर्दिशेत्।

विशेष—आचार्य कौटिल्य ने राजा को कृत्यपक्ष तथा अकृत्यपक्ष के जनों को अपने अनुकूल बनने के लिए गुप्तचरों का जिस तरह उपयोग करना चाहिए, उसका निर्देश दिया है। कृत्यपक्ष के लोगों के लिए साम और दाम प्रयोग करे तथा उन पर गुप्तचरों को सदा निगरानी करने के लिए लगा दे। अकृत्यपक्ष के पुरुषों के लिए केवल भेदनीति का सहारा ले।

॥इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहश्चतुर्दशोऽध्यायः॥

□□□

पञ्चदशोऽध्यायः

एकादशं प्रकरणम्—मन्त्राधिकारः

कृतस्वपक्षपरपक्षोपग्रहः कार्यारम्भांश्चिन्तयेत्। मन्त्रपूर्वाः सर्वारम्भाः॥ १॥

अनुवाद—अपने पक्ष और शत्रु के पक्ष को वश में करने के (सन्धि-विग्रह आदि) कार्यों को प्रारम्भ करने का विचार करना चाहिए। सभी कार्यों को गम्भीर विचार-विनिमय के अनन्तर ही प्रारम्भ करना चाहिए।

संस्कृत-व्याख्या—विजिगीषुणा, कृतस्वपक्षे = दुर्गादीनां स्वविषये, परपक्षे = परविषये शत्रुविषये वा, उपग्रहः = स्वायत्तीकरणविषये सम्बद्धः, कार्यारम्भान् = कार्याणां सन्धिविग्रहादिकर्मणाम्, आरम्भान् चिन्तयेत् = विचारयेत्। मन्त्रपूर्वाः सर्वारम्भाः प्रथमं मन्त्रः, ततश्च कार्यारम्भः, इत्येष क्रमः कर्मसमृद्धिफलो लोके नियतः, तस्माच्च तदर्थं मन्त्रयेत्।

विशेष—१. राजा द्वारा कार्यारम्भ के उपाय आदि का विवेक करना ही 'मन्त्र' कहलाता है। मन्त्र का स्वरूप कैसा हो, इस सम्बन्ध में इस अध्याय में बताया गया है।

२. सम्यग् रूप से मन्त्रणा करने के बाद ही कार्यारम्भ करना फलदायी रहता है।

तदुद्देशः संवृतः कथानामनिःस्रावी पक्षिभिरप्यनालोक्यः स्यात्। श्रूयते हि शुकशारिकाभिर्मन्त्रो भिन्नः श्वभिरन्यैश्च तिर्यग्योनिभिः। तस्मान्मन्त्रोद्देशमनायुक्तो नोपगच्छेत्। उच्छिद्येत मन्त्रभेदी॥ २॥

अनुवाद—मन्त्रणा का स्थान ढका हुआ या चारों ओर से बन्द होना चाहिए, जिससे कोई शब्द भी बाहर न निकल सके तथा पक्षी भी जिसे न देख सकें। क्योंकि सुना जाता है कि पुराकाल में किसी राजा की गुप्त मंत्रणा को तोता और मैना ने सुनकर बाहर प्रकट कर दिया था। इसी प्रकार कुत्ते तथा अन्य पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में भी सुना जाता है। इसलिए राजा की आज्ञा के बिना कोई भी व्यक्ति किसी भी स्थिति में मंत्रणास्थल पर न जावे। यदि गुप्त मन्त्रणा के भेद को कोई फोड़ दे तो तत्काल ही उसका उच्छेद (नाश) करवा देना चाहिए।

संस्कृत-व्याख्या—तदुद्देशः = मन्त्रयोग्यो देशः, संवृतः = सर्वत आवृत्तः, कथानाम् = मन्त्रवचनानाम्, अनिःस्रावी = अन्तः कथ्यमानं बहिः स्थितैर्यथा न श्रूयेत तथा सन्निवेशितः स्यात्, पक्षिभिः = खगैश्चापि, अनालोक्यः = अदृश्यः स्यात्। हि = यतः, श्रूयते =

लोकेऽनुश्रूयते यत्, शुकशारिकाभिः = तन्नामप्रसिद्धपक्षिभिः, मन्त्रः भिन्नः = अन्यसविधे प्रकाशितः, अन्यैश्च श्वभिः = कुक्कुरैः, तिर्यग्योनिभिः = पशुपक्षिभिश्च, मन्त्रः भिन्नः प्रकाशितः। तस्मात् = पूर्वस्मात्कारणात्, अनायुक्तः = राज्ञा मन्त्रकर्मणि अनियुक्तो जनः, मन्त्रोद्देशम् = मन्त्रणास्थलम्, नोपगच्छेत् = नोपसर्पेत्। मन्त्रभेदी = गुप्तमन्त्रस्य प्रकाशनकर्त्ता तद्भेदको वा, उच्छिद्येत = उच्छेदनं कुर्यात्।

विशेष—१. तोता-मैना आदि पक्षी मनुष्य की वाणी का अनुकरण करते हैं। प्राचीनकाल में ऐसी अनेक अनुश्रुतियाँ मिलती हैं कि तोता-मैना द्वारा राजा की गोपनीय चर्चाओं को प्रकट कर दिया था, इस कारण वह गुप्त मन्त्रणा परपक्ष के गुप्तचरों को ज्ञात हो गई थी।

२. मन्त्रणा का स्थान एकदम सुरक्षित तथा सब ओर से आवृत होना चाहिए। मन्त्रभेदी को तत्काल मरवा देना चाहिए।

मन्त्रभेदी हि दूतामात्यस्वामिनामिङ्गिताकाराभ्याम्। इङ्गितमन्यथावृत्तिः। आकृतिग्रहणमाकारः॥ ३॥

अनुवाद—(कभी-कभी बिना कहे ही) दूत, अमात्य तथा राजा के हाव-भाव एवं मुद्रा द्वारा भी गुप्त मन्त्रणा का भेद प्रकट हो जाता है। स्वाभाविक क्रियाओं के विपरीत भिन्न चेष्टाएँ 'इंगित' कहलाती हैं। चेष्टाओं को प्रकट करने वाले अंग 'आकार' या 'आकृति' कहलाते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—हि = यतो हि निश्चयेन, दूतामात्यस्वामिनाम् = सन्देश-हरामात्यनृपाणाम्, इङ्गिताकाराभ्याम् = हावभावमुखमुद्रादिभिः, मन्त्रभेदः = विना वचनेनैव मन्त्रस्य प्रकाशनं भवति। अन्यथावृत्तिः = स्वाभाविकचेष्टितविलक्षणं चेष्टितमिङ्गितम्। आकृतिग्रहणम् = अङ्गसंस्थानं तद्रूपग्रहणं भावसंज्ञानं स्वाभाविकाकृतिविलक्षणमाकारः = आकारो भवति।

विशेष—१. बिना कहे भी केवल भिन्न चेष्टाओं से अथवा अङ्गों के संकेतादि से गुप्त मन्त्रणा का भेद प्रकट हो सकता है। अतएव दूत, अमात्य, राजा आदि को इङ्गित एवं आकृति ऐसी नहीं दिखानी चाहिए जिससे मन्त्रभेद प्रकट हो जावे।

२. चतुर लोग केवल इङ्गित एवं आकार से ही भेद जान लेते हैं। उनसे सावधान रहना चाहिए।

तस्य संवरणम् आयुक्तपुरुषरक्षणमाकार्यकालादिति। तेषां हि प्रमादमदसुप्तप्रलापकामादिरुत्सेकः प्रच्छन्नोऽवमतो वा मन्त्रं भिनत्ति। तस्माद् रक्षेन्मन्त्रम्॥ ४॥

अनुवाद—जब तक विचारित कार्यों के आरम्भ करने का समय नहीं आता, अर्थात् कार्यारम्भ के उचित समय तक राजा, अमात्य या दूत अपने गुप्त भावों को दबाकर रखे। उन अमात्यादि के प्रमाद के कारण, मद्यपान की मदहोशी के कारण, सोते समय प्रलाप करने के कारण, कामवासनाओं से अथवा अभियान से विचार किया गया गुप्त भाव (मन्त्र, रहस्य) समय से पहले खुल जाता है। इसलिए (राजा को सावधानी से) मन्त्र की रक्षा करनी चाहिए।

संस्कृत-व्याख्या—तस्य = इङ्गिताकारादिकस्य, संवरणम् = गोपनं कर्त्तव्यम्, आकार्यकालात् = कार्यसिद्धिकालमभिव्याप्य, आयुक्तपुरुषरक्षणम् = आयुक्तानां पुरुषाणां मन्त्राधिकृतानां दूतमन्त्रिप्रभृतीनां, रक्षणं कर्त्तव्यम्। हि = यतः, तेषाम् = अमात्यादीनाम्, प्रमादमदसुप्तप्रलापकामादिरुत्सेकः = अनवधानमद्यपानस्वप्नालापविषयतृष्णादिसमुदयस्य गर्वः, प्रच्छन्नः = कुड्यन्तरितः श्रोता, अवमतः = मन्त्रणाकालेऽवमानितः, वा = समुच्चये, मन्त्रम् = रहस्यम्, भिनत्ति = निर्णीतमर्थं बहिः प्रकाशयति।

विशेष—१. विजिगीषु राजा को हर उपाय से विचारित गुप्त मन्त्र की सुरक्षा का ध्यान रखना चाहिए।

मन्त्रभेदो ह्ययोगक्षेमकरो राज्ञस्तदायुक्तपुरुषाणां च। तस्माद् गुह्यमेको मन्त्रयेतेति भारद्वाजः। मन्त्रिणामपि हि मन्त्रिणो भवन्ति। तेषामप्यन्ये। सैषा मन्त्रिपरम्परा मन्त्रं भिनत्ति॥ ५॥

अनुवाद—मन्त्र का प्रकट हो जाना राजा और उसके नियुक्त पुरुषों (सलाहकारों) की योग-क्षेम (सुख-सुरक्षा) की हानि करने वाला होता है। इसलिए इस प्रकार की गुप्त मन्त्रणाओं पर राजा अकेले ही विचार करे- ऐसा आचार्य भारद्वाज का मत है। क्योंकि मन्त्रियों के भी अपने सलाहकार होते हैं। उनके भी दूसरे परामर्शदाता होते हैं। इस तरह की मन्त्रियों की परम्परा से मन्त्र (गुप्त बातें) प्रकट हो जाती हैं।

संस्कृत-व्याख्या—मन्त्रभेदः = मन्त्रस्य प्रकाशनम्, हि = निश्चयेन, राज्ञः = नृपस्य, तदायुक्तपुरुषाणां च = तन्नियुक्तजनानां च, अयोगक्षेमः = योगक्षेमस्य विघातको भवति। तस्मात् = मन्त्रभेदप्रकाशनभयात्, एकः = एकाकी राजा, मन्त्रयेत् = विचारयेत्, इति भारद्वाजः = एतन्नामा आचार्यः कथयति। हि = यतः, मन्त्रिणाम् = मन्त्रकर्मणि नियुक्तानां जनानामपि, मन्त्रिणः = परामर्शदातारः, भवन्ति = विद्यन्ते। तेषाम् = परामर्शदातृणामपि, अन्ये = अपरे मन्त्रिणो भवंति। सैषा = एवंप्रकारा, मन्त्रिपरम्परा = मन्त्रिसन्ततिः, मन्त्रम् = गोप्यं विचारितम्, भिनत्ति = प्रकाशयति।

विशेष—१. आचार्य भारद्वाज का मत है कि राजा स्वयं गुप्त कार्यों पर विचार करे और उसे स्वयं तक रखे, तभी मन्त्र की रक्षा हो सकती है।

२. मन्त्रियों के भी सहायक, उन सहायकों के भी सलाहकार आदि का क्रम होने से गुप्त बात का भेद प्रकाशित हो ही जाता है।

तस्मान्नास्य परे विद्युः कर्म किञ्चिच्चिकीर्षितम्।
आरब्धारस्तु जानीयुरारब्धं कृतमेव वा ॥ ६ ॥

अनुवाद—इसलिए गुप्त मन्त्रणाओं को राजा के अतिरिक्त कोई न जानने पावे। केवल कार्यारम्भ करने वाले व्यक्ति ही उसके आभास को जान सकें और उन्हें भी उसका परिणाम कार्य की समाप्ति के बाद ही ज्ञात हो।

संस्कृत-व्याख्या—तस्मात् = मन्त्रभेदप्रसङ्गात्, अस्य = विजिगीषोः नृपस्य, चिकीर्षितम् = कर्तुमिष्टम्, कर्म = कार्यव्यापारम्, परे = अन्ये, न विद्युः = न जानीयुः। तु = किन्तु, आरब्धारः = कर्मानुष्ठानोपक्रमकर्तारः, आरब्धम् = आरभ्यानन्तरम्, जानीयुः = अनुमिनुयुः, वा = अथवा, कृतमेव = कार्यं निष्पन्नमेव, जानीयुः = अवगच्छेयुः।

विशेष—१. यह कथन आचार्य भारद्वाज के मत के अनुसार कहा गया है। विचारित मन्त्र का पता उसके कार्यारम्भ करने से ही दूसरों का पता चले, अथवा कार्य की सम्पन्नता के बाद उस मन्त्र का अनुमान आदि से सभी को पता चले। इस तरह राजा को करणीय कर्म का मन्त्र पूर्णतया सुरक्षित रखना चाहिए।

२. इस मत में राजा को एकाकी मन्त्रणा करने के लिए बताया गया है।

नैकस्य मन्त्रसिद्धिरस्तीति विशालाक्षः। प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया हि राजवृत्तिः। अनुपलब्धस्य ज्ञानमुपलब्धस्य निश्चयबलाधानमर्थद्वैधस्य संशयच्छेदनमेकदेशदृष्टस्य शेषोपलब्धिरिति मन्त्रिसाध्यमेतत्। तस्मात् बुद्धिवृद्धैः सार्धमासीत मन्त्रम् ॥ ७ ॥

अनुवाद—इस सम्बन्ध में आचार्य विशालाक्ष का मत है कि एक ही व्यक्ति द्वारा सोचा-विचारा हुआ मन्त्र सिद्धिदायक नहीं हो सकता। सभी राजकार्य प्रत्यक्ष और परोक्ष दो प्रकार के होते हैं; उनके लिए मन्त्रियों की अपेक्षा होती है। न जाने हुए कार्य को जानना, जाने हुए कार्य का निश्चय करना, निश्चित कार्य को दृढ़ करना, किसी कार्य में सन्देह उत्पन्न हो जाने पर विचार-विमर्श द्वारा उस संशय का निराकरण करना, आंशिक कार्य को पूरी तरह विचारना इत्यादि सभी बातें मन्त्रियों के सहयोग से ही सिद्ध हो सकती हैं। इसलिए राजा को अत्यन्त बुद्धिमान् और पर्याप्त अनुभवी व्यक्तियों के साथ मन्त्रणा या मन्त्र पर विचार करना चाहिए।

संस्कृत-व्याख्या—एकस्य = नृपस्यैव, मन्त्रसिद्धिः = विचारितमन्त्रस्य सिद्धिः, न अस्तीति विशालाक्षः = एतन्नामा आचार्यः कथयति, यतो हि प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया =

प्रत्यक्षपरोक्षेत्यादिवाक्येन राजवृत्तिः = राजकर्मणः सर्वस्य सहायसापेक्षत्वं भवति। अनुपलब्धस्य = अज्ञातस्य, ज्ञानम्, उपलब्धस्य = ज्ञातस्य, निश्चयबलाधानम् = निश्चयेन दृढीकरणम्, अर्थद्वैधस्य = कार्यद्वयस्य संशये, संशयच्छेदनम् = सन्देहनिवर्तनम्, एकदेशदृष्टस्य = अंशेनोपलब्धस्य, शेषोपलब्धिः = समग्ररूपेण सम्प्राप्तिः, इति एतत् = एवञ्जातीयं कार्यम्, मन्त्रिसाध्यम् = मन्त्रिसहयोगेन सिद्धं भवति। तस्मात् = पूर्वोक्तकारणात्, बुद्धिवृद्धैः = बुद्धिप्रशस्तैः सार्धम्, मन्त्रणम् = मन्त्रणा मन्त्रविचारो वा, आसीत = तदुद्दिश्यासीत।

विशेष—१. राजकार्य का सम्पादन अकेला राजा नहीं कर सकता और उसे कार्य में सफलता भी नहीं मिलती है—यह आचार्य विशालाक्ष का मत है। वस्तुतः राजवृत्ति सहायसापेक्ष होती है; मन्त्री, पुरोहित आदि के सहयोग से ही सम्पन्न हो पाती है।

२. 'बुद्धिवृद्ध' का आशय अतीव बुद्धिमान् तथा ज्ञान व अनुभव में वृद्ध व्यक्ति से है।

न कश्चिदवमन्येत सर्वस्य शृणुयान्मतम्।
बालस्याप्यर्थवद् वाक्यमुपयुञ्जीत पण्डितः॥ ८॥

अनुवाद—विद्वान् राजा को चाहिए कि सलाह करते समय वह किसी को अपमानित न करे, सबकी बातों को ध्यानपूर्वक सुने; यहाँ तक कि बालक की भी सागरर्भित बात को ग्रहण करे।

संस्कृत-व्याख्या—पण्डितः = विद्वान् नृपः, कश्चित् = कस्यापि, न अवमन्येत = तिरस्कारं न कुर्यात्, सर्वस्य मतम् = सर्वस्य जनस्य कथनम्, शृणुयात्, बालस्य = अल्पज्ञस्यापि, अर्थवद् वाक्यम् = सारगर्भितं कथनम्, उपयुञ्जीत = स्वीकुर्वीत।

एतन्मन्त्रज्ञानं नैतन्मन्त्ररक्षणमिति पाराशराः। यदस्य कार्यमभिप्रेतं तत्प्रतिरूपकं मन्त्रिणः पृच्छेत्—कार्यमिदमेवमासीदेवं वा यदि भवेत् तत् कथं कर्तव्यमिति। ते यथा ब्रूयुः, तत् कुर्यात्। एवं मन्त्रोपलब्धिः संवृतिश्च भवतीति॥ ९॥

अनुवाद—आचार्य पराशर के मतावलम्बियों का कथन है कि आचार्य विशालाक्ष के उक्त कथन से मन्त्रज्ञान भले ही हो, मन्त्ररक्षण नहीं हो सकता। इसलिए राजा को जिस कार्य के लिए सलाह लेनी हो उस कार्य के समान ही दूसरे कार्य के सम्बन्ध में वह मन्त्रियों से पूछे। राजा किसी ऐतिहासिक घटना का हवाला देकर कहे कि अमुक कार्य इस ढंग से किया गया था; इसी कार्य को यदि इस ढंग से करना होता तो कैसे किया जाना चाहिए था। तब वे मन्त्री जो राय दें उसके अनुसार कार्य को सम्पन्न करे। ऐसा करने से मन्त्र का ज्ञान भी हो जाता है और मन्त्र की रक्षा की।

संस्कृत-व्याख्या—एतत् = विशालाक्षवचनम्, मन्त्रज्ञानम् = तदर्थमेव, एतन्मन्त्ररक्षणम् = गोप्यवचनरक्षणम्, न = न भवति, इति पाराशराः = पराशरशिष्याः प्रत्यवतिष्ठन्ते। अस्य = राज्ञः यत्कार्यम् = यस्य कार्यस्य सम्पादनाय, अभिप्रेतम् = मन्त्रयितुमिष्टम्, तत्प्रतिरूपकम् = तत्प्रतिबिम्बभूतं तत्समानरूपं कार्यम्, मन्त्रिणः पृच्छेत्—इदं कार्यम् = एतत् कर्म पूर्वं केनापि नृपेण, एवमासीत् = एवं साधितं स्यात्, यदि = चेत्, एवं भवेत् = अनेन प्रकारेण निष्पाद्यं चेत्, तत् = कार्यमेतत्, कथं कर्त्तव्यम् = केन प्रकारेणानुष्ठेयमिति। ते = पृष्टाः मन्त्रिणः, यथा ब्रूयुः = यथा कथयेयुः, तत् = तदनुसारं च, कुर्यात् = कार्यमनुतिष्ठेत्। एवम् = अनेन प्रकारेण मन्त्रानुष्ठाने, मन्त्रोपलब्धिः मन्त्रस्य ज्ञानम्, संवृतिः = मन्त्रगोपनं च, भवति = सिध्यतीति।

विशेष—१. राजा मन्त्रणा करने से पूर्व किसी सजा का अथवा किसी ऐतिहासिक घटना का उल्लेख कर कहे कि अमुक ने यह कार्य इस ढंग से किया था, इसका फल ऐसा रहा। यदि यह कार्य इस तरह किया जावे, तो इसका क्या परिणाम रहेगा ? इस तरह की सलाह करके राजा अपने मन्त्रियों की सम्मति प्राप्त कर ले।

२. पराशर के अनुयायी आचार्य विशालाक्ष के मत से सहमत नहीं हैं।

नेति पिशुनः। मन्त्रिणो हि व्यवहितमर्थं वृत्तमवृत्तं वा पृष्टमनादरेण ब्रुवन्ति प्रकाशयन्ति वा। स दोषः। तस्मात् कर्मसु ये येष्वभिप्रेतास्तैः सह मन्त्रयेत्। तैर्मन्त्रयमाणो हि मन्त्रबुद्धिं गुप्तिं च लभत इति॥ १०॥

अनुवाद—आचार्य पिशुन (नारद) इस मत को नहीं मानते हैं, क्योंकि मन्त्री लोग राजा द्वारा पूछे गये पूर्वघटित अथवा अघटित विषय का अनादरपूर्वक उत्तर देते हैं और उस बात को प्रकट भी कर देते हैं। यह मन्त्र के लिए बड़ा दोष है। इसलिए जिन कार्यों में जिन व्यक्तियों को नियुक्त या उपयुक्त समझा गया है, उनके साथ मन्त्रणा करनी चाहिए। ऐसा करने से मन्त्रणा परिमार्जित हो जाती है तथा उसकी सुरक्षा भी हो जाती है।

संस्कृत-व्याख्या—पिशुनः = नारदः नेति = तदुभयमपि न सिध्यतीति कथयति। हि = यतः, मन्त्रिणः, व्यवहितम् = रूपान्तरावच्छादितस्वरूपम्, पृष्टं वृत्तम् = घटितम्, अवृत्तम् = अघटितं वा, अर्थम् = कार्यम्, अनादरेण = अनास्थया, ब्रुवन्ति = कथयन्ति, प्रकाशयन्ति = भिन्दन्ति वा। स दोषः = मन्त्रस्य कृते एतद्व्यवहारः दोष एव। तस्मात् = यथोक्तदोषप्रसङ्गात्, येषु कर्मसु = कार्येषु, ये अभिप्रेताः = मन्त्रणानुष्ठाननिपुणतया विश्वस्ततया चाभिमताः, तैः = मन्त्रिभिः, सह, मन्त्रयेत् = मन्त्रणां कुर्यात्। तैः = मन्त्रिभिः सह, मन्त्रयमाणः = मन्त्रणां कुर्वन् राजा, हि = निश्चयेन, मन्त्रबुद्धिं गुप्तिम् = सुरक्षां च लभते = प्राप्नोति।

विशेष—१. नारद का मत है कि उन-उन कार्यों पर विचार करते समय उन-उन विभागों के उपयुक्त या नियुक्त व्यक्तियों के साथ विचार करना चाहिए।

२. राजा जब अपने मन्त्रियों से घुमा-फिराकर कोई बात पूछता है तो वे समझते हैं कि यह राजा हम पर विश्वास नहीं करता है। अतः वे उस बात का लापरवाही से उत्तर देते हैं और बाद में उसे प्रकट भी कर देते हैं। अतएव नारद के अनुसार पराशर मतावलम्बियों का मन्तव्य ठीक नहीं है।

नेति कौटिल्यः। अनवस्था ह्येषा। मन्त्रिभिस्त्रिभिश्चतुर्भिर्वा सह मन्त्रयेत। मन्त्रयमाणो ह्येकेनार्थकृच्छ्रेषु निश्चयं नाधिगच्छेत्। एकश्च मन्त्री यथेष्टमनवग्रहश्चरति। द्वाभ्यां मन्त्रयमाणो द्वाभ्यां संहताभ्यामवगृह्यते, विगृहीताभ्यां विनाश्यते। त्रिषु चतुर्षु वा नैकान्तं कृच्छ्रेणोपपद्यते महादोषम्। उपपन्नं तु भवति। ततः परेषु कृच्छ्रेणार्थनिश्चयो गम्यते, मन्त्रो वा रक्ष्यते॥ ११॥

अनुवाद—आचार्य कौटिल्य के अनुसार नारद का मत उचित नहीं है, क्योंकि इससे अनवस्था दोष आयेगा। इसलिए तीन या चार मन्त्रियों को साथ बैठाकर राजा को मन्त्रणा करनी चाहिए। क्योंकि एक मन्त्री से सलाह करता हुआ राजा किसी कठिनतम कार्य के अड़ जाने पर उचित समाधान नहीं कर पाता और वह मन्त्री प्रतिद्वन्द्वी के रूप में मनमाना करने लगता है। दो मंत्रियों के साथ बैठकर भी वह सलाह करता है तो वे दोनों मिलकर राजा को अपने वश में कर सकते हैं, अथवा दोनों लड़ने लग कर सारी मंत्रणा ही धूल में मिला दें। यदि तीन या चार मंत्री सलाहकार होंगे तो उस अवस्था से इस प्रकार के अनर्थकारी महान् दोष के उत्पन्न हो जाने की सम्भावना नहीं है। कोई भी दोष उसमें सहसा ही नहीं आ सकता है। यदि चार से अधिक मन्त्री हो जायँ तो कार्य का निश्चय करना कठिन हो जाता है और उस दशा में मन्त्र की सुरक्षा में भी सन्देह हो जाता है।

संस्कृत-व्याख्या—कौटिल्यः = अर्थशास्त्रप्रणेता, न = इदमपि मतमयुक्तम्, इति कथयति। हि = यतः, एषा अनवस्था = अनवस्थादोषोपपादकः सिद्धान्तः। मन्त्रिभिस्त्रिभिः चतुर्भिर्वा स मन्त्रयेत् = कर्मणां बहुत्वात् तैः सह मन्त्रणां कुर्यात्। हि = यतः एकेन = मन्त्रिणा सह, मन्त्रयमाणः = मन्त्रणां कुर्वन्, अर्थकृच्छ्रेषु = कार्यसङ्कटेषु क्लेशनिर्धारणीयेषु कार्येषु, निश्चयम् = निर्णयम्, नाधिगच्छेत् = नाप्नुयात्। एकश्च मन्त्री यथेष्टम् = स्वेच्छानुसारम्, अनवग्रहः = निष्प्रतिद्वन्द्वः, चरति = समाचरति। द्वाभ्याम् = मन्त्रिभ्याम्, मन्त्रयमाणः = मन्त्रणां कुर्वन् राजा, द्वाभ्यां संहताभ्याम् = सम्मिलिताभ्याम्, अवगृह्यते = स्ववशं नीयते, विगृहीताभ्याम् = परस्परविपरीतमताभ्यां ताभ्याम्, विनाश्यते = कार्यहानिं

प्राप्यते। त्रिषु चतुर्षु = त्रिचतुरमन्त्रिषु मन्त्रसहायेषु, महादोषम् = परमानर्थहेतुभूतमनिष्टादिकम्, नैकान्तम् = नियतं न भवति, कृच्छ्रेण = महता यत्नेन कदाचिदेव, उपपद्यते = उत्पद्यते। तु उपपन्नम् = मन्त्रनिश्चयेन चिन्त्यमानं कर्म उपपत्तियुक्तं भवति। ततः परेषु = पञ्चादिषु मन्त्रसहायेषु ततोऽधिकेषु वा, अर्थनिश्चयः = कार्यनिर्धारणम्, कृच्छ्रेण = महता यत्नेन, गम्यते = प्राप्यते, मन्त्रो वा कृच्छ्रेण, रक्ष्यते = रक्षितं भवति।

विशेष—१. आचार्य कौटिल्य का मत है कि अनेक विषयों पर विचार-विमर्श के लिए तीन या चार मन्त्री नियत होने चाहिए तथा राजा को उन्हीं के साथ सभी विषयों पर विचार क़रना चाहिए। प्रत्येक विभाग के सभी अधिकारियों के साथ विचार करना ठीक नहीं रहता है।

२. अधिक मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा करने से कार्य का निश्चय नहीं हो पाता है और मन्त्र सुरक्षित भी नहीं रह पाता है।

देशकालकार्यवशेन त्वेकेन सह द्वाभ्यामेको वा यथासामर्थ्यं मन्त्रयेत॥ १२॥

अनुवाद—देश, काल एवं कार्य के अनुसार एक मन्त्री के साथ, दो मन्त्रियों के साथ अथवा अपनी शक्ति के अनुसार राजा अकेला ही कार्यों का निर्णय करे।

संस्कृत-व्याख्या—देशकालकार्यवशेन = देशकालकार्यापेक्षया राजा, तु = कदाचित्, एकेन = मन्त्रिणा सह, द्वाभ्याम् = मन्त्रिभ्यां सह, एको वा = एकाकी स्वयमेव वा, यथासामर्थ्यम् = अमात्यमन्त्रिसामर्थ्यानतिक्रमेण, मन्त्रयेत = मन्त्रणं कार्यनिर्णयं च कुर्यात्।

कर्मणामारम्भोपायः पुरुषद्रव्यसम्पद् देशकालविभागः विनिपातप्रतीकारः कार्यसिद्धिरिति पञ्चाङ्गो मन्त्रः। तानेकैकशः पृच्छेत् समस्तांश्च। हेतुभिश्चैषां मतिप्रविवेकान् विद्यात्। अवाप्तार्थः कालं नातिक्रामयेत्। न दीर्घकालं मन्त्रयेत। न च तेषां पक्ष्यैर्येषामपकुर्यात्॥ १३॥

अनुवाद—मंत्र के पाँच अंग होते हैं : १. कार्यारम्भ करने का उपाय, २. पुरुष तथा द्रव्य-संपत्ति, ३. देश-काल का विभाग, ४. विघ्न-प्रतीकार और ५. कार्यसिद्धि। मंत्र के विषय में राजा एक-एक मंत्री से अथवा एक साथ सभी मंत्रियों से परामर्श कर सकता है। मंत्रियों के भिन्न-भिन्न अभिप्रायों को वह युक्तियों के द्वारा समझे। भली-भाँति अर्थ का निश्चय करने पर समय को व्यर्थ न बिताये। दीर्घकाल तक किसी कार्य पर विचार करते रहना उचित नहीं है। उन लोगों के साथ मन्त्रणा नहीं करनी चाहिए जिनका कभी अपकार किया हो।

संस्कृत-व्याख्या—कर्मणाम् = स्वविषये परिखाप्रकारादिरुपदुगादिसृष्टिलक्षणानां परविषये सन्धिविग्रहादिनिमित्तदूतसम्प्रेषणादिलक्षणानां च कार्याणाम्, आरम्भोपायः =

उपक्रमोपाय:, पुरुषद्रव्यसम्पत् = स्वविषये परविषये चापि पुरुषद्रव्यसमृद्धिश्च, देशकालविभाग: = देशकालादीनां सर्वेषाम्, विभाग: = विवेक:, विनिपातप्रतीकार: = विनिपातो विघ्नस्तस्य प्रतीकार: = प्रशमनम्, कार्यसिद्धि: = कर्मफलस्य संसिद्धि:, इति मन्त्र: पञ्चाङ्ग: = पञ्चावयवरूपो भवति। एकैकश: = एकैकमाहूय, तान् समस्तान् = तान् सम्मेल्य सर्वान् सहायकान् च, पृच्छेत् = कस्तेऽभिप्राय इति पृच्छेत्। एषाम् सर्वेषां मन्त्रिणाम्, मतिविवेकान् = अभिप्रायविभागान्, हेतुभि: = कारणैश्च, विद्यात् = अर्थनिश्चयार्थं पर्यालोचयेत्। अवाप्तार्थ: = निश्चितार्थ:, कालम् = समयम्, नातिक्रामयेत् = न व्यर्थं यापयेत्। दीर्घकालं यावत् न मन्त्रयेत् = मन्त्रणां कुर्यात्। तेषां पक्ष्यै: = तै: सह च, न = मन्त्रयेत्, येषामपकुर्यात्. = अपकारं त्वं पूर्वमकरो:। अपकार्यबन्धुभि: सह न मन्त्रयेदित्याशय:।

विशेष—१. मन्त्र के पाँच अंगों को राजनीति में विशेष महत्त्व दिया जाता है। ये पाँच अंग हैं—साधनोपय, सहायक, देशकालविभाग, विनिपात-प्रतीकार एवं कार्यसिद्धि। यथा—

''सहाया: साधनोपाया: विभागो देशकालयो:।
विनिपातप्रतीकार: सिद्धि: पञ्चाङ्गमिष्यते॥''

(१) अपने राज्य की रक्षा के लिए परिखा, प्राकार, दुर्ग आदि का निर्माण करना तथा शत्रु-राज्य से सन्धि-विग्रह आदि के निमित्त दूत भेजना कार्यारम्भोपाय नामक प्रथम अङ्ग है।

(२) अपने देश में श्रेष्ठ दुर्ग आदि के निर्माणार्थ उत्तम कारीगरों एवं सुवर्ण-लौह आदि सम्पत्तियों को एकत्र करना तथा शत्रु-राज्य में सन्धि-विग्रह आदि के लिए धन-धान्यादि के साथ चतुर व्यक्तियों को भेजना पुरुषद्रव्यसम्पत् नामक मन्त्र का द्वितीय अङ्ग है।

(३) अपने देश के सुभिक्ष-दुर्भिक्ष आदि कालों का विचार करना तथा शत्रु-पक्ष से उचित समय पर सन्ध्यादि का चिन्तन करना देशकाल विभाग नामक तृतीय अङ्ग है।

(४) अपने राज्य एवं दुर्ग आदि पर आने वाली विपत्तियों या विघ्नों का निराकरण करना विनिपात प्रतीकार नामक चतुर्थ अङ्ग है।

(५) उचित रीति से कार्यारम्भ करने पर अपने पक्ष की उन्नति, शुत्र पक्ष की अवनति या फिर दोनों पक्षों की समान अवस्था बनी रहना मन्त्र का कार्यसिद्धि नामक पञ्चम अंग है।

२. राजा को अर्थ का निश्चय होते ही तुरन्त वह कार्य कर लेना चाहिए, लम्बे समय तक प्रतीक्षा करके समय व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए।

मन्त्रिपरिषदं द्वादशामात्यान् कुर्वीतेति मानवा:।
षोडशेति बार्हस्पत्या:।

ऋषिसहस्रं मन्त्रिपरिषदात्मकं चक्षुः कार्यतत्त्वदर्शनसाधनसम्पन्नोऽवर्तत। तस्मत्कारणात्, इमम् = इन्द्रम्, द्‌यक्षम् = पुरुषान्तरवद् द्विनयनमपि, सहस्राक्षम् = सहस्रनेत्रम्, आहुः = निगदन्ति।

विशेष—१. राजा मन्त्रिपरिषद् का गठन करे। उसमें कितने मन्त्री हों, इस सम्बन्ध में मनु, बृहस्पति एवं शुक्राचार्य के अनुयायियों के अलग-अलग मत हैं। कौटिल्य ने स्वमत प्रकट कर कार्य की व्यापकता तथा उसे सम्पन्न करने की क्षमता के अनुसार मन्त्रियों को उस अनुपात से नियुक्त करना उचित बताया है।

२. इन्द्र को सहस्राक्ष (हजार नेत्रों वाला) इसी कारण कहा जाता है कि उसकी मन्त्रिपरिषद् में एक हजार ऋषि नियुक्त थे। अधिक मन्त्री होने से उनकी बौद्धिक कर्मकुशलता का फल अधिक ही मिलता है।

आत्ययिके कार्ये मन्त्रिणो मन्त्रिपरिषदं चाहूय ब्रूयात्। तत्र यद् भूयिष्ठाः कार्यसिद्धिकरं वा ब्रूयुस्तत् कुर्यात्॥ १५॥

अनुवाद—अत्यधिक आवश्यक कार्य के आ जाने पर (राजा) मन्त्रियों और मन्त्रिपरिषद् को बुलाकर कहे। उसमें वे अधिक मन्त्री लोग जिसे शीघ्र कार्यसिद्धि कर देने वाला कहें, तदनुसार (राजा) करे।

संस्कृत-व्याख्या—आत्ययिके = अत्यावश्यके, कार्ये, मन्त्रिणः = सर्वमपि मन्त्रिपरिषदं च, आहूय = आकार्य मेलयित्वा च राजा, ब्रूयात् = तत्त्वं पृच्छेत्। तत्र = मन्त्रिपरिषदि, यद्, भूयिष्ठाः = बहुतमाः, कार्यसिद्धिकरं वा = अभूयिष्ठा अपि कार्यसाधकम्, ब्रूयुः = कथयेयुः, तत् कुर्यात् = तदनुतिष्ठेत्।

कुर्वतश्च
नास्य गुह्यं परे विद्युश्छिद्रं विद्यात् परस्य च।
गूहेत् कूर्म इवाङ्गानि यत्स्याद् विवृतमात्मनः॥ १६॥

अनुवाद—इस प्रकार कार्य करते हुए राजा के गुप्त रहस्यों को कोई बाहरी व्यक्ति नहीं जान पाता है, प्रत्युत वह दूसरों के दोषों को भी जान लेता है। राजा को चाहिए कि वह अपने गुप्त भावों को उसी प्रकार अपने मन में छिपाये रखे जिस प्रकार कि कछुआ अपने अंगों को छिपाये रखता है।

संस्कृत-व्याख्या—कुर्वतः = पूर्वोक्तप्रकारेण कार्यं सम्पादयतश्च, अस्य = राज्ञः, गुह्यम् = गोपनीयं रहस्यम्, न विद्युः = न कोऽप्यन्यो जानीयुः, च = प्रत्युत, स परस्य = अन्यस्य, छिद्रम् = दोषादिकम्, विद्यात् = जानीयात्। आत्मनः विवृतं यत्स्यात्, तत्सर्वं कूर्मः = कच्छपः, इव = यथा, अङ्गानि गूहेत् = गोपितं स्थापयेत्।

यथा ह्यश्रोत्रियः श्राद्धं न सतां भोक्तुमर्हति।
एवमश्रुतशास्त्रार्थो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति॥ १७॥

विंशतिमित्यौशनसाः।

यथासामर्थ्यमिति कौटिल्यः ।

ते ह्यस्य स्वपक्षं परपक्षं च चिन्तयेयुः। अकृतारम्भमारब्धमनुष्ठानमनुष्ठितविशेषं नियोगसम्पदं च कर्मणां कुर्युः। आसन्नैः सह कार्याणि पश्येत्। अनासन्नैः सह पत्रसम्प्रेषणेन मन्त्रयेत। इन्द्रस्य हि मन्त्रिपरिषदृषीणां सहस्रम्। स तच्चचुः। तस्मादिमं द्व्यक्षं सहस्राक्षमाहुः॥ १४॥

अनुवाद—मन्त्रिपरिषद् कैसा हो, इस सम्बन्ध में मनु के अनुयायियों का कथन है कि मन्त्रिपरिषद् में बारह अमात्यों को नियुक्त करना चाहिए।

वृहस्पति के अनुयायियों के अनुसार सोलह अमात्य नियुक्त करने चाहिए।

उशना (शुक्राचार्य) के मतावलम्बियों के अनुसार बीस अमात्य होने चाहिए।

आचार्य कौटिल्य का मत है कि मन्त्रिपरिषद् में सामर्थ्य के अनुसार ही उनकी संख्या नियत होनी चाहिए।

वे नियुक्त मन्त्री विजिगीषु राजा के स्वपक्ष और शत्रुपक्ष के सम्बन्ध में विचार करें। जो कार्य प्रारम्भ न किये गए हों उन्हें प्रारम्भ करायें; प्रारम्भ किये कार्यों को पूरा करावें और जो कार्य पूरे हो चुके हों उनमें आवश्यकतानुसार संशोधन-सम्मार्जन करें। जो मन्त्री राजा के सन्निकट हों, उनको साथ लेकर राजा उनके कार्यों का स्वयं ही निरीक्षण करे। किन्तु जो दूर हों, उनसे पत्र द्वारा परामर्श करता रहे। इन्द्र की मन्त्रि-परिषद् में एक हजार ऋषि थे, वे उसके कार्यों के निर्देशक थे। इसीलिए तो दो नेत्रों वाले इन्द्र को हजार आँखों वाला (सहस्राक्ष) कहा गया है।

संस्कृत-व्याख्या—द्वादशामात्यान् = द्वादशसंख्यकान् मन्त्रिणो नियुज्य, मन्त्रिपरिषदम् = राजकार्यनिवर्हणार्थं मन्त्रिपरिषदन्नाम राज्ञो भवति, इति मानवाः = मनुशिष्याः कथयन्ति। षोडशसंख्याकाः मन्त्रिणः, इति बार्हस्पत्याः = बृहस्पतिशिष्याः, विंशतिम् इति औशनसाः = शुक्राचार्यानुयायिनः, यथासामर्थ्यम् = यथोक्तसंख्यास्तन्न्यूनसंख्यास्तदधिकसंख्या वेति कौटिल्यः। एवंप्रकारेण राज्ञा मन्त्रिपारिषदाः कर्तव्याः।

ते ह्रि = ते नियुक्ताः मन्त्रिणो हि, अस्य = विजिगीषोः नृपस्य, स्वपक्षम् = स्वपक्षगतं कार्यम्, परपक्षं च = शत्रुपक्षगतं च कार्यम्, चिन्तयेयुः = समीक्षापूर्वकमनुतिष्ठेयुः। अकृतारम्भम् = अकृतस्य कर्मणोऽनुष्ठानोपक्रमम्, आरब्धानुष्ठानम् = उपक्रान्तस्य परिसमापनम्, अनुष्ठितविशेषम् = परिसमापितस्य संस्कारम्, नियोगसम्पदम् = तत्तत्कर्मकराधिकारगुणवत्तां बाहुल्यं च, कर्मणां कुर्युः = विदध्युः। राजा आसन्नैः = समीपस्थायिभिः सह, कार्याणि = तस्य कार्याणि, पश्येत् = अवलोकयेत्। अनासन्नैः = असमीपस्थैः सह, दूरस्थैः सह वा, पत्रसम्प्रेषणेन = लिखितसकलार्थस्य लेखस्य प्रेषणेन, मन्त्रयेत = मन्त्रणां कुर्यात्। हि = यतः, इन्द्रस्य = देवराजस्य मन्त्रिपरिषद्, ऋषीणां सहस्रम् = सहस्रसंख्याकास्तस्य मन्त्रिणः सर्वेऽपि मुनयः। सः = इन्द्रः, तच्चक्षुः = तद्

ऋषिसहस्रं मन्त्रिपरिषदात्मकं चक्षुः कार्यतत्त्वदर्शनसाधनसम्पन्नोऽवर्तत। तस्मत्कारणात्, इमम् = इन्द्रम्, द्‌यक्षम् = पुरुषान्तरवद् द्विनयनमपि, सहस्राक्षम् = सहस्रनेत्रम्, आहुः = निगदन्ति।

विशेष—१. राजा मन्त्रिपरिषद् का गठन करे। उसमें कितने मन्त्री हों, इस सम्बन्ध में मनु, बृहस्पति एवं शुक्राचार्य के अनुयायियों के अलग-अलग मत हैं। कौटिल्य ने स्वमत प्रकट कर कार्य की व्यापकता तथा उसे सम्पन्न करने की क्षमता के अनुसार मन्त्रियों को उस अनुपात से नियुक्त करना उचित बताया है।

२. इन्द्र को सहस्राक्ष (हजार नेत्रों वाला) इसी कारण कहा जाता है कि उसकी मन्त्रिपरिषद् में एक हजार ऋषि नियुक्त थे। अधिक मन्त्री होने से उनकी बौद्धिक कर्मकुशलता का फल अधिक ही मिलता है।

आत्ययिके कार्ये मन्त्रिणो मन्त्रिपरिषदं चाहूय ब्रूयात्। तत्र यद् भूयिष्ठाः कार्यसिद्धिकरं वा ब्रूयुस्तत् कुर्यात्॥ १५॥

अनुवाद—अत्यधिक आवश्यक कार्य के आ जाने पर (राजा) मन्त्रियों और मन्त्रिपरिषद् को बुलाकर कहे। उसमें वे अधिक मन्त्री लोग जिसे शीघ्र कार्यसिद्धि कर देने वाला कहें, तदनुसार (राजा) करे।

संस्कृत-व्याख्या—आत्ययिके = अत्यावश्यके, कार्ये, मन्त्रिणः = सर्वमपि मन्त्रिपरिषदं च, आहूय = आकार्य मेलयित्वा च राजा, ब्रूयात् = तत्त्वं पृच्छेत्। तत्र = मन्त्रिपरिषदि, यद्, भूयिष्ठाः = बहुतमाः, कार्यसिद्धिकरं वा = अभूयिष्ठा अपि कार्यसाधकम्, ब्रूयुः = कथयेयुः, तत् कुर्यात् = तदनुतिष्ठेत्।

कुर्वतश्च
नास्य गुह्यं परे विद्युश्छिद्रं विद्यात् परस्य च।
गूहेत् कूर्म इवाङ्गानि यत्स्याद् विवृतमात्मनः॥ १६॥

अनुवाद—इस प्रकार कार्य करते हुए राजा के गुप्त रहस्यों को कोई बाहरी व्यक्ति नहीं जान पाता है, प्रत्युत वह दूसरों के दोषों को भी जान लेता है। राजा को चाहिए कि वह अपने गुप्त भावों को उसी प्रकार अपने मन में छिपाये रखे जिस प्रकार कि कछुआ अपने अंगों को छिपाये रखता है।

संस्कृत-व्याख्या—कुर्वतः = पूर्वोक्तप्रकारेण कार्यं सम्पादयतश्च, अस्य = राज्ञः, गुह्यम् = गोपनीयं रहस्यम्, न विद्युः = न कोऽप्यन्यो जानीयुः, च = प्रत्युत, स परस्य = अन्यस्य, छिद्रम् = दोषादिकम्, विद्यात् = जानीयात्। आत्मनः विवृतं यत्स्यात्, तत्सर्वं कूर्मः = कच्छपः, इव = यथा, अङ्गानि गूहेत् = गोपितं स्थापयेत्।

यथा ह्यश्रोत्रियः श्राद्धं न सतां भोक्तुमर्हति।
एवमश्रुतशास्त्रार्थो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति॥ १७॥

अनुवाद—जिस प्रकार वेदाध्ययन से रहित ब्राह्मण श्रेष्ठ पुरुष के यहाँ श्राद्ध नहीं खा सकता है, उसी प्रकार शास्त्रज्ञान से शून्य व्यक्ति मन्त्र को सुरक्षित नहीं रख पाता है।

संस्कृत-व्याख्या—यथा = येन प्रकारेण, हि, अश्रोत्रियः = वेदाध्ययनरहितो जनः, सताम् = श्रेष्ठजनानां गृहे, श्राद्धं भोक्तुम् = अत्तुम् न अर्हति = न पार्यते, एवम् = तथैव, अश्रुतशास्त्रार्थः = शास्त्रज्ञानशून्यो जनः, मन्त्रम् = मन्त्रणाम्, श्रोतुम् = आकर्णयितुम्, न अर्हति = नैव समर्थो भवति।

विशेष—सज्जनों के घर में अश्रोत्रिय को श्राद्ध-भोजन के लिए निमन्त्रित नहीं किया जाता है, उसी प्रकार राजनीतिशास्त्र को न जानने वाला व्यक्ति मन्त्रणा के लिए योग्य नहीं रहता है। ऐसे व्यक्ति को मन्त्राधिकार में नियुक्त नहीं करना चाहिए और मन्त्रणा के लिए भी नहीं बुलाना चाहिए, क्योंकि वह मन्त्र की रक्षा नहीं कर पाता है।

॥ इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे मन्त्राधिकारः पञ्चदशोऽध्यायः ॥

* * *

षोडशोऽध्यायः

द्वादशं प्रकरणम्—दूतप्रणिधिः

उद्धृतमंत्रो दूतप्रणिधिः। अमात्यसम्पदोपेतो निसृष्टार्थः, पादगुणहीनः परिमितार्थः, अर्धगुणहीनः शासनहरः॥ १॥

अनुवाद—मंत्रणा का निश्चय होने के बाद दूत को (शत्रु देश की ओर) भेजना चाहिए। अमात्य के सम्पूर्ण गुणों से युक्त दूत निसृष्टार्थ कहलाता है। चौथाई गुणों से हीन दूत को परिमितार्थ और आधा गुणों से हीन दूत शासनहर कहलाता है।

संस्कृत-व्याख्या—उद्धृतमंत्रः = निर्धारितार्थः मंत्रो यस्मिन् स तथाभूतः, दूतप्रणिधिः = दूतानां परेषु सन्देशदानपूर्वं प्रणिधानं प्रेषणं कर्त्तव्यम्। दूतास्त्रिप्रकाराः, अमात्यसम्पदोपेतः = जानपदत्वाद्यमात्मसम्पद्युक्तो दूतः, निसृष्टार्थः = एतन्नामा कथ्यते, पादगुणहीनः = तस्मात् पादगुणप्रत्यवरः, परिमितार्थो दूतः, अर्धगुणहीनः = अर्धगुणप्रत्यवरः, शासनहरः = एतन्नामको दूतः कथ्यते।

विशेष—१. इस अध्याय के प्रारम्भ में तीन प्रकार के दूत बताये गये हैं—निसृष्टार्थ, परिमितार्थ और शासनहर। जिसमें सम्पूर्ण गुण हों वह उत्तम श्रेणी का दूत निसृष्टार्थ, उससे चौथाई कम गुणों वाला मध्यम श्रेणी का परिमितार्थ और उससे आधे गुणों से हीन अधम कोटि का शासनहर दूत कहलाता है। अमात्य के सम्पूर्ण गुणों वाला दूत ही इनमें सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

२. अमात्य के सर्वगुणों का उल्लेख नवम अध्याय के प्रारम्भ में किया गया है।

सुप्रतिविहितयानवाहनपुरुषपरिवापः प्रतिष्ठेत। शासनमेवं वाच्यः परः, स वक्ष्यत्येवं, तस्येदं प्रतिवाक्यम्—एवमतिसन्धातव्यमित्यधीयानो गच्छेत्। अटव्यन्तपालपुरराष्ट्रमुख्यैश्च प्रतिसंसर्गं गच्छेत्। अनीकस्थानयुद्धप्रतिग्रहापसारभूमीरात्मनः परस्य चावेक्षेत। दुर्गराष्ट्रप्रमाणं सारवृत्तिगुप्तिच्छिद्राणि चोपलभेत॥ २॥

अनुवाद—पालकी आदि सवारी, घोड़े आदि वाहन, नौकर-चाकर और सोने-बिछाने आदि सामग्री की भली-भाँति व्यवस्था करके दूत को शत्रुदेश की ओर प्रस्थान करना चाहिए। दूत को पहिले ही से यह सोच-विचार कर लेना चाहिए कि 'मैं अपने स्वामी का सन्देश इस ढंग से कहूँगा; उसका यह उत्तर होगा तो मेरे प्रत्युत्तर की विधि इस प्रकार होगी; या किन-किन विधियों से उस शत्रु राजा को वश में करना होगा' आदि-आदि। राजदूत को चाहिए कि वह शत्रुदेश के वनरक्षक, सीमारक्षक, नगरवासियों तथा

जनपदवासियों से मित्रता गाँठे। साथ ही वह उभयपक्ष की सेनाओं के ठहरने योग्य युद्ध-भूमि और संयोग आने पर अपनी सेना के भाग सकने योग्य उपयुक्त स्थानों तथा रास्तों का भी निरीक्षण करे। साथ ही शत्रुपक्षी राजा के दुर्ग, उसके राज्य की सीमाएँ, आमदनी, उपज, आजीविका के साधन, राष्ट्ररक्षा के तरीके, वहाँ के गुप्त भेद एवं वहाँ की बुराइयों का पता लगाना भी दूत का ही कर्त्तव्य है।

संस्कृत-व्याख्या—सुप्रतिविहितयानवाहनपुरुषपरिवापः = सम्यक् सज्जीकृतं यानं शिबिकान्दोलिकादि वाहनमश्वादि पुरुषाः शुश्रूषादिकर्मकराः परिवापः शय्यास्तरगोणिकादिश्च यस्य सः, तथाभूतो दूतः, प्रतिष्ठेत = शत्रुविषयं प्रति प्रेषयेत। शासनमेव = स्वस्वामिनः सन्देशमित्थम्, वाच्यः परः = बोधनीयः, सः = शत्रुः, एवं वक्ष्यति = एवं वदिष्यति, तस्य = तथा वदतः शत्रोः, इदम् = ईदृशम्, प्रतिवाक्यम् = प्रत्युत्तरं वक्तव्यम् । एवमतिसन्धातव्यम् = शत्रोरतिसन्धानं कर्त्तव्यम्, इत्यधीयानः = पुनः पुनरनुसन्दधानो गच्छेत्। अटव्यन्तपालपुरराष्ट्रमुख्यैः = अटवीपालः अन्तपालः पुरमुख्यः राष्ट्रमुख्यश्च तैः सह च, प्रतिसंसर्गम् = सख्यं मित्रतां वा, गच्छेत् = कुर्यात्। अनीकस्थानयुद्धप्रतिग्रहापसारभूमीः = अनीकस्य सैन्यस्य आत्मनः परस्य च, स्थानभूमिं युद्धस्वीकारार्हभूमिं प्रतिग्रहापसारभूमिं च अपसरणानुकूलभूमिं च, अवेक्षेत = जानीयात्। दुर्गराष्ट्रप्रमाणम् = दुर्गराष्ट्रयोरियत्ताम्, सारवृत्तिगुप्तिच्छिद्राणि = सारं धान्यस्वर्णादिकोत्पत्तिं वृत्तिं जनानां जीविकां गुप्तिं रक्षां छिद्रं शत्र्वाक्रमणद्वारं च उपलभेत = प्राप्नुयात्, जानीयाद् वेति कर्त्तव्यमपि दूतस्य वर्तते।

विशेष—१. दूत शत्रु-राज्य में जावे, तो उसे अनेक तरह से चिन्तन करना चाहिए और सावधानी से शत्रु-पक्ष के प्रत्येक कार्यकलाप का, उनकी अच्छाइयों एवं बुराइयों का पता लगाना चाहिए।

२. शत्रु पक्ष के प्रत्येक उत्तर का प्रत्युत्तर देने के लिए उद्यत रहना दूत का प्रथम कर्त्तव्य बताया गया है।

पराधिष्ठानमनुज्ञातः प्रविशेत्। शासनं च यथोक्तं ब्रूयात् प्राणाबाधेऽपि दृष्टे। परस्य वाचि वक्त्रे दृष्ट्यां च प्रसादं वाक्यपूजनमिष्टपरिप्रश्नं गुणकथासङ्गमासन्नमासनं सत्कारमिष्टेषु स्मरणं विश्वासगमनं च लक्षयेत् तुष्टस्य। विपरीतमतुष्टस्य। तं ब्रूयात्—दूतमुखा वै राजानस्त्वं चान्ये च। तस्मादुद्यतेष्वपि शस्त्रेषु यथोक्तं वक्तारः तेषामन्तावसायिनोऽप्यवध्याः, किमङ्ग पुनर्ब्राह्मणाः। परस्यैतद् वाक्यमेष दूतधर्मः इति॥ ३॥

अनुवाद—शत्रु राजा के राज्य में प्रवेश करने से पूर्व दूत उसकी आज्ञा प्राप्त कर ले। प्राणान्तक परिस्थिति के उपस्थित हो जाने पर भी वह अपने स्वामी का सन्देश अविकल रूप में कहे। यदि शत्रु राजा की वाणी में, मुखमुद्रा में, दृष्टि में प्रसन्नता झलकती हो; वह दूत की बातों को आदरपूर्वक सुन रहा हो; दूत को स्वेच्छया प्रश्न करने या अभीष्ट को प्रकट करने की स्वतन्त्रता हो; दूत के स्वामी राजा का कुशल-क्षेम तथा उसके गुणों के प्रति शत्रु राजा की उत्सुकता हो; दूत को वह आदरपूर्वक समीप ही बैठाये; राजकीय

उत्सवों पर दूत को भी स्मरण करे और दूत के प्रत्येक कार्य पर शत्रु राजा का विश्वास हो; तो दूत को समझना चाहिए कि वह मुझ पर प्रसन्न है। यदि इसके विपरीत आचरण देखे, तो समझ ले कि शत्रु राजा उस पर रुष्ट है। इस प्रकार के रुष्ट हुए राजा से दूत कहे 'स्वामिन्, आप हों, अथवा दूसरे कोई भी राजा हों, दूत सभी का मुख होता है। उसी के माध्यम से राजा लोग पारस्परिक वार्ता-विनिमय करते हैं। इसलिए प्राणघातक स्थिति के आ जाने अथवा शस्त्रों के उद्यत होने पर भी दूत सही सन्देश निवेदित करते हैं। यदि कोई चाण्डाल भी दौत्य में नियुक्त हो तो वह भी (राजधर्मानुसार) अवध्य होता है, फिर ब्राह्मण हो तो उसकी बध्यता हो ही नहीं सकती। 'दूसरे का यह कथन है'—यह दुहराना ही दूत का धर्म है।'

संस्कृत-व्याख्या—दूतः पराधिष्ठानम् = शत्रुराज्यं शत्रुगृहं वा, अनुज्ञातः = परानुज्ञानन्तरमेव, प्रविशेत् = प्रवेशं कुर्यात्। शासनम् = स्वामिसन्देशं च, यथोक्तम् = स्वस्वामिसन्दिष्टानुसारमेव, प्राणाबाधेऽपि = प्राणमयेऽपि, दृष्टे = विलोकिते समुपस्थिते वा, ब्रूयात् = कथयेत्, स्वप्राणरक्षार्थमप्यन्यथा न कथयेदित्यर्थः। परस्य = शत्रोः, वाचि = वचने, वक्त्रे = मुखे, दृष्ट्याम् = लोचने च, प्रसादं प्रसन्नत्वम्, वाक्यपूजनम् = दूतोच्यमान-वाक्यादरः, इष्टपरिप्रश्नम् = स्वेच्छया प्रश्नकथने बाधाराहित्यम्, गुणकथासङ्गम = स्वामिगुणप्रस्तावेऽवधानदानम्, आसन्नमासनम् = दूतान्तिकोपवेशनम्, सत्कारम् = दूतविषयकं समादरम्, इष्टेषु = प्रियकार्येषु, स्मरणम् = दूतस्मरणम्, विश्वासगमनम् = दूतं प्रति विश्वासोपजननम्, लक्षयेत् = विलोकयेत् पूर्वचिह्नैश्च लक्षयेत्, तर्हि तस्य तुष्टस्य = तुष्टत्वमिति। विपरीतम् = पूर्वकार्यजातेषु विपरीताचरणे सति तस्य =शत्रुनृपस्य, अतुष्टस्य = अतुष्टत्वमिति ज्ञात्वा व्यवहरेत्। तम् = असन्तुष्टम्, ब्रूयात् = वक्ष्यमाणरीत्या कथयेत्, त्वं च अन्ये च राजानः = नृपाः दूतामुखाः = दूतो मुखं स्वाभिप्रायनिवेदनद्वारं येषां ते तथोक्ताः सन्ति। तस्मात् = दूतानां स्वस्वाभिवदनस्थानीयलात्, उद्यतेषु = वधार्थमुद्धृतेष्वपि, शस्त्रेषु = कृपाणादिषु, यथोक्तं वक्तारो भवन्ति। तेषाम् = दूतानां मध्ये, अन्तावसायिनः = चाण्डाला अपि, अवध्याः = वधस्यानर्हाः, किमङ्ग पुनर्ब्राह्मणाः = भूयोऽपि ब्राह्मणास्तु अवध्या एव, किमु वक्तव्यम्। परस्य = अन्यस्य, एतत् = पूर्वोक्तं वाक्यमेव, दूतधर्मः = दूतस्य परमं कर्त्तव्यमिति।

विशेष—१. दूत कर्म का सम्पादन करने वाले प्रायः ब्राह्मण वर्ण के होते थे। दूत जब शत्रु राजा के समक्ष जावे, तो वह उसके व्यवहार आदि को देखकर समझ ले कि यह उससे सन्तुष्ट है या विद्वेष रखता है। उसके व्यवहार के अनुसार आचरण करे।

२. 'दूतमुखाः राजानः' द्वारा बताया गया है कि राजा अपनी बात को शत्रुपक्ष या मित्रपक्ष के राजाओं के सामने दूतों के माध्यम से ही पहुँचाते हैं। इस कारण दूत राजा के सन्देश को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करें, यही उसका कर्तव्य है।

वसेदविसृष्टः, प्रपूजया नोत्सिक्तः, परेषु बलित्वं न मन्येत, वाक्यमनिष्टं सहेत, स्त्रियः पानं च वर्जयेत्, एकः शयीत, सुप्तमत्तयोर्हि भावज्ञानं दृष्टम्। कृत्यपक्षोपजापमकृत्यपक्षे गूढप्रणिधानं रागापरागौ भर्तरि रन्ध्रं च प्रकृतीनां

तापसवैदेहकव्यञ्जनाभ्यामुपलभेत। तयोरन्तेवासिभिश्चिकित्सकपाषण्डव्यञ्जनोभयवेतनैर्वा, तेषामसम्भाषायां याचकमत्तोन्मत्तसुप्तप्रलापैः पुण्यस्थानदेवगृहचित्रलेख्यसंज्ञाभिर्वा चारमुपलभेत। उपलब्धस्योपजापमुपेयात्। परेण चोक्तः स्वासां प्रकृतीनां परिमाणं नाचक्षीत। सर्वं वेद भवानिति ब्रूयात्, कार्यसिद्धिकरं वा॥ ४॥

अनुवाद—जब तक राजा जाने की आज्ञा न दे तब तक वहीं रहे, शत्रु राजा द्वारा आदर-सत्कार करने से गर्व न करे, शत्रुओं के मध्य रहते हुए स्वयं को बलवान् न माने, उनके कुवाक्य को भी सह ले, स्त्रियों की आसक्ति और मद्यपान को वह सर्वथा त्याग दे। अकेला ही शयन करे। दूसरों के साथ शयन करने और मद्यपान से (प्रमादवश या स्वप्नावस्था में) मन के गुप्त भावों के प्रकट होने का भय बना रहता है। वह शत्रु देश के कृत्यपक्ष को भेदने का और अकृत्यपक्ष को वश में करने का कार्य अपने गुप्तचरों द्वारा जाने। राजा और अमात्य आदि का पारस्परिक राग-द्वेष तथा राजा की बुराइयों का भेद वह तापस, वैदेहक आदि गुप्तचरों के द्वारा जाने। अथवा उन तापस, वैदेहक आदि के शिष्यों के द्वारा, चिकित्सक या पाखण्डी के वेश में रहने वाले गुप्तचरों के द्वारा तथा उभयवेतनभोगी गुप्तचरों के द्वारा शत्रु राजा के भेद को जाने। इनसे भी बातचीत न होने (काम न बनने) पर भिखारी, पागल, उन्मत्त तथा सोते में प्रलाप करने वाले व्यक्तियों के माध्यम से शत्रु पक्ष के कार्यों को जाने। तीर्थ स्थान, मन्दिर, गृहचित्र तथा लिपि संकेतों के द्वारा भी वह वहाँ के वृत्तान्त जाने। वृत्तान्त ठीक-ठीक प्राप्त होने पर भेद रूप उपायों का प्रयोग करे। शत्रुओं के द्वारा पूछने पर भी वह अपने अमात्य आदि का परिमाण (सही परिचय) न बतावे। आप सब कुछ जानते हैं—ऐसा कहकर बात टाल दे अथवा उतना ही परिमाण (परिचय) कहे जितने से अपना कार्य सिद्ध हो जाये।

संस्कृत-व्याख्या—अविसृष्टः = यावद् विसर्जनं न कथयेत्, तावत् कालं वसेत् = शत्रुराज्ये निवसेत्। प्रपूजया = शत्रुद्वारा सत्कारेण, नोत्सिक्तः = गर्वितो न भवेत्। परेषु = शत्रुमध्ये स्थित्वा, बलित्वं न मन्येत = अहं बलवानिति मतिं न प्रकाशयेत्। अनिष्टं वाक्यम् = परोक्तं कुवाक्यमपि सहेत, स्त्रियः पानं च = स्त्रीसंसर्गं मद्यपानं च, वर्जयेत्। एकः = असहाय एव, शयीत = शयनं कुर्यात्। हि = यतः, सुप्तमत्तयोः = स्वप्नप्रलापमदप्रलापाभ्याम्, भावज्ञानम् = हृदयवेदनम्, दृष्टम् = प्रत्यक्षानुभूतम्। कृत्यपक्षोपजापम् = कृत्यवर्गस्य भेदनम्, अकृत्यपक्षे गूढप्रणिधानम् = तीक्ष्णरसदसामादिप्रयोगम्, प्रकृतीनाम् = अमात्यादीनाम्, भर्तरि = स्वामिनि नृपे वा, रागारागौ रन्ध्रं च = द्वेषस्थानं च, तापसवैदेहकव्यञ्जनाभ्याम् = एतत्संथानाभ्याम्, उपलभेत = प्राप्नुयात्। तयोः = तापसवैदेकयोः, अन्तेवासिभिः = शिष्यैः, चिकित्सकपाषण्डव्यञ्जनोभयेवतनैः = भिषग्वेषैः पाषण्डवेषैः उभयवेतनैश्च, वा = पूर्वोक्तैश्च, चारम् = परिचर्याम्, उपलभेत = विद्यात्। तेषाम् = तापसवैदेहकव्यंजनादीनाम्, असम्भाषायाम् = सम्भाषणासौकर्ये, याचकमत्तोन्मत्तसुप्तप्रलापैः = भैक्षकालभवैः प्रलापैः मत्तसाधारणैरुन्मत्तसाधारणैः सुप्तसाधारणैश्च प्रलापैः, पुण्यस्थानदेवगृहचित्रलेख्यसंज्ञाभिः

= पुण्यस्थानेषु नदीतीरजपमण्डपमुनिगृहादिषु देवगृहेषु च भित्त्यर्पिताभिरालेख्यविशेषसंज्ञाभिरक्षरविशेषसंज्ञाभिर्वा, चारमुपलभेत। उपलब्धस्य प्राप्तपरवृत्तस्य, उपजापम् = भेदोपायम्, उपेयात् = प्रयुञ्जीत। परेण च उक्तः = पृष्टः, स्वासाम् = आत्मीयानाम्, प्रकृतीनाम् = स्वाम्यमात्यादीनाम्, परिमाणम् = इयत्ताम्, नाचक्षीत = न कथयेत्। तत्रोत्तरं प्रतिपद्येत—यद् भवान् सर्वमपि वेद = चारचक्षुषा भवता न किमप्यविदितमिति ब्रूयात् = स्तुयात्, कार्यसिद्धिकरं वा = दूतकार्यसिद्धिकरं यावद् उच्यमानं तावत्परिमाणं ब्रूयात्।

विशेष—१. सोया हुआ व्यक्ति स्वप्नावस्था में अपने मन के भावों को बड़बड़ाने से प्रकट कर देता है। मदिरापान करने पर नशे में व्यक्ति अपनी गुप्त बात भी कह देता है। इसलिए दूतों को साथ न सोकर अकेला सोना चाहिए।

२. क्रुद्ध, भीत, लुब्ध एवं तिरस्कृत अथवा मानी व्यक्ति कृत्यपक्ष के अन्तर्गत आते हैं। इनका भेदन कर शत्रु-राजा से अलग करने का कार्य अकृत्यपक्ष के द्वारा किया जाना चाहिए। गुप्तचरों के विविध वेशादि में चिकित्सक या वैद्य, पाखण्डी और दोनों पक्षों से वेतन ग्रहण करने वाले सारा भेद जानने में सफल रहते हैं।

३. तापस और वैदेहक गुप्तचर स्वयं भी तथा अपने शिष्यों के द्वारा भी शत्रुपक्ष की गोपनीय बातों को जानकर निसृष्टार्थ दूत को बताते हैं।

कार्यस्य सिद्धावुपरुध्यमानस्तर्कयेत्। किं भर्तुर्मे व्यसनमासन्नं पश्यन्, स्वं वा व्यसनं प्रतिकर्तुकामः, पार्ष्णिग्राहासारावन्तःकोपमाटविकं वा समुत्थापयितुकामः, मित्रमाक्रन्दं वा व्यापादयितुकामः, स्वं वा परतो विग्रहमन्तःकोपमाटविकं वा प्रतिकर्तुकामः, संसिद्धं मे भर्तुर्यात्राकालमभिहन्तुकामः, सस्यकुप्यपण्यसङ्ग्रहं दुर्गकर्म बलसमुत्थानं वा कर्तुकामः, स्वसैन्यानां वा व्यायामदेशकालावाकाङ्क्षमाणः, परिभवप्रमदाभ्यां वा, संसर्गानुबन्धनार्थी वा मामुपरुणद्धीति ज्ञात्वा वसेदपसरेद्वा॥ ५॥

अनुवाद—कार्य के सिद्ध हो जाने पर भी यदि शत्रु राजा रोके तो फिर विचार करना चाहिए कि क्या इस शत्रु राजा ने मेरे स्वामी की आने वाली किसी विपत्ति को देख लिया है या कि वह (मेरे जाने से पूर्व ही) अपने किसी व्यसन का प्रतीकार करना चाहता है? अथवा वह पार्ष्णिग्राह (स्वामिराजा का शत्रु एवं शत्रुराजा का मित्र) तथा आसार (शत्रुराजा के मित्र का मित्र) को मेरे स्वामी के विरोध में युद्ध करने के लिए तो नहीं उकसाना चाहता। या वह मेरे स्वामी के अमात्य आदि को उससे कुपित कराना तो नहीं चाहता ? या कि वह किसी घटक किसी आटविक को भिड़ाने की साजिश तो नहीं रच रहा है? उसकी योजना ऐसी तो नहीं है कि वह मित्र (स्वामिराजा के सम्मुख प्रदेश का मित्रराजा) तथा औक्रंद (स्वामिराजा के पृष्ठप्रदेश का मित्र राजा) आदि मित्रराष्ट्रों के राजाओं को मरवाना चाहता हो। या अपने ऊपर किये गये आक्रमण का, अपने अमात्य आदि के कोप का तथा अपने आटविक का प्रतीकार तो नहीं करना चाहता है? या कि वह मेरे स्वामी के इस प्रस्तुत आक्रमण को टालने तथा रोकने का यत्न तो नहीं कर रहा है! अथवा वह युद्ध की तैय्यारी के लिए धातु संग्रह, किलाबन्दी तथा सैन्य-संग्रह तो नहीं कर रहा है? या वह

सैन्य-शिक्षण तथा उचित देश-काल की आकांक्षा में तो नहीं है? अथवा किसी प्रकार के तिरस्कार, प्रीति, विवाह-सम्बन्ध, दोष-वैमनस्य आदि के लिए तो वह मुझे नहीं रोक रहा है? इस तरह रोके जाने के कारणों को जानकर वहाँ रुकना चाहिए, अन्यथा वहाँ से निकल जाना चाहिए।

संस्कृत-व्याख्या—कार्यस्य = दौत्यस्य, सिद्धौ = सम्पन्ने जाते, उपरुध्यमानः शत्रुनृपेण निवार्यमाणः, तर्कयेत् = चिन्तयेत्, किं मे भर्तुः = मम स्वामिनः, व्यसनम् = प्रकृतिगतां विपत्तिम्, आसन्नम् = समीपमेव, पश्यन् = विलोकयन् नायं विसर्जयति ? वा = अथवा , स्वं व्यसनं प्रतिकर्तुकामः = प्रशमयितुमिच्छुः (मां न विसर्जयति), पार्ष्णिग्राहासारावन्तकोपमाटविकम् = पार्ष्णिग्राहः शत्रुमित्रभूतः स्वामिशत्रुः, आसारः शत्रुमित्रमित्रं च तौ, अन्तःकोपं = मन्त्र्यादिप्रकोपम् समुत्थापयितुकामः = उत्पादयितुकामो वा, आटविकं युद्धार्थमुद्योजयितुकामः, मित्रम् = स्वामिनः पुरस्तान्मित्रम्, आक्रन्दम् = स्वामिनः पृष्ठतो मित्रं वा, व्यापादितुकामः = हन्तुकामः, वा = अथवा, परतो विग्रहम् = परेण विग्रहमुपस्थितं स्वम्, अन्तःकोपमाटविकम् = मन्त्र्यादिकोपमाटविकं कुपितं च, प्रतिकर्तुकामः, संसिद्धम् = सुकरतयोपनतम्, मे भर्तुः = मम स्वामिनः, यात्राकालम् = शत्रुप्रयाणकालम् अभिहन्तुकामः = निवारयितुकामः, वा = अथवा, सस्यकुप्यपण्यसंग्रहं कर्तुकामः, आरब्धे युद्धे सस्यादिपरिक्षयो मा मां बाधितेति, अथवा दुर्गकर्म = दुर्गसंस्कारं कर्तुकामः, बलसमुत्थानम् = सैन्यवृद्धिं सैन्यस्य इतस्ततो विप्रकीर्णस्य समाहरणं वा कर्तुकामः, अथवा स्वसैन्यानां व्यायामदेशकालौ = सैन्यप्रशिक्षणार्थमुचितदेशकालौ, आकांक्षमाणः = उदीक्षमाणः, मामुपरुणद्धि किम् ? अथवा परिभवप्रमदाभ्याम् = परिभवेन अनादरेण प्रमदेन सहसंवासप्रीत्या च, वा = अथवा, संसर्गानुबन्धार्थी = संसर्गो विवाहादिनिमित्तः सम्बन्धः, तदर्थी = दोषोत्पादश्च, मामुपरुणद्धि किमिति तर्कयेत् ।

विशेष—१. यदि कार्य सिद्ध हो जाये तो दूत को शत्रु देश में नहीं रुकना चाहिए। यदि वह राजा अपने देश से जाने की अनुमति नहीं देता है, तो दूत के उसके सभी कारणों पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए।

२. विजिगीषु राजा के सामने वाले देश के राजा को मित्र तथा पिछले वाले प्रदेश के राजा को आक्रन्द कहा गया है। शत्रु राजा के मित्र को पार्ष्णिग्राह और पार्ष्णिग्राह के मित्र को आसार कहा जाता है।

३. दूत यह विचार भी करे कि क्या वह शत्रु राजा उसे यहीं रोककर स्वामी के मित्र किसी राजा की हत्या तो नहीं करना चाहता है।

प्रयोजनमिष्टमवेक्षेत वा। शासनमनिष्टमुक्त्वा बन्धवधभयादविसृष्टोऽप्यपगच्छेत्। अन्यथा नियम्येत॥ ६॥

अनुवाद—अभीष्ट प्रयोजन या स्वामी की अभीष्ट-सिद्धि का विचार करे। अपने स्वामी का ऐसा सन्देश जिसे सुनकर शत्रु राजा क्रोधित हो उठे, उसे सुनाने पर दूत बिना अनुमति लिये ही वहाँ से बन्धन या वध आदि के भय से वापस आवे। ऐसा न करने पर उसका पकड़ा जाना निश्चित है।

संस्कृत-व्याख्या—इष्टम् = स्वाम्यर्थम्, अभीष्टं प्रयोजनम् = फलसिद्धिम्, अवेक्षेत वा = अवेक्ष्य एव वा तत्र वसेत्। अनिष्टं शासनम् = शत्रुद्विष्टं स्वामिसन्देशम्, उक्त्वा = निगद्य, दूत:, अविसृष्टोऽपि, बन्धवधभयात् = आत्मनो बन्धनं वधं वा शत्रुः करिष्यतीति शङ्कया, अपगच्छेत् = ततोऽपसरेत्। अन्यथा = अनपगमने तु, नियम्येत = शत्रुणा नियन्त्रेत।

विशेष—१. शत्रु राजा के व्यवहार को प्रतिकूल समझे तो उस देश में दूत को क्षण भर भी नहीं रुकना चाहिए। परन्तु कार्यसिद्धि का ध्यान अवश्य रखना चाहिए।

२. यदि शत्रु राजा का व्यवहार प्रतिकूल रहे, तो वहाँ से अवसर मिलते ही अपने देश में भाग आना चाहिए।

प्रेषणं सन्धिपालत्वं प्रतापो मित्रसङ्ग्रहः।
उपजापः सुहृद्भेदो दण्डगूढातिसारणम्॥ ७॥
बन्धुरत्नापहरणं चारज्ञानं पराक्रमः।
समाधिमोक्षो दूतस्य कर्म योगस्य चाश्रयः॥ ८॥

अनुवाद—शत्रुदेश में अपने स्वामी का सन्देश लेकर जाना, शत्रु राजा का सन्देश लाने के लिए जाना, सन्धि का पालन करना, प्रताप का प्रदर्शन करना, मित्रों का संग्रह करना, शत्रु के कृत्यपक्षीय लोगों को फोड़ देना, शत्रु के मित्रों में फूट डालना, तीक्ष्ण-रसद आदि गुप्तचरों एवं अपनी सेना को भगा देना, शत्रु के बन्धुओं एवं रत्नों का अपहरण करना, गुप्तचरों अथवा समाचारों का ज्ञान रखना, समय आने पर पराक्रम दिखाना, सन्धि की चिरस्थिति में जमानत रूप में रखे हुए राजकुमार को मुक्त कराना और मारण, मोहन, उच्चाटन आदि योग का प्रयोग करना ये सभी दूत के कार्य हैं।

संस्कृत-व्याख्या—प्रेषणम् = स्वामिसन्देशनिवेदनार्थं स्वामिनि शत्रुदेशवृत्तान्तस्य सूचनार्थं च गतागतम्, सन्धिपालत्वम् = कृतसन्धिरक्षणम्, प्रताप: = यथापेक्षं शत्रौ विक्रमणम्, मित्रसंग्रह: = सुहृत्सम्मेलनम्, उपजाप: = कृत्यभेदनम्, सुहृद्भेद:, दण्डगूढातिसारणम् = दण्डस्य सेनाया: गूढानां तीक्ष्णरसदादीनां चाक्रामणम्, बन्धुरत्नापहरणम् = बन्धूनां रत्नानां च स्वायत्तीकरणम्, चारज्ञानम् = गूढपुरुषाणां कार्यसौष्ठवपरिज्ञानम्, पराक्रम: = अवसरे विक्रमणम्, समाधिमोक्ष: = सन्धिविश्वासार्थमाहित: पुत्रादि: समाधि:, तस्य मोचनम्, योगस्य = मारणमोहनोच्चाटनादिकस्य, आश्रय: = सेवनं च, दूतस्य कर्म = कर्त्तव्यजातं भवति।

विशेष—१. इसमें संक्षेप में दूत के कार्यों का उल्लेख किया गया है। दूत उक्त सभी कार्यों का सम्पादन कुशलता से करे।

स्वदूतैः कारयेदतत् परदूतांश्च रक्षयेत्।
प्रतिदूतापसर्पाभ्यां दृश्यादृश्यैश्च रक्षिभिः॥ ९॥

अनुवाद—राजा अपने दूतों से उपर्युक्त सभी कार्य करवाये और शत्रु देश के दूतों के पीछे अपने दूतों और गुप्तचरों को लगाये रखे। अपने देश में तो वह शत्रुदूतों के कार्यों का पता लगावे, किन्तु शत्रु देश में उनकी सूचनाएँ गुप्तरूप में संग्रह करवाये।

संस्कृत-व्याख्या—एतत् = पूर्वोक्तं सर्वं कर्म, स्वदूतैः कारयेत् = राजा निष्पादयेत्, परदूतान् = शत्रुनृपस्य दूतांश्च, रक्षयेत् = स्वगुप्तचरैः परिचरेत्। प्रतिदूतापसर्पाभ्याम् = प्रतिदूतपरिचाराभ्याम्, दृश्यादृश्यैः = दृश्यैः स्वदेशस्थैः अदृश्यैः शत्रुविषये तत्सेवकछद्मभिः, रक्षिभिः = रक्षितपुरुषैश्च परदूतान् रक्षयेत्।

विशेष—१. राजा को ऐसा प्रयास करने के लिए निर्देश दिया गया है कि शत्रु राजा के दूत अपने देश में मित्रसंग्रहादि कर्म न कर सकें तथा राजा उनकी समस्त चेष्टाओं की गवेषणा करवाता रहे। इसलिए अपने गुप्तचरों एवं रक्षकों के माध्यम से राजा समस्त गतिविधियों पर नजर रखते हुए अपनी रक्षा करे।

२. गुप्तचरों एवं दूतों के माध्यम से ऐसा आचरण करने वाला विजिगीषु राजा कभी पराजय नहीं पा सकता।

॥ इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे दूतप्रणिधिः षोऽशोऽध्यायः ॥

* * *

सप्तदशोऽध्यायः

त्रयोदशं प्रकरणम्—राजपुत्ररक्षणम्

रक्षितो राजा राज्यं रक्षत्यासन्नेभ्यः परेभ्यश्च। पूर्वं दारेभ्यः पुत्रेभ्यश्च॥ १॥

अनुवाद—समीपवर्ती बन्धुओं एवं शत्रुओं से सुरक्षित राजा ही राज्य की रक्षा कर सकता है। राजा सर्वप्रथम अपनी रानियों और पुत्रों से अपनी रक्षा का प्रबन्ध करे।

संस्कृत-व्याख्या—राजा = नृपः, आसन्नेभ्यः = समीपस्थस्वबन्धुभ्यः, परेभ्यः = शत्रुभ्यश्च, रक्षितः, राज्यं रक्षति = रक्षितुं प्रभवति। पूर्वम् = सर्वप्रथमम्, दारेभ्यः = स्त्रीभ्यः, पुत्रेभ्यः = सुतेभ्यः, आत्मनं रक्षेदिति।

विशेष—१. राजा के लिए सर्वप्रथम संकट-स्थान रानियां और राजपुत्र होते हैं, क्योंकि वे ही महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए राजा का अहित कर सकते हैं।

दाररक्षणं निशान्तप्रणिधौ वक्ष्यामः॥ २॥

पुत्ररक्षणं जन्मप्रभृति राजपुत्रान् रक्षेत्। कर्कटकसधर्माणो हि जनकभक्षा राजपुत्राः॥ ३॥

अनुवाद—१. रानियों से किस प्रकार राजा को आत्मरक्षा करनी चाहिये, इसके उपाय आगे निशान्तप्रणिधि प्रकरण में बताये जायेंगे।

२. आत्मरक्षा के लिए राजा को चाहिए कि वह जन्म से ही राजपुत्रों पर कड़ी निगरानी रखे, क्योंकि केकड़े की भाँति राजपुत्र भी अपने पिता के भक्षक होते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—दाररक्षणम् = स्त्रीभ्यः स्वात्मरक्षणं कथमिति, निशान्तप्राणिधौ = एतन्नामके प्रकरणेऽग्रे, वक्ष्यामः = कथयिष्यामः।

पुत्ररक्षणं कथमिति, जन्मप्रभृति = जन्मकालत एव, राजपुत्रान् = नृपसुतान्, रक्षेत् = स्ववशं स्थापयेत्। हि = यतः, राजपुत्राः = नृपसुताः, कर्कटकसधर्माणः = कुलीरसमानस्वभावाः, जनकभक्षाः = पितृघातका जायन्ते।

विशेष—१. 'निशान्तप्रणिधि' प्रकरण आगे बीसवें अध्याय में वर्णित है।

२. केकड़े आदि जन्तु भूख लगने पर अपने पिता आदि सम्बन्धियों को ही खा जाते हैं, उसी प्रकार राजपुत्र भी अपनी महत्त्वाकांक्षा बढ़ने पर अथवा स्वार्थ की पूर्वि के लिए लोभ में आकर अपने पिता को ही मार डालते हैं। इसलिए राजा को उनके आचरण पर प्रारम्भ से ही निगरानी रखनी चाहिए।

तेषामजातस्नेहे पितर्युपांशुदण्डः श्रेयानिति भारद्वाजः॥ ४॥

अनुवाद—इस सम्बन्ध में आचार्य भारद्वाज का कहना है कि 'यदि राजकुमारों में पितृभक्ति की भावना न दिखाई दे तो उनका चुपचाप वध कर डालना ही श्रेयस्कर है।'

संस्कृत-व्याख्या—तेषाम् = राजपुत्राणाम्, पितरि = जनके, अजातस्नेहे = स्नेहाभावे सति, उपांशुदण्डः = रहसि वधः, श्रेयात् = प्रशस्यतरः, इति भारद्वाजः = भारद्वाजमतं वर्तते।

विशेष—भारद्वाज का मत राजपुत्रों का चुपचाप वध कर देना बताया गया है, जो कि अतीव कठिन और पाप-कर्म है।

नृशंसमदृष्टवधः क्षत्रविनाशश्चेति विशालाक्षः। तस्मादेकस्थानावरोधः श्रेयानिति॥ ५॥

अनुवाद—विशालाक्ष आचार्य का कहना है कि निरपराध बालकों का इस तरह वध करना घोर पाप है और इससे क्षत्रियों का वंश सर्वथा नष्ट हो जायेगा। इसलिए स्नेहहीन पुत्रों को किसी स्थान पर कैद करके रखना ही कल्याणकारी अर्थात् उचित है।

संस्कृत-व्याख्या—अदृष्टवधः = रहसि मारणम्, नृशंसम् = अतिक्रूरकर्म, क्षत्रविनाशः = क्षत्रियकुलविघातः, च इति विशालाक्षः = एतन्नामकस्य आचार्यस्य मतम्। तस्मात् = पापकर्मनिवृत्तये क्षत्रियकुलरक्षणाय च, एकस्थानावरोधः = अन्तःपुरे वा क्वचिदन्यत्रावरोधनम्, श्रेयान् = समुचितोपाय इति।

विशेष—१. विशालाक्ष आचार्य ने निरपराध बालकों अर्थात् राजपुत्रों का वध करना पापकर्म बतलाया है।

२. यदि बालकों का माता-पिता के प्रति स्नेह न रहे, उनसे वे प्रीति न रखें, तो उन्हें कहीं सुरक्षित स्थान पर कैद कर देना चाहिए। इस तरह विशालाक्ष पूर्वोक्त उपांशुदण्ड से सहमत नहीं हैं।

अहिभयमेतदिति पाराशराः। कुमारो हि विक्रमभयान्मां पिता रुणद्धीति ज्ञात्वा तमेवाङ्के कुर्यात्। तस्मादन्तपालदुर्गे वासः श्रेयानिति॥ ६॥

अनुवाद—पाराशर आचार्य का मत है कि यह तो सर्पभय के समान है। क्योंकि राजकुमार को जब यह पता चलेगा कि पिता ने मुझे पराक्रम के भय (अपने वध के भय से) कैद में डाल रखा है, तो पास में रहता हुआ पिता का वध सरलता से कर सकता है। इसलिए सीमा पर स्थित दूरस्थ दुर्ग में उसे रखना श्रेयस्कर है।

संस्कृत-व्याख्या—पाराशराः = तन्नाम आचार्याः, एतत् = पुत्रस्य स्वसमीपेऽवरोधनम्, अहिभयमिति = सर्पसहवासवद् भयावहमिति मन्यन्ते। हि कुमारः = राजपुत्रः, पिता = राजा, मां विक्रमभयात् = स्ववधभयात्, रुणद्धि = निवारयति कारागारे, इति ज्ञात्वा = विज्ञाय कुमारः, तमेव = स्वपितरं राजानमेव, अङ्के कुर्यात् = समीपदेशे स्वगृहे वधं कुर्यात्। तस्मात् = एतत्कारणात्, अन्तपालदुर्गे = राष्ट्रसीमपालकाधिष्ठिते दुर्गे, वासः = तस्यावासः, श्रेयान् = कल्याणकारी, इति समुचितोपायः।

विशेष—१. सर्प घर में रहे, तो कभी भी आसानी से डस लेता है। उसी प्रकार राजपुत्र को घर या समीप ही कैद में रखा जायेगा, तो वह सरलता से प्रतिशोध लेगा। यह पाराशर आचार्य के अनुयायियों का मत है। इससे विशालाक्ष के मत का विरोध किया गया है।

२. राजकुमार को जब वास्तविकता ज्ञात होगी, तो वह समीपस्थ होने से राजा का वध करने में सक्षम हो जायेगा। इसलिए उसे दूर स्थान पर कैद करके रखना श्रेयस्कर है।

औरभ्रकं भयमेतदिति पिशुनः। प्रत्यापत्तेर्हि तदेव कारणं ज्ञात्वान्तपालसखः स्यात्। तस्मात् स्वविषयादपकृष्टे सामन्तदुर्गे वासः श्रेयानिति॥ ७॥

अनुवाद—आचार्य पिशुन (नारद) का कहना है कि दूरस्थ दुर्ग में राजपुत्र को रखना मेंढे के भय के समान है। राजकुमार को जब अपने कैद होने का कारण विदित हो जायेगा तो वह अपनी योजना को पूरा करने के लिए दुर्गपाल को मित्र बनाकर पिता पर आक्रमण कर सकता है। इसलिए राजकुमार को राज्य की सीमा से बाहर किसी पड़ोसी (मित्र) राजा के दुर्ग में रखना ही अधिक उपयुक्त है।

संस्कृत-व्याख्या—पिशुनः = नारदः कथयति, औरभ्रकम् = उरभ्रस्य मेषस्येदं कर्म औरभ्रम्, औरभ्रमिव औरभ्रकम्, भयमस्ति एतत्कार्यमिति। हि प्रत्यापत्तेः = पितृद्रोहप्रकृत्यनिवर्तनात्, तदेव कारणम् = विक्रमशंकारूपहेतुः, अन्तपालसखः = अन्तपालसहायः, स्यात् = भवेत्। तस्मात् = भयनिवारणात्, स्वविषयात् = स्वजनपदात्, अपकृष्टे = सुदूरे, सामन्तदुर्गे = विषयान्तरस्य राज्ञो दुर्गे, तस्य वासः श्रेयान् = उचितोपायः, इति।

विशेष—१. जिस प्रकार मेंढा आक्रमण करने से पूर्व कुछ पीछे हट जाता है और पुनः दुगुने वेग से झपट पड़ता है, उसी प्रकार सीमापाल के दुर्ग में रहने से राजकुमार उससे मित्रता कर तथा उसकी सहायता से अवसर मिलते ही आक्रमण कर सकता है। अतः नारद ने राजपुत्र को सीमापाल के दुर्ग में कैद करके रखना मेष-भय के समान बताया है।

२. राजा को उक्त भय से बचने के लिए अपने समीपवर्ती राज्य के सामन्त राजा के दुर्ग में पिता के प्रति स्नेह न रखने वाले पुत्र को रखना चाहिए, ताकि वह कोई षड्यन्त्र रचने में सफल न हो सके। यह आचार्य नारद का मत है।

वत्सस्थानमेतदिति कौणपदन्तः। वत्सेनेव हि धेनुं पितरमस्य सामन्तो दुह्यात्। तस्मान्मातृबन्धुषु वासः श्रेयानिति॥ ८॥

अनुवाद—कौणपदन्त (भीष्म) आचार्य का मत है कि यह तो बछड़े को दूसरे के लिए सौंपने के समान है। बछड़े के माध्यम से जैसे कोई व्यक्ति गाय को दुह सकता है, उसी प्रकार सामन्त राजा राजपुत्र के माध्यम से उसके पिता (राजा) को दुह लेता है। इसलिए राजकुमार को ननिहाल में रख देना ही उचित है।

संस्कृत-व्याख्या—एतत् = सामन्तदुर्गे कुमारवासस्थानम्, वत्सस्थानम् = गोवत्सबन्धनस्थानतुल्यम्, इति कौणपदन्तः = आचार्यभीष्मः कथयति। हि अस्य =

कुमारस्य, पितरम् = राजानमित्यर्थः, वत्सेन धेनुमिव = गां यथा, सामन्तः = विषयान्तरस्य राजा, दुह्यात् = धनादिस्वाभीप्सितजातं स्वायत्तीकुर्यात्। तस्मात्कारणात्, मातृबन्धुषु = मातृकुलजनेषु मध्ये, वासः = कुमारस्यावासः, श्रेयानिति = कल्याणकरमिति।

विशेष—१. जिस प्रकार गाय के बछड़े को दूसरों के हाथ सौंप देने से वह कभी भी इच्छानुसार गाय को दुह सकता है, उसी प्रकार राजकुमार का संरक्षक पड़ौसी राजा राजकुमार को माध्यम बनाकर इच्छानुसार धन-सम्पत्ति आदि की माँग कर दोहन कर सकता है। इसलिए वहाँ रखना उचित नहीं है, यह आचार्य कौणपदन्त का मत है।

२. मातृबन्धु का आशय राजकुमार की माता के भाई आदि हैं।

ध्वजस्थानमेतदिति वातव्याधिः। तेन हि ध्वजेनादितिकौशिकवदस्य मातृबान्धवा भिक्षेरन्। तस्माद् ग्राम्यधर्मेष्वेनमवसृजेयुः। सुखोपरुद्धा हि पुत्राः पितरं नाभिद्रुह्यन्तीति॥ ९॥

अनुवाद—आचार्य वातव्याधि (उद्धव) का कहना है कि यह ध्वजा के समान है। क्योंकि मातृकुल वाले अपनी आमदनी का वैसा ही साधन बनाकर उपयोग कर सकते हैं, जैसा कि अदिति नाम की भिक्षुणी और कौशिक नाम के सपेरे जीविका-निर्वाह के लिए अपने पेशेवर कौतुकों को दिखाते फिरते हैं। इसलिए राजकुमार को, उसकी इच्छानुसार विषय-भोग में लिप्त रहने देना चाहिए, क्योंकि विषय-वासनाओं में ग्रस्त राजकुमार पिता के साथ द्रोह नहीं कर पाता है।

संस्कृत-व्याख्या—ध्वजस्थानमेतत् = मातृबन्धुगृहे राजकुमारस्य वासस्थानं तु ध्वजसादृश्यमिति, वातव्याधिः = उद्धवः कथयति। हि तेन ध्वजेन = जीविकाचिह्नेन, अदितिकौशिकवत् = नानादेवप्रकृतिप्रदर्शनेन भैक्ष्यमर्जयन्ती या सा भैक्षिकी देवाविर्भावकत्वसादृश्याददितिः, कौशिकी व्यालग्राही च, तद्वत्, अस्य मातृबान्धवाः = मातुलादयः, भिक्षेरन् = स्वाभीष्टं याचेरन्। तस्मात्कारणात् एतम् = राजकुमारम्, ग्राम्यधर्मेषु = स्त्रीसेवनादिव्यसनेषु, अवसृजेयुः = यथेच्छं सञ्चरणाय प्रवर्तेयुः। हि सुखोपरुद्धाः = वैषयिकानन्दं यथेच्छभवसंविधानेन निरुद्धाः, पुत्राः, पितरम् = स्वजनकं राजानं वा, नाभिद्रुह्यन्ति = विद्रोहाचरणं न कुर्वन्ति।

विशेष—१. ध्वजस्थान का आशय है कि ध्वजा आदि विशेष चिह्नों एवं साधनों से या देवताओं की प्रतिकृतियों को एकत्र करके भिक्षुणियाँ तथा सपेरे अपनी जीविका निर्वाह करते हैं, उसी प्रकार मातृकुल के लोग राजकुमार को अपनी आय के साधन रूप में प्रयुक्त कर सकते हैं। वातव्याधि का मत है कि मातृकुल में राजकुमार का वास उचित नहीं है।

२. ग्राम्य धर्म का आशय समस्त विषय-वासनाओं की आसक्ति है। विषयवासनाग्रस्त राजकुमार को विद्रोह करने का अवसर नहीं मिल सकता।

जीवन्मरणमेतदिति कौटिल्यः। काष्ठमिव हि घुणजग्धं राजकुलमविनीतपुत्रमभियुक्तमात्रं भज्येत। तस्मादृतुमत्यां महिष्याम्

ऋत्विजश्चरुमैन्द्राबार्हस्पत्यं निर्वपेयुः। आपन्नसत्त्वायां कौमारभृत्यो गर्भभर्मणि प्रजने च वियतेत। प्रजातायाः पुत्रसंस्कारं पुरोहितः कुर्यात्। समर्थं तद्विदो विनयेयुः॥ १०॥

अनुवाद—यह तो उनका जीवन मरण के समान है—ऐसा आचार्य कौटिल्य का मत है। घुन से खाई गई या काटी हुई लकड़ी के समान अविनीत राजपुत्रों वाला राजकुल बिना युद्ध आदि के ही विनष्ट हो जाता है। इसलिए राजा को चाहिए कि जब रानी ऋतुमती हो, तो (संतति की ऐश्वर्य, विद्या, बुद्धि के निमित्त) ऋत्विक्, इन्द्र और बृहस्पति आदि देवताओं के लिये हविदान करें। जब महारानी गर्भवती हो जाय तो कौमारभृत्य अंग के ज्ञात शिशु-चिकित्सकों के निर्देशानुसार गर्भ की पुष्टि तथा उसके सुखपूर्वक प्रजनन के लिए यत्न किया जाय। राजकुमार के पैदा हो जाने पर पुरोहित विधिपूर्वक उसका संस्कार करें। जब वह समझने योग्य हो जावे तो विभिन्न विषयों के पारंगत विद्वान् उसको शिक्षा दें।

संस्कृत-व्याख्या—एतत् = वातव्याधिमतं ग्राम्यधर्मावसनम्, जीवनमरणम् = राजपुत्रस्य जीवत एव मरणमस्तीति, कौटिल्यः = ग्रन्थकर्तुः स्वमतम्। हि घुणजग्धम् = घुणचर्वितम्, काष्ठम् = दारु इव, अविनीतपुत्रम् = शास्त्रसदाचाराशिक्षितं राजपुत्रम्, राजकुलम् = राजवंशम्, अभियुक्तमात्रं भज्येत = अप्रयुक्तविक्रममपि परिध्वस्तं कुर्यात्। तस्मात् = पूर्वपक्षेषु दोषदर्शनात्, ऋतुमत्याम् = आर्तवदर्शनाद् गर्भाधानयोग्यवत्याम्, महिष्याम्, ऋत्विजः = यज्ञकर्त्तारः, ऐन्द्रबार्हस्पत्यं चरुम् = इन्द्रबृहस्पतिद्वन्द्वदेवताकं हविः, निर्वयेयुः = साधपेयुः। आपन्नसत्त्वायाम् = जातगर्भायाम्, कौमारभृत्यः = शिशुचिकित्सकः, गर्भकर्मणि = गर्भपोषणे, प्रजने = प्रसवे च, वियतेत = विशिष्यं यत्नं कुर्यात्। प्रजातायाः = प्रसूतायाः, पुरोहितः, पुत्रसंस्कारम् = प्रसवोत्तरसंशोधनादिकं कर्म, कुर्यात् = विध्यनुसारं कुर्यात्। समर्थम् = ज्ञानधारणयोग्यं च पुत्रम्, तद्विदः = विद्यासु पारंगताः, विनयेयुः= तं शिक्षयेयुः।

विशेष—१. आचार्य कौटिल्य ने राजकुमारों को विषय-वासनाओं में फँसा देना साक्षात् मरण बताया है। ऐसे राजकुमार शीघ्र ही काल के शिकार बन जायेंगे, अतः उन्हें विषयासक्त बनाना उचित नहीं है।

२. घुन जिस लकड़ी को खा लेता है, वह एकदम कमजोर हो जाती है तथा जल्दी ही नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार अविनयी राजकुमार राजवंश को नष्ट कर देते हैं, क्योंकि युद्धादि के बिना अभियोग लगाने से ही उनका वंश नष्ट हो जाता है।

३. बालक को गर्भस्थकाल से जन्मकाल तक विभिन्न संस्कारों से शुद्ध करना और ज्ञान ग्रहण-योग्य होने पर सुशिक्षा प्रदान करना महत्त्वपूर्ण रहता है। इससे राजकुमार में अच्छे आचरण एवं पवित्र व्यवहार करने की रुचि जागृत होती है। इसमें कौटिल्य ने लोक-आस्था एवं मनोविज्ञान का सहारा लेकर बालक को सुसंस्कारित करने का निर्देश दिया है।

सत्रिणामेकश्चैनं मृगयाद्यूतमद्यस्त्रीभिः प्रलोभयेत्—पितरि विक्रम्य राज्यं गृहाणेति। तदन्यः सत्री प्रतिषेधयेद् इत्याम्भीयाः॥ ११॥

अनुवाद—आचार्य आम्भ के मतानुयायियों का कहना है कि सत्रियों (गुप्तचरों) में से कोई एक सत्री राजकुमार को मृगया, द्यूत, मद्य और स्त्रियों का प्रलोभन दे। यह भी कहे कि पिता पर आक्रमण करके तुम राज्य को ले लो, फिर मौज करो। इस बात का दूसरा सत्री विरोध करें।

संस्कृत-व्याख्या—सत्रिणाम् = गुप्तचराणाम्, एकः = कोऽपि चैकः, एनं मृगयाद्यूतमद्यस्त्रीभिः = एभिः प्रलोभनसाधनैः प्रलोभयेत् = प्रलोभ्योपदिशेत्, पितरि = राज्ञि, विक्रम्य = आक्रम्य, राज्यं गृहाण = स्वायत्तीकुरु इति। तदन्यः = कोऽप्यपरः, सत्री प्रतिषेधयेत् = निषेधयेद् इति।

विशेष—आम्भ आचार्य के अनुयायियों ने उपस्थित कर राजकुमार में कुबुद्धि जगाकर उसे राजा के विरुद्ध करने या न करने की कूटनीति का समर्थन किया है।

महादोषमबुद्धबोधनमिति कौटिल्यः। नवं हि द्रव्यं येन येनार्थजातेनोपदिह्यते तत्तदाचूषति। एवमयं नवबुद्धिर्यद्यदुच्येत तत्तच्छास्त्रोपदेशमिवाभिजानाति। तस्माद् धर्ममर्थं चास्योपदिशेन्नाधर्ममनर्थं च॥ १२॥

अनुवाद—आचार्य कौटिल्य के मतानुसार राजकुमार के भीतर यह कुबुद्धि जगाना महान् दोष है। क्योंकि जैसे मिट्टी का नया बर्तन घी, तेल आदि जिस भी नये द्रव्य का स्पर्श पाकर उसी को चूस लेता है, ठीक वैसे ही, अपरिपक्व बुद्धि वाले बालक को जो कुछ भी सिखाया जाता है, उसको वह शास्त्र-उपदेश की तरह मान लेता है। इसलिये सरलमति बालकों को धर्म और अर्थ का ही उपदेश देना चाहिए, अधर्म और अनर्थ का नहीं।

संस्कृत-व्याख्या—अबुद्धबोधनम् = अज्ञातस्य पितृद्रोहरूपस्य पापकर्मण उपदेशः, महादोषम् = परमानर्थः, इति कौटिल्यः कौटल्यो वा। हि = यतः, नवं द्रव्यम् = मृद्भाण्डादिकम्, येन येनार्थजातेन = जलघृतादिना, उपदिह्यते = लिप्यते, तत्तद् = तत्तदर्थजातम्, आचूषति = आपिबति, एवम् = अनेन प्रकारेण, नवबुद्धिः = सदसद्व्यवहाराप्रविष्टबुद्धिः, अयम् = राजपुत्रः, यद्यद् उच्यते = कथ्यते, तत्तत् = तत्सर्वमपि, शास्त्रोपदेशमिव, अभिजानाति = हृदये निवेशयति। तस्मात् = यथोक्तकारणात्, अस्य धर्ममर्थं च = धर्मार्थपुरुषार्थद्वयम्, उपदिशेत्, अधर्मम् = पितृद्रोहादिकम्, अनर्थम् = मृगयाद्यूतपानादिकं च, नोपदिशेत्।

विशेष—राजपुत्र में कुबुद्धि को जगाना इसलिए अनुचित है कि इससे वह कर्त्तव्याकर्त्तव्य से विमूढ़ हो जाता है। अधर्माचरण का उपदेश तो वैसे भी अनुचित ही है।

सत्रिणस्त्वेनं तव स्म इति वदन्तः पालयेयुः। यौवनोत्सेकात् परस्त्रीषु मनः कुर्वाणमार्याव्यञ्जनाभिः स्त्रीभिरमेध्याभिः शून्यागारेषु रात्रावुद्वेजयेयुः। मद्यकामं योगपानेनोद्वेजयेयुः। द्यूतकामं कापटिकैः पुरुषैरुद्वेजयेयुः। मृगयाकामं प्रतिरोधकव्यञ्जनैस्त्रासयेयुः। पितरि विक्रमबुद्धिं तथेत्यनुप्रविश्य भेदयेयुः। अप्रार्थनीयो राजा, विपन्ने घातः, सम्पन्ने नरकपातः, संक्रोशः प्रजाभिरेकलोष्ट-वधश्चेति॥ १३॥

अनुवाद—सभी (गुप्तचर) लोग 'हम आपके हैं' ऐसा कहते हुए राजपुत्र का पालन करें। यदि राजकुमार का युवा मन परस्त्री के लिए बेचैन हो जावे, तो गुप्तचर आर्यावेश धारण की हुई अपवित्र, घृण्य स्त्रियों को रात्रि में एकान्त में उसके पास भेजकर उसके मन में घृणा एवं खिन्नता पैदा करायें। मद्यपान की रुचि रखने पर कोई मिलावट वाला मद्य पिलाकर उसे उद्विग्न करें—अरुचि जगावें, जुआ खेलने की इच्छा वाले राजपुत्र को कापटिक लोगों के द्वारा उद्विग्न करावें। शिकार खेलने में रुचि रखने वाले राजपुत्र को प्रतिरोधक (चोर, डाकू आदि) का वेश धारण करने वाले लोगों (गुप्तचरों) के द्वारा भयभीत करा दें। पिता पर आक्रमण करने की इच्छा करने वाले राजपुत्र को पहले साथ देकर बाद में भेद उत्पन्न कर दें तथा कहें कि राजा के साथ कभी द्वेष नहीं करना चाहिए, क्योंकि असफल रहने पर तुम्हारी मृत्यु अवश्यम्भावी है, जीत गये तो पितृघातक होने से नरक भोगना पड़ेगा, प्रजा में निन्दा के पात्र बनोगे और तब यह भी सम्भव है कि प्रजा एकमत होकर तुम्हारा वध भी कर दे।

संस्कृत-व्याख्या—सत्रिणस्तु = गुप्तचराश्च, तव स्म = वयं तव सेवकाः, इति वदन्तः = कथयन्तः, एनम् = राजपुत्रम्, पालयेयुः। यौवनोत्सेकात् = यौवनमदात्, परस्त्रीषु मनः = परस्त्रीकामुको यदि राजपुत्रः स्यात्तदा, आर्यव्यञ्जनाभिः = अभिजातस्त्रीवेषधारिणीभिः, अमेध्याभिः = अशुचिभिः, स्त्रीभिः, रात्रौ= निशायाम्, शून्यागारेषु = एकान्तभवनेषु तमुद्वेजयेयुः = जुगुप्सयेयुः। मद्यकामम् = मद्यसेवनोत्सुकं राजपुत्रम्, योगपानेन = विरसद्रेव्यमिश्रितेन मद्येन, उद्वेजयेयुः। द्यूतकामं राजपुत्रम्, कापटिकैः = छलदेवनदक्षैः पुरुषैः = गुप्तचरैः, उद्वेजयेयुः। मृगयाकामं राजपुत्रम्, प्रतिरोधकव्यञ्जनैः = चौरवेषधारिगुप्तचरैः, त्रासयेयुः = भययुक्तं कुर्युः। पितरि = जनके राज्ञि वा, विक्रमबुद्धिम् = विक्रम्य आक्रम्य हनने बुद्धिर्यस्य तं राजपुत्रम्, तथा = तत्सहयोगञ्च कृत्वेति, अनुप्रविश्य = हृदये प्रविश्य, भेदयेयुः = भेदबुद्ध्या ततो निवर्तयेयुः। राजा अप्रार्थनीयः = अद्वेष्यः, विपन्ने = पितृवधसमुद्यमे विफलिते सति, घातः = वधो भवेत्, सम्पन्ने = पितृवधफलिते सति, नरकपातः = नरके पतनं पितृवधपातकिनस्तव, संक्रोशः = लोकनिन्दा, प्रजाभिः = समुदिताभिः जनताभिः, एकलोष्टवधः = एकैकमृत्खण्डप्रक्षेपणेन घातश्च तव भवेदिति कथयेयुः।

विशेष—१. गुप्तचरों के द्वारा राजपुत्र को सही मार्ग पर लाने के लिए अनेक उपाय किये जायें। वे राजपुत्र के रक्षक सहयोगी बनकर ऐसी युक्तियाँ अपनावें कि वह राजा पर आक्रमण करने का अथवा अविवेक का आचरण नहीं कर सके।

२. गुप्तचरों के द्वारा राजपुत्र की सभी इच्छाओं, रुचियों आदि का पूरा ध्यान रखकर उसे अनुशासित रखने का प्रयास करना चाहिए, यही कौटिल्य के मत का सार है।

विरागं प्रियमेकपुत्रं वा बध्नीयात्। बहुपुत्रः प्रत्यन्तमन्यविषयं वा प्रेषयेद्यत्र गर्भः पण्यं डिम्बो वा न भवेत्। आत्मसम्पन्नं सैनापत्ये यौवराज्ये वा स्थापयेत्॥ १४॥

अनुवाद—यदि एक ही प्रिय पुत्र हो, और वह भी पितृद्रोही निकले तो उसे कैद कर देना चाहिए। यदि पुत्र अधिक हों तो उस द्रोही पुत्र को सीमांत प्रदेश अथवा किसी दूसरे देश में प्रवासित कर देना चाहिए, जहाँ कि उचित अन्न, वस्त्र और प्रजा का सहयोग प्राप्त न हो। जो राजपुत्र आत्मगुण सम्पन्न हो, उसको सेनापति या युवराज के उच्च पद पर नियुक्त किया जावे।

संस्कृत-व्याख्या—विरागम् = स्नेहरहितं पितृद्वेष्यं वा, प्रियमेकपुत्रम् = एकमेव प्रियं राजपुत्रम्, बध्नीयात् = कारागारे स्थापयेत्। राजा यदि बहुपुत्रस्तदा पितृविरोधिनं पुत्रम्, प्रत्यन्तम् = म्लेच्छदेशम्, अन्यविषयम् = अन्यदेशं वा, प्रेषयेत्, यत्र = यस्मिन् देशे स्थाने वा, गर्भः = राजपुत्रोचितमन्नम्, पण्यम् = तादृशं वसनादिकमापणलभ्यं भोग्यवस्तु डिम्बः = राजपुत्रनिमित्तं प्रकृतीनां विप्लवो वा, न भवेत् = न स्यात्। राजा आत्मसम्पन्नम् = आत्मगुणसम्पन्नं राजपुत्रम्, सैनापत्ये = सेनापतिपदे, यौवराज्ये = युवराजपदे वा, स्थापयेत् = नियोजयेत्।

विशेष—१. 'आत्मसम्पन्नम्' का आशय अपने समान ही पराक्रमी, प्रजावत्सल एवं गुण-सम्पन्न पुत्र से है। ऐसे पुत्र को सम्मानित एवं प्रोत्साहित करना चाहिए।

बुद्धिमानाहार्यबुद्धिर्दुर्बुद्धिरिति पुत्रविशेषाः। शिष्यमाणो धर्मार्थावुपलभते चानुतिष्ठति च बुद्धिमान्। उपलभमानो नानुतिष्ठत्याहार्यबुद्धिः। अपायनित्यो धर्मार्थद्वेषी चेति दुर्बुद्धिः॥ १५॥

अनुवाद—राजपुत्रों की तीन श्रेणियाँ हैं—(1) बुद्धिमान्, (2) आहार्यबुद्धि और (3) दुर्बुद्धि। जो धर्म और अर्थविषयक उपदेश को उचित रीति से ग्रहण करके तदनुसार आचरण करता है, वह 'बुद्धिमान्' है। जो धर्म और अर्थ को समझ लेता है, किन्तु तदनुसार अपना आचरण नहीं बना पाता, उसे 'आहार्यबुद्धि' कहते हैं। जो बुराइयों में लीन तथा धर्म और अर्थ से द्वेष रखता है, वह 'दुर्बुद्धि' है।

संस्कृत-व्याख्या—बुद्धिमान् आहार्यबुद्धिः दुर्बुद्धिश्च इति पुत्रविशेषाः = पुत्रभेदाः। धर्मार्थौ शिष्यमाणः = धर्मार्थज्ञानमुपदिश्यमानः, उपलभते = तदुपदेशं गृह्णाति, अनुतिष्ठति

= आचरति च, स बुद्धिमान् पुत्रः। उपलभ्यमानः = धर्मार्थज्ञानमात्रवान्, न अनुतिष्ठति = तदनुष्ठानविमुखो भवति, स आहार्यबुद्धिः, अपायनित्यः = नित्यप्रमादी, धर्मार्थद्वेषी = धर्मार्थद्वेषणशीलश्च, दुर्बुद्धिः = दुष्टबुद्धिः, इति त्रयाणां लक्षणम्।

विशेष—राजकुमारों की तीन श्रेणियाँ बतलायी गई हैं, इससे राजा को राजकुमार के गुणों एवं दोषों का निर्धारण करने में सुविधा रहेगी।

स यद्येकपुत्रः पुत्रोत्पत्तावस्य वियतेत। पुत्रिकापुत्रानुत्पादयेद्वा। वृद्धस्तु व्याधितो वा राजा मातृबन्धुकुल्यगुणवत्सामन्तानामन्यतमेन क्षेत्रे बीजमुत्पादयेत्। न चैकपुत्रमविनीतं राज्ये स्थापयेत्॥ १६॥

अनुवाद—यदि एक ही दुर्बुद्धि पुत्र हो तो उससे ऐसे पुत्र की उत्पत्ति में विशेष प्रयास करना चाहिए, जो राजा बनने के योग्य हो। ऐसा न हो सके तो पुत्री के पुत्र को राज्याधिकार के योग्य बनावें। यदि राजा वृद्ध हो गया हो, या सदैव रुग्ण ही रहता हो तो अपने ममेरे भाई अथवा अपने ही कुल के किसी बन्धु से या किसी गुणवान् सामन्त से अपनी स्त्री में नियोग कराकर पुत्र पैदा करावे। परन्तु इकलौते अयोग्य-अशिक्षित पुत्र को राज्यभार न सौंपे।

संस्कृत-व्याख्या—सः = दुर्बुद्धिः पुत्रः, एकपुत्रो यदि = एक एव राज्ञः पुत्रश्चेत्, अस्य = दुर्बुद्धेः, पुत्रोत्पत्तौ = पुत्रस्य राजार्हस्योत्पत्तौ, वियतेत = विशेषेण प्रयत्नं कुर्यात्। वा = अथवा, पुत्रिकापुत्रान् = पुत्रिकायाः पुत्रान् सुतासुतान्, उत्पादयेत् = राज्यार्थं संयोजयेत्। वा = अथवा अदुहितृको राजा, वृद्धः व्याधितः = रुग्णः, गर्भाधानेऽक्षमश्चेत् = तदा मातृबन्धुकुल्यगुणवत्सामन्तानाम् = मातृबन्धोः स्वकुलजातस्य गुणवत्सामन्तस्य वा, अन्यतमेन = केनापि एकेन च, क्षेत्रे = स्वमहिष्याम्, बीजमुत्पादयेत् = वीर्याधाननियोगेन पुत्रोत्पत्तिं कारयेत्। परन्तु एकपुत्रमविनीतम् = अशिक्षितयोग्यं चैकपुत्रम्, राज्ये न स्थापयेत् = न निवेशयेत्।

विशेष—१. राजा का यदि एकमात्र पुत्र हो और वह दुर्विनीत हो, तो राजा अपनी पुत्री का विवाह जिससे करावे, उससे यह वचन ले कि इससे जो प्रथम पुत्र होगा, वह मेरा दत्तक पुत्र होगा, उसे मैं ले लूँगा और उसे ही वह राजा बनावे।

२. राजा का दुर्बुद्धि एकमात्र पुत्र हो, राजा वृद्धता, रोग अथवा अन्य कारणों से अन्य पुत्रोत्पन्न करने में असमर्थ हो, तो वह नियोग द्वारा अपनी रानी के गर्भ से पुत्र उत्पन्न करावे। नियोग से गर्भाधान कराने वाला व्यक्ति चाहे अपना सम्बन्धी हो या कोई सामन्त हो, परन्तु राजा दुर्बुद्धि पुत्र को कभी राज्यभार न सौंपे।

बहूनामेकसंरोधः पिता पुत्रहितो भवेत्।
अन्यत्रापद ऐश्वर्यं ज्येष्ठभागि तु पूज्यते॥ १७॥

अनुवाद—यदि अनेक पुत्रों में एक पुत्र दुर्बुद्धि हो तो उसे किसी दूसरे देश में भेज कर रोक रखे। वैसे राजा को चाहिए कि सर्वदा ही वह अपने पुत्रों की कल्याण-कामना

करता रहे। यदि सभी पुत्र राजा को एक समान प्रिय हों, तो उस अवस्था में वह ज्येष्ठ पुत्र को ही राजा बनावे।

संस्कृत-व्याख्या—बहूनाम् = एकाधिकानां पुत्राणां मध्ये, एकसंरोधः= एकस्य दुर्बुद्धेः संरोधः प्रत्यन्तादिष्ववरोधः कर्त्तव्यः, पिता आपदोऽन्यत्र = अनापदि, पुत्रहितः = पुत्रानुकूलवृत्तिः भवेत्, बहुषु पितृप्रियेषु पुत्रेषु सत्सु, ऐश्वर्यम् = राज्यत्वम्, तु, ज्येष्ठभागि = ज्येष्ठपुत्राश्रयमेव, पूज्यते = प्रशस्यते।

विशेष—१. अनेक पुत्रों के मध्य में एक दुर्बुद्धिपुत्र होने पर राजा उसे किसी सामन्त आदि के देश में भेजकर वहीं रोक रखे।

२. अनेक पुत्र हों और सभी प्रिय हों, तो ज्येष्ठ पुत्र को ही राज्य का उत्तराधिकार दिया जाना उचित रहता है। ऐसा करने पर राजा का सम्मान गौरव बढ़ता है।

कुलस्य वा भवेद्राज्यं कुलसङ्घो हि दुर्जयः।
अराजव्यसनाबाधः शश्वदावसति क्षितिम्॥ १८॥

अनुवाद—अथवा सम्पूर्ण कुल (सभी राजकुमारों का) सम्मिलित राज्य होवे, क्योंकि कुल समुदाय सरलता से (शत्रु द्वारा) नहीं जीता जा सकता है। वह सामुदायिक शासन राज्य की विपत्तियों से रहित होकर सदा पृथ्वी का पालन करता रहता है।

संस्कृत-व्याख्या—वा = अथवा , कुलस्य = राजपुत्रसंघस्य, राज्यं भवेत्, बहुपुत्रनेतृकं राज्यं कार्यमित्यर्थः, हि = यतः, कुलसंघः = कुलात्मकः समुदायः दुर्जयः = जेतुमशक्यो भवति। अराजव्यसनाबाधः = राजव्यसनदोषनिमित्त आबाधो जनपीडा राज्यव्यसनाबाधः, तस्याभावः, शश्वत् = सर्वदा, क्षितिम् = भूमिम्, आवसति = अधितिष्ठति, राज्येऽनुवर्तते इत्यर्थः।

विशेष—१. आचार्य कौटिल्य का मत है कि यदि राजा के सभी पुत्र योग्य एवं गुणवान् हों और वे सब उसे प्रिय हों, तो सबका संघ बनाकर राज्यभार उन्हें सौंपना चाहिए और उन्हें भी उसी तरह राज्य का संचालन करना चाहिए। ऐसे कुलसंघ को शत्रु कभी नहीं जीत सकता है।

२. इसका अन्य लाभ यह है कि यदि कुलसंघ में किसी एक पर आपत्ति आ जाती है तो दूसरा राज्यभार सम्भाल लेता है। इस प्रकार शासन भी ठीक चलता रहता है और प्रजा को भी किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता है। परन्तु एक ही पुत्र राजा बने और उस पर विपत्ति आ जावे तो राजकुल के साथ ही प्रजा को भी दुःख उठाने पड़ते हैं।

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे राजपुत्ररक्षणं सप्तदशोऽध्यायः॥

❑ ❑ ❑

अष्टादशोऽध्यायः

चतुर्दशं प्रकरणम् — अवरुद्धवृत्तम्, अवरुद्धे च वृत्ते

राजपुत्रः कृच्छ्रवृत्तिरसदृशे कर्मणि नियुक्तः पितरमनुवर्तेत, अन्यत्र प्राणाबाधकप्रकृतिकोपपातकेभ्यः। पुण्यकर्मणि नियुक्तः पुरुषमधिष्ठातारं याचेत। पुरुषाधिष्ठितश्च सविशेषमादेशमनुतिष्ठेत्। अभिरूपं च कर्मफलमौपायनिकं च लाभं पितुरुपनाययेत्॥ १॥

अनुवाद—योग्यतापेक्षा निम्न कार्य में नियुक्त एवं कठिनाई से जीवन-यापन करने वाला राजपुत्र पिता के आदेशों का पूर्णतः पालन करे, परन्तु प्राणों का भय, अमात्य आदि प्रकृतियों के कुपित होने का भय अथवा पातक भय हो तो भिन्न आचरण अर्थात् पिता के आदेशों की अवमानना करे। किसी पुण्य कार्य में नियुक्त राजपुत्र अपने लिए एक संरक्षक की माँग करे और उसके निर्देशानुसार राजाज्ञा का पालन करे। कार्य के अनुसार उसको जो कुछ फल प्राप्त हो और जो कुछ उपहार प्राप्त हो, उसे वह पिता के पास भिजवा दे।

संस्कृत-व्याख्या—राजपुत्रः = अवरुद्धो राजसुतः, कृच्छ्रवृत्तिः = क्लेशनिर्वर्त्यदेहयात्रः, असदृशे कर्मणि = स्वाननुरूपे कर्मणि पित्रा, नियुक्तः = चोदितः, पितरमनुवर्तेत = यथापितृनियोगं कर्मानुतिष्ठेत्। प्राणाबाधकप्रकृतिकोपपातकेभ्यः = स्वप्राणसंशयकरं प्रकृतिकोपनं पातकजनकं च कर्म, तेभ्यः, अन्यत्र = पितृनियोगं नाचरेत्, पुण्यकर्मणि नियुक्तो राजपुत्रः, अधिष्ठातारम् = कर्मनेतारं कमपि, पुरुषम् = स्वाधश्चरपुरुषम्, याचेत = याचित्वा लभेत। पुरुषाधिष्ठितः = स्वाधश्चरपुरुषयुक्तः सन्, आदेशम् = पितृनियोगम्, सविशेषमनुतिष्ठेत् = विशिष्यतया सम्पादयेत्, अभिरूपम् = हृद्यम्, कर्मफलम् = स्वकर्मोत्पादितं धान्यादिकम्, औपायनिकम् = उपायनात्मना लब्धं च, लाभम् = द्रव्यादिकम्, पितुरुपनाययेत् = पितुः सकाशं प्रापयेत्।

विशेष—१. राजपुत्र को सदा ही पिता को अपने कार्यों से सन्तुष्ट रखना चाहिए। इसलिए उसे हर हालत में पिता के आदेशों का पालन करना चाहिए।

२. प्राणबाधा, प्रकृतिकोप तथा पातक के भय से राजपुत्र पिता (राजा) के आदेशों का उल्लंघन कर सकता है।

तथाऽप्यतुष्यन्तमन्यस्मिन् पुत्रे दारेषु वा स्निह्यन्तमरण्याय आपृच्छेत्। बन्धवधभयाद् वा यः सामन्तो न्यायवृत्तिर्धार्मिकः सत्यवागविसंवादकः

प्रतिग्रहीता मानयिता चाभिपन्नानां तमाश्रयेत। तत्रस्थः कोशदण्डसम्पन्नः प्रवीरपुरुषकन्यासम्बन्धमटवीसम्बन्धं कृत्यपक्षोपग्रहं वा कुर्यात्॥ २॥

अनुवाद—इस पर भी यदि राजा सन्तुष्ट न हो और दूसरे पुत्रों तथा स्त्रियों के साथ विशेष स्नेह-प्रेम प्रदर्शित करता रहे, तो राजपुत्र को अपने पिता की आज्ञा लेकर तपस्या आदि करने के लिए जंगल में जाना चाहिए। अथवा ऐसा करने पर यदि उसको गिरफ्तार होने या मारे जाने का भय हो तो वह ऐसे राजा की शरण में चला जाय, जो न्यायपरायण, धार्मिक, सत्यवादी, धोखा न देने वाला, शरणागत की रक्षा करने वाला और आश्रय में आये हुए व्यक्ति का स्वागत-सत्कार करने वाला हो। वहाँ रहकर वह धन-बल से सम्पन्न होकर किसी वीर पुरुष की कन्या से विवाह कर ले और तब अपने पिता के आटविक लोगों से मित्रता कर वहाँ के कृत्यपक्ष के साथ मेल-मिलाप करे।

संस्कृत-व्याख्या—तथापि अतुष्यन्तम् = कर्मफललाभोपायनेनापि आत्मनि तुष्टिमकुर्वन्तं पितरम्, अन्यस्मिन् पुत्रे = राजकुमारे, दारेषु = स्वमातृव्यतिरिक्तायां महिष्याम्, स्निह्यन्तम् = प्रेमपूरितं पितरं विलोक्य, राजपुत्रः अरण्याय = तपसे वनगमनाय, आपृच्छेत् = आज्ञां लभेत। बन्धवधभयाद् वा = अथवा स्वबन्धप्राणनाशभीतिवशात्, यः सामन्तः = समीपस्थो राजा भूमिपो वा, न्यायवृत्तिः = न्यायपरायणः, धार्मिकः सत्यवाग्, अविसंवादः = छलनारहितः, अभिपन्नानाम् = शरणागतानाम्, मानयिता = सत्कर्त्ता स्वीकर्त्ता च, तम् = सामन्तम्, आश्रयेत = आश्रित्य तिष्ठेत्। तत्रस्थः कोशदण्डसम्पन्नः = स्वार्जितधनबलयुक्तो भूत्वा, प्रवीरपुरुषकन्यासम्बन्धम् = कस्यापि प्रवीरपुरुषकन्यया सह परिणयम्, अटवीसम्बन्धम् = आटविकमैत्रीं च विधाय, कृत्यपक्षोपग्रहं वा = सहायोपचयार्थं स्वपितृकृत्यवर्गस्वीकरणम्, कुर्यात्।

विशेष—१. यदि राजा का राजपुत्र के साथ उचित स्नेह-व्यवहार न रहे तो कौटिल्य का मत है कि वह राजपुत्र अपने पिता से तपस्या करने हेतु वन में जाने की आज्ञा माँगे। फिर वहाँ पर आत्मधनबल का उपचय करे।

२. यदि वह राजपुत्र वन में न जावे तो किसी सामन्त के आश्रय में जाकर धन-बलादि का संचय कर, किसी वीर पुरुष की कन्या से विवाह कर तथा आटविकों से मित्रता कर पिता के कृत्यपक्षीय लोगों के साथ मेल-मिलाप करे।

३. राजपुत्र के लिए आत्मरक्षा तथा आत्मोन्नति का मार्ग बताया गया है।

एकचरः सुवर्णपाकमणिरागहेमरूप्यपण्याकरकर्मान्तानाजीवेत्। पाषण्डसङ्घद्रव्यमश्रोत्रियभोग्यं देवद्रव्यमाढयविधवाद्रव्यं वा गूढमनुप्रविश्य सार्थयानपात्राणि च मदनरसयोगेनातिसन्धायावहरेत। पारग्रामिकं वा योगमातिष्ठेत्। मातुः परिजनोपग्रहेण वा चेष्टेत। कारुशिल्पिकुशीलवचिकित्सकवाग्जीवनपाषण्डच्छद्मभिर्वा नष्टरूपस्तद्व्यञ्जनसखश्छद्रे प्रविश्य राज्ञः शस्त्ररसाभ्यां प्रहृत्य ब्रूयात्—अहमसौ कुमारः, सहभोग्यमिदं राज्यमेको

नार्हति भोक्तुं, तत्र ये कामयन्ते भर्तुं तानहं द्विगुणेन भक्तवेतनेनोपस्थास्य इति, इत्यवरुद्धवृत्तम्॥ ३॥

अनुवाद—यदि राजपुत्र एकाकी रहे तो सुवर्णपाक, मणि, रांगा (या रंग), सोना, चाँदी आदि बिक्री-योग्य धातुओं का व्यापार करके जीविका चलावे। अथवा पाखण्डी लोगों के एकत्र धन को, श्रोत्रिय ब्राह्मणों से भिन्न लोगों के भोग्य पदार्थों को, देव-निमित्तक द्रव्य को, अथवा धन-सम्पन्न विधवा के द्रव्य को गुप्त रूप से घर में प्रवेश करके और जहाज के व्यापारी पुरुषों के धन को बेहोश कर देने वाली रासायनिक औषधियों के माध्यम से ठगकर अपहरण कर दे। अथवा पारग्रामिक उपाय का अनुकरण करे, अथवा अपनी माता के परिजनों को अनुकूल बनाकर अपने उद्धार की चेष्टा करे। अथवा बढ़ई, लुहार, नट, वैद्य, भाट, कथावाचक, पाखण्डी आदि पुरुषों के साथ अपना वेष छिपाकर, किन्तु उनके सदृश न बनकर अपने पिता (राजा) के दोषों का पता लगाकर शस्त्र या रासायनिक पदार्थ (विष आदि) से राजा को मारकर फिर अमात्य आदि से वह इस प्रकार कहे—'मैं ही असली राजकुमार हूँ, साझे में भोगे जाने वाले राज्य को कोई भी अकेले नहीं भोग सकता है, जो राजकर्मचारी पूर्ववत् शान्ति से अपने पदों पर बने रहना चाहते हैं, उन्हें मैं दुगुना वेतन दूँगा।' यहाँ तक नजरबन्द राजकुमार के व्यवहार का निरूपण किया गया।

संस्कृत-व्याख्या—एकचरः = एकाकी अलब्धकोशदण्डादिसहायो राजपुत्रः, सुवर्णपाकमणिरागहेमरूप्यपण्याकरर्मान्तान् = सुवर्णपाकं पुरपाकेन लौहादेः सुवर्णत्वापादनकर्म, मणिः= वैदूर्यादि, रागः = लाक्षारसादिरंजनद्रव्यं हेमरूप्ये = स्वर्णरजते, इत्यादिरूपाणि पण्यानि = विक्रेयपदार्थान्, आकरकर्मान्तान् = रत्नादिखनिव्यापारान् च आजीवेत् = उपजीवेत्। पाषण्डसंघद्रव्यम् = पाषण्डैः स्वसंघार्थे संगृह्य धनम्, अश्रोत्रियभोग्यम्= छान्दसब्राह्मणभोग्यातिरिच्यं द्रव्यम्, देवदव्यम् = देवनिमित्तकधनादिकम्, वा = समुच्चयार्थे अथवार्थे च, आढ्यविधवाद्रव्यम् = धनसम्पन्नविधवाधनम्, गूढम् = द्रव्यापजिहीर्षया गुप्तिपूर्वं तद्गृहे, अनुप्रविश्य, च सार्थयानपात्राणि = वणिक्संघस्य पण्ययुक्तान् पोतान्, मदनरसयोगेन = मदकररसदानोपायेन, अतिसन्धाय = वञ्चयित्वा, अवहरेत् = अपहरणं कुर्यात्। पारग्रामिकम् = दुर्गलम्भोपायं योगं वा, आतिष्ठेत् = आद्रियेत। वा = अथवा, मातुः = जनन्याः, परिजनोपग्रहेण = सेवकजनानुकूलनेन, चेष्टेत = स्ववृद्ध्यर्थं वियतेत। वा = अथवा, कारुशिल्पिकुशीललवचिकित्सकवाग्जीवनपाषण्डच्छद्मभिः = कारवः तक्षायस्काराः शिल्पिनः चित्रकारादयः कुशीलवाः गायनाः चिकित्सकाः वैद्याः वाग्जीवनाः पुरावृत्तकथनोपजीविनः पाषण्डाः क्षपणबौद्धभिक्षुप्रभृतयः, तद्वेषैः सह छदम्रूपः नष्टरूपः = छन्नस्वरूपः, तद्व्यञ्जनसखः = कार्वादिवेषपुरुषतुल्यः, राज्ञः = स्वपितुः, छिद्रे = अपकारस्थाने, प्रविश्य, शस्त्ररसाभ्याम् = शस्त्रविषादिभ्याम्, प्रहृत्य = राजानं हत्वा, ब्रूयात् = सचिवादीन् कथयेत्, अहमसौ कुमारः= अहमेव राज्योत्तराधिकारयोग्यः कुमारः, सहभोग्यम्

= ससहायनिर्वेश्यं ससहायशासनीयं वा, इदं राज्यम्, एकः = कोऽपि एकाकी एव, भोक्तुं नार्हति = नैव समुचितोऽस्ति, तत्र = राज्ये, ये कामयन्ते = ये पूर्ववत्स्थातुमिच्छन्ति भर्तुम् = अमात्यादिपदेष्वधिकर्तुम्, तान् = सर्वानहं द्विगुणेन भक्तवेतनेन = मत्पितृदत्ताद् द्विग्रवृत्तेन वेतनेन, उपस्थास्ये = पूजयिष्यामि, इति अवरुद्धवृत्तम् = अवरोधनिगडितराजपुत्र-व्यवहारनिरूपणं वर्तते।

विशेष—१. राजा द्वारा नजरबन्द या सीमान्त राजा के दुर्ग में रखे गये राजकुमार को क्या करना चाहिए, ताकि वह उद्धार कर सके - इसी का निरूपण इसमें किया गया है।

२. सुवर्णपाक उसे कहते हैं जिसमें रासायनिक प्रक्रिया द्वारा लोहा आदि हीन धातुओं को पुटपाक देकर सोना बनाया जाता है।

३. पारग्रामिक ऐसा उपाय है कि राजा जब कभी दूसरे गाँव को जावे तो तब राजपुत्र उसके धन का अपहरण कर ले।

४. राजा को मारकर राजपुत्र सचिव आदि कर्मचारियों को दुगुना वेतन देने का लालच देकर अपने पक्ष में करे, ताकि राज्य में वातावरण सुशासित रहे।

अवरुद्धं तु मुख्यपुत्रमपसर्पाः प्रतिपाद्यानयेयुः, माता वा प्रतिगृहीता। त्यक्तं गूढपुरुषाः शस्त्ररसाभ्यां हन्युः। अत्यक्तं तुल्यशीलाभिः स्त्रीभिः पानेन मृगयया वा प्रसज्य रात्रावुपगृह्यानयेयुः॥ ४॥

अनुवाद—अमात्य आदि मुख्य पुरुषों के पुत्र गुप्त वेष में जाकर अवरुद्ध (नजरबन्द) राजकुमार को यह दिलासा देकर मना ले आवें कि राजा उसको अवश्य ही युवराज बनायेगा। अथवा राजा से सत्कृत उसकी माता ही पुत्र को मना ले आवे। (यदि ऐसा न हो सके तो) राजा द्वारा परित्यक्त राजपुत्र को गुप्तचर पुरुष शस्त्र और रासायनिक (विष आदि) द्रव्यों से मार दें, यदि राजा ने उसका अभी तक परित्याग न किया हो तो समान स्वभाव वाली स्त्रियों के द्वारा मद्य आदि पिलाकर या शिकार आदि के बहाने रात में गिरफ्तार कराके राजा के पास लाने का प्रयास किया जावे।

संस्कृत-व्याख्या—अवरुद्धं तु = विजिगीषोरवरुद्धं पुत्रम्, मुख्यपुत्रापसर्पाः = मुख्यानाममात्यादीनां ये पुत्राः, तद्रूपा अपसर्पाः = चाराः, प्रतिगृहिता = राजपूजिता, माता = स्वमाता वा, प्रतिपाद्य = पिता ते यौवराज्यं दद्यात् चेत्तदनुकूलवृत्तिरिति भाषया अभ्युपगमरय, आनयेयुः = पितुरन्तिकं प्रापयेयुः। त्यक्तम् = पित्रा परित्यक्तं राजपुत्रम्, गूढपुरुषाः = गुप्तचरजनाः, शस्त्ररसाभ्याम् = आयुधविषप्रयोगाभ्याम्, हन्युः = मारयेयुः। अत्यक्तम् = अपरित्यक्तं तं राजपुत्रम्, तुल्यशीलाभिः = समानस्वभावाभिः, स्त्रीभिः= नारीभिः, पानेन = मद्येन, मृगया = खेटनेन वा, प्रसज्य = प्रसक्तिं कारयित्वा बद्ध्वा, रात्रौ = निशायाम्, उपगृह्य= परिगृह्य, आनयेयुः = राजान्तिकं प्रापयेयुः।

विशेष—१. नजरबन्द राजकुमार के साथ कैसा व्यवहार किया जावे और कैसे उस पर नियन्त्रण रखा जावे, इत्यादि बातों का निर्देश इसमें दिया गया है।

२. अवरुद्ध (नजरबन्द) पुत्र को अमात्य, सेनापति आदि के पुत्र समझायें, अथवा उसे उसकी माता समझाने का कार्य करे, परन्तु अमात्यादि के पुत्रों एवं अपनी माता के समझाने बुझाने पर भी वह राजपुत्र राजा के अनुकूल आचरण न करे, तो तब उसे शस्त्रारसादि से मार डालना चाहिए।

उपस्थितं च राज्येन मदूर्ध्वमिति सान्त्वयेत्।
एकस्थमथ संरुन्ध्यात् पुत्रवान् वा प्रवासयेत्॥ ५॥

अनुवाद—अपने पास लाये जाने पर राजा उस राजकुमार को सान्त्वना देते हुए कहे कि मेरे बाद इस राज्य के स्वामी तुम्हीं बनोगे। यदि एक ही पुत्र हो, तो अधार्मिक सिद्ध होने पर कैद कर ले अथवा अनेक पुत्र हों तो उस दुर्बुद्धि पुत्र को देश निकाला दे दे अथवा मरवा डाले।

संस्कृत-व्याख्या—उपस्थितम् = पूर्वोक्तप्रकारेण, समानीतम् अवरुद्धं पुत्रम्, मदूर्ध्वम् = मदुत्तरकाले राज्यमिदं त्वदीयमिति, राज्येन = निमित्तेन, सान्त्वयेत् = अनुनयेत्। अथ एकस्थम् = अभ्रातृकमेक एव पुत्रमधार्मिकं सन्त्रम्, संरुन्ध्यात् = कारागृहे निवेशयेत्, पुत्रवान् वा = अथवा बहुपुत्रसद्भावे तमधार्मिकं पुत्रम्, प्रवासयेत् = स्वराज्यात् निर्वासयेत्, वा = पक्षे हन्यादित्यर्थः।

विशेष—१. अमात्य आदि के पुत्रों के द्वारा, अथवा स्वमाता के द्वारा या गुप्तचरों आदि के द्वारा समझा-बुझाकर लाये गये पुत्र को राजा सान्त्वना देते हुए कहे कि मेरे बाद यह राज्य तुम्हारा ही है। इस तरह वह राजपुत्र अनुकूल बन जायेगा।

२. प्रतिकूल या अधार्मिक रहने से दो स्थितियाँ बताई गई हैं—यदि वह इकलौता पुत्र है तो राजा उसे कारागृह में डाल दे, यदि अन्य बहुत-से पुत्र हैं, तो उस दुर्बुद्धि को देश-निकाला का दण्ड दे दे।

॥ इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणेऽवरुद्धवृत्तमवरुद्धे च वृत्तिः
अष्टादशोऽध्यायः ॥

❑❑❑

एकोनविंशोऽध्यायः

चतुर्दशं प्रकरणम्—राजप्रणिधिः

राजानमुत्तिष्ठमानमनूत्तिष्ठन्ते भृत्याः। प्रमाद्यन्तमनुप्रमाद्यन्ति। कर्माणि चास्य भक्षयन्ति। द्विषद्भिश्चातिसन्धीयते। तस्मादुत्थानमात्मनः कुर्वीत। नाडिकाभिरहरष्टधा रात्रिं च विभजेत्; छायाप्रमाणेन वा। त्रिपौरुषी पौरुषी चतुरङ्गुला च च्छाया मध्याह्न इति चत्वारः पूर्वे दिवसस्याष्टभागाः। तैः पश्चिमा व्याख्याताः॥ १॥

अनुवाद—राजा के उन्नतिशील होने पर उसका सारा भृत्यवर्ग उन्नतिशील होता है, राजा के प्रमादी होने पर सारा भृत्यवर्ग प्रमाद करने लगता है। उस दशा में वह प्रमादित भृत्यवर्ग राज्यकार्यों को चुपचाप खा जाता है। ऐसा राजा शत्रुओं के धोखे में आ जाता है। इसलिए राजा स्वयं सदा ही उन्नतिशील रहे। राजकार्य को व्यवस्थित ढंग से संचालित करने के लिए वह दिन और रात को आठ-आठ घड़ियों में बाँट दे। अथवा छाया-प्रमाण से भी वह समय का विभाजन कर सकता है। सूर्योदय से लेकर जब तक पुरुष की छाया तिगुनी लम्बी रहे, वह दिन का पहिला आठवाँ हिस्सा है। इसे 'त्रिपौरुषी' छाया कहते हैं। इसी प्रकार वह छाया जब एक पुरुष के बराबर लम्बी रह जाय तो वह दिन का दूसरा भाग है, उसको 'एकपौरुषी' छाया कहते हैं। तदनन्तर वही 'एकपौरुषी' छाया घटकर जब चार अंगुल मात्र रह जाये तो वह दिन का तीसरा भाग है, उसे 'चतुरंगुली' छाया कहते हैं। उसके बाद का समय मध्याह्न कहलाता है। मध्याह्न के उपरान्त इसी क्रम से त्रिपौरुषी, पौरुषी, चतुरंगुला और दिनांत, ये चार भाग हैं। इस प्रकार दिन के ये आठ भाग हुए।

संस्कृत-व्याख्या—उत्तिष्ठमानम् = उन्नतिशीलम्, राजानं तद्भृत्याः = अमात्यसमाहर्तृसन्निधातृप्रभृतयो भृत्याः, उत्तिष्ठन्ते = अनलसाः सन्तो व्याप्रियन्ते। प्रमाद्यन्तम् = प्रमादयुक्तञ्च राजानं तेऽपि प्रमाद्यन्ति = प्रमादग्रस्ताः जायन्ते, अस्य = राज्ञः, कर्माणि = कार्याणि, भक्षयन्ति = नाशयन्ति। तथाभूतोऽसौ राजा द्विषद्भिः = शत्रुभिश्च, अतिसन्धीयते = वञ्च्यते। तस्मात्कारणात्, आत्मनः = स्वस्य, उत्थानम् = अभ्युन्नतिम्, कुर्वीत = अनुतिष्ठेत्। अहः = दिनम्, रात्रिं च, नाडिकाभिः = नालिकाभिः, अष्टधा = अष्टौ भागान्, विभजेत् = विदध्यात्, छायाप्रमाणेन = पुरुषछायाप्रमाणेन वा विभजेत्। त्रिपौरुषी

= पुरुषत्रयपरिमाणा छाया, पौरुषी = एकपुरुषपरिमाणा छाया, चतुरङ्गुला = अङ्गुलचतुष्टयपरिमाणा चेति त्रयः, मध्याह्नश्च चत्वारः= चतुर्थः इति, दिवसस्य = दिनस्य, पूर्वे अष्टभागाः = आदिमा अष्टमभागा भवन्ति। तैः = पूर्वोक्तैरष्टभागैः, पश्चिमाः= उत्तरा अष्टभागाः, व्याख्याताः = नियम्य कथिताः।

विशेष—१. सूर्योदय से लेकर जब तक मनुष्य की छाया तीन पुरुष प्रमाण (लम्बी) बनी रहती है, वह दिन का प्रथम भाग है और इसे त्रिपौरुषी छाया कहते हैं। इसके बाद मनुष्य की छाया जब एक पुरुष प्रमाण रहे, तब वह दिन का द्वितीय भाग है और उसे एक 'पौरुषी छाया' कहते हैं। जब छाया घटते-घटते चार अंगुल प्रमाण शेष रहे, तब वह दिन का तृतीय भाग है और उसे 'चतुरङ्गुला छाया' कहते हैं। इसके बाद मध्याह्न कहलाता है। यह पूर्वाह्न के चार भाग होते हैं। इसी प्रमाण की विपरीत गणना करने पर अपराह्न के चार भाग हो जाते हैं। इस प्रकार दिन के आठ भाग बन जाते हैं।

२. नाडिका अर्थात् घड़ियों में दिन-रात को बाँट कर तथा उनके आठ भाग नियत कर राजा अपना कार्य-संचालन करे। दिन के पूर्वार्द्ध का अन्तिम भाग मध्याह्न कहलाता है तो दिन के उत्तरार्द्ध का अन्तिम भाग दिनान्त कहलाता है।

तत्र पूर्वे दिवसस्याष्टभागे रक्षाविधानमायव्ययौ च शृणुयात्। द्वितीये पौरजानपदानां कार्याणि पश्येत्। तृतीये स्नानभोजनं सेवेत; स्वाध्यायं च कुर्वीत। चतुर्थे हिरण्यप्रतिग्रहमध्यक्षांश्च कुर्वीत। पञ्चमे मन्त्रिपरिषदा पत्रसम्प्रेषणेन मन्त्रयेत; चारगुह्यबोधनीयानि च बुद्ध्येत। षष्ठे स्वैरविहारं मन्त्रं वा सेवेत। सप्तमे हस्त्यश्वरथायुधीयान् पश्येत्। अष्टमे सेनापतिसखो विक्रमं चिन्तयेत्। प्रतिष्ठितेऽहनि सन्ध्यामुपासीत॥ २॥

अनुवाद—उनमें से दिन के प्रथम आठवें भाग में राजा रक्षा-सम्बन्धी कार्यों का और आय-व्यय का निरीक्षण करे। द्वितीय भाग में पुरवासियों तथा जनपदवासियों के कार्यों का निरीक्षण करे; तृतीय भाग में स्नान, भोजन तथा स्वाध्याय करे और चौथे भाग में बीते दिन की अवशिष्ट आमदनी को सँभाले तथा विभिन्न कार्यों पर अध्यक्ष आदि की नियुक्ति भी करे। पाँचवें भाग में वह मन्त्रि-परिषद् के परामर्श से पत्र भेजे तथा आवश्यक कार्यों के सम्बन्ध में विचार-विनिमय करे। इसी समय वह गुप्तचरों के कार्यों एवं गुप्त बातों के सम्बन्ध में जाने-सुने। छठे भाग में वह स्वतन्त्र होकर स्वेच्छया विहार तथा मन्त्रणा करे। सातवें भाग में वह हाथी, घोड़े, रथ तथा अस्त्र-शस्त्रों का निरीक्षण करे। अन्तिम आठवें भाग में वह सेनापति के साथ युद्ध आदि के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करे। दिनान्त के बाद वह सन्ध्योपासन करे।

संस्कृत-व्याख्या—तत्र = पूर्वोक्तदिवसाष्टभागेषु मध्ये, पूर्वे = प्रथमभागे, रक्षाविधानमायव्ययौ = रक्षासम्बन्धिकार्यजातम् आयव्ययादिकं च, शृणुयात् = पश्येत्। द्वितीये भागे, पौरजानपदानाम् = पुरवासिनां जनपदवासिनां च, कार्याणि पश्येत्, तृतीये

भागे, स्नानभोजनम्= स्नानं च भोजनं च, सेवेत = कुर्यात्, स्वाध्यायं च = वेदाध्ययनञ्च, कुर्वीत = कुर्यात्। चतुर्थे भागे, हिरण्यप्रतिग्रहमध्यक्षान् = गतदिवसोत्थितधनस्वीकारम्, तस्य अध्यक्षान् कुर्वीत = कार्यविशेषेषु नियुञ्जीत, पञ्चमे भागे, मन्त्रिपरिषदा पत्रसम्प्रेषणेन = लेखद्वारसंवादेन, मन्त्रयेत = कार्यमालोचयेत्, चारगुह्यबोधनीयानि = गुप्तचराणां गुप्तकार्याणि रहसि उपदेश्यानि वा कार्याणि, बुध्येत = अवगच्छेत्। षष्ठे भागे, स्वैरविहारम् = स्वच्छन्दावस्थानम् , मन्त्रं वा = मन्त्रणां वा, सेवेत, सप्तमे भागे, हस्त्यश्वरथायुधीयान् = हस्त्यादियुक्तान्, पदातीन्, पश्येत, अष्टमे भागे, सेनापतिसखः = सेनापतिसमेतः, विक्रमम् = युद्धप्रयाणादिकम्, चिन्तयेत् = विचारयेत्, अहनि प्रतिष्ठिते = दिने अवसिते, सन्ध्याम् = सन्ध्यावन्दनादिकम्, उपासीत = विदध्यात्।

विशेष—पूर्व में निर्दिष्ट काल-विभाग के अनुसार राजा को दिन के आठ भागों में रक्षाविधान से प्रारम्भ तक सन्ध्योपसना तक निरन्तर कार्य में प्रवृत्ति रखनी चाहिए।

प्रथमे रात्रिभागे गूढपुरुषान्पश्येत्। द्वितीये स्नानभोजनं कुर्वीत स्वाध्यायं च। तृतीये तूर्यघोषेण संविष्टश्चतुर्थपञ्चमौ शयीत। षष्ठे तूर्यघोषेण प्रतिबुद्धः शास्त्रमितिकर्तव्यतां च चिन्तयेत्। सप्तमे मन्त्रमध्यासीत; गूढपुरुषांश्च प्रेषयेत्। अष्टमे ऋत्विगाचार्यपुरोहितसखः स्वस्त्ययनानि प्रतिगृह्णीयात्; चिकित्सकमाहानसिकमौहूर्तिकांश्च पश्येत्। सवत्सां धेनुं वृषभं च प्रदक्षिणीकृत्योपस्थानं गच्छेत्॥ ३॥

अनुवाद—इसी प्रकार के रात्रि प्रथम भाग में वह गुप्तचरों को देखे। दूसरे भाग में स्नान, भोजन, स्वाध्याय, तीसरे भाग में संगीत सुनता हुआ शयन करे और चौथे-पाँचवें भाग तक सोता रहे। रात्रि के छठे भाग में संगीत के द्वारा जागा हुआ वह अर्थशास्त्र सम्बन्धी तथा दिन में सम्पादित किये जाने योग्य कार्यों पर विचार करे। सातवें भाग में गुप्त-मंत्रणा करे और गुप्तचरों को यथास्थान भेजे। रात्रि के अन्तिम आठवें भाग में ऋत्विक्, आचार्य तथा पुरोहित के साथ स्वस्तिवाचन-सहित आशीर्वाद ग्रहण करे तथा वैद्य, प्रधान रसोइया और ज्योतिषी आदि से भी तत्सम्बन्धी बातों पर परामर्श करें। इन सब कार्यों से निवृत्त हो वह बछड़े वाली गाय और बैल की प्रदक्षिणा करके राज-दरबार में प्रवेश करे।

संस्कृत-व्याख्या—प्रथमे रात्रिभागे, गूढपुरुषान् = गुप्तचरान्, पश्येत्। द्वितीयरात्रिभागे, स्नानभोजनम् = स्नानं च भोजनं च, स्वाध्यायम् = अध्ययनादिकं च, कुर्वीत = कुर्यात्। तृतीये रात्रिभागे तूर्यघोषेण संविष्टः = गीतावाद्यश्रवणसुखमनुभवन्नेव शयितः, चतुर्थपञ्चमौ = चतुर्थे च पञ्चमे च रात्रिभागे कृत्स्ने, शयीत = स्वप्यात्। षष्ठरात्रिभागे तूर्यघोषेण = जागरणनिमित्ततूर्यवादनेन, प्रतिबुद्धः = जागरितः, शास्त्रम् = अर्थशास्त्रम्, इति कर्तव्यताम् = कालोचितकार्यपरिपाटीम्, च, चिन्तयेत् = विचारयेत्। सप्तमे रात्रिभागे, मन्त्रम् = गुप्तन्त्रणाम्, अध्यासीत = कुर्वीत, गूढपुरुषान् च प्रेषयेत् = यथाविषयं प्रणिदध्यात्। अष्टमे

रात्रिभागे, ऋत्विगाचार्यपुरोहितसखः = ऋत्विग् याजकः आचार्यः विद्योपदेष्टा पुरोहितः पुरोहितगुणसम्पन्नः, एषां सखा = सहायो भूत्वा, स्वस्त्ययनानि = माङ्गलिकमन्त्र-पाठपूर्वाण्याशीर्वचनानि, प्रतिगृह्णीयात् = ग्रहणं कुर्यात्; चिकित्सकमाहानसिकमौहूर्तिकान् = वैद्य-प्रधानपाचक-ज्योतिषज्ञान् च, पश्येत्। सवत्सां धेनुम् = वत्सयुक्तां गाम्, वृषभं च = बलीवर्दं च, प्रदक्षिणीकृत्य = भक्त्या परिक्रम्य, उपस्थानम् = आस्थानमण्डम्, गच्छेत् = प्रविशेत्।

विशेष—१. राजा द्वारा रात्रि के आठ प्रहरों को उपभोग कैसे किया जावे, इस सम्बन्ध में निर्देश दिया गया है।

२. रात्रि के अन्तिम प्रहर में राजा पहले तो ऋत्विग्, आचार्य एवं पुरोहित से आशीर्वाद ग्रहण करे, फिर स्वास्थ्य-परीक्षणार्थ चिकित्सक, मनोवांछित व पथ्यकर भोजनार्थ प्रधान पाचक एवं दिनभर के शुभाशुभ ग्रहों का चिन्तन करने हेतु ज्योतिषी से मिले। इस प्रकार का परामर्श करके राजा सभामण्डप में प्रवेश करे।

आत्मबलानुकूल्येन वा निशाहर्भागान् प्रविभज्य कार्याणि सेवेत। ४॥

अनुवाद—अथवा अपनी शक्ति तथा अनुकूल परिस्थितियों के अनुसार राजा स्वेच्छया रात्रि और दिन के भागों का विभाजन कर कार्यों को करे।

संस्कृत-व्याख्या—वा = अथवा, आत्मबलानुकूल्येन = आत्मनो यद् बलं कार्यानुष्ठानशक्तिस्तदानुगुण्येन, निशाहर्भागान् = रात्रिदिवसभागान्, प्रविभज्य = विभागं विधाय, कार्याणि समग्राणि, सेवेत = संपादयेत्।

उपस्थानगतः कार्यार्थिनामद्वारासङ्गं कारयेत्। दुर्दर्शो हि राजा कार्याकार्यविपर्यासमासन्नैः कार्यते। तेन प्रकृतिकोपमरिवशं वा गच्छेत्। तस्माद्देवताश्रमपाषण्डश्रोत्रियपशुपुण्यस्थानानां बालवृद्धव्याधित-व्यसन्यनाथानां स्त्रीणां च क्रमेण कार्याणि पश्येत्; कार्यगौरवादात्ययिकवशेन वा॥ ५॥

अनुवाद—राजदरबार में रहने वाला राजा प्रत्येक कार्यार्थी को बेरोक-टोक प्रवेश की अनुमति दे। क्योंकि कठिनाई से दर्शन देने वाले राजा के समीपवर्ती लोग (कर्मचारी) उसके कार्यों को उलट-पुलट कर देते हैं। इस कारण अमात्य आदि उससे कुपित हो जाते हैं, राजकार्य शिथिल पड़ जाते हैं, राजा अपने शत्रुओं के अधीन हो जाता है। इसलिए राजा देवालय, ऋषि-आश्रम, धूर्तपाखण्डियों के केन्द्र, वेदपाठी ब्राह्मणों के संस्थान, पशुशाला आदि स्थानों का और बाल, वृद्ध, रुग्ण, दुखित, अनाथ तथा स्त्रियों से संबद्ध कार्यों का स्वयमेव विधिपूर्वक निरीक्षण करे। इनमें से यदि कोई कार्य अत्यावश्यक है, अथवा उसकी अवधि बीत रही है तो राजा पहले उसी का निरीक्षण करे।

संस्कृत-व्याख्या—उपस्थानगतः = आस्थानमण्डपस्थः, राजा, कार्यार्थिनाम् = कार्यार्थसमागतानाम्, अद्वारासङ्गम् = द्वारे निरोधाभावं वर्जनारहितं वा, प्रवेशं कारयेत्। राजा

सुलभदर्शनो भवेदित्यभिप्रायः। हि = यतः, दुर्दर्शः = दुर्लभदर्शनो राजा, आसन्नैः = समीपस्थसेवकैः, कार्याकार्यविपर्यासम् = कार्याकार्ययोरकरणं व्युत्क्रमकरणं वा, कार्यते = विधीयते। तेन = कार्याकार्यविपर्यासकारणेन, प्रकृतिकोपम् = अमात्यादिरोषम्, अरिवशम् = शत्रुगोचरं वा गच्छेत्। तस्मात्कारणात्, देवताश्रमपाषण्डश्रोत्रियपशुपुण्यस्थानानाम् = देवताश्रमौ देवालयमुनिआश्रमौ पाषण्डः धूर्तः श्रोत्रियः वेदज्ञः पशुशाला तदादिपुण्यस्थानानाम्, बालवृद्धव्याधिव्यसन्यनाथायाम्, बालश्च वृद्धश्च व्याधितश्च व्यसनी च अनाथश्च तेषाम्, स्त्रीणां च, कार्याणि = तत्सम्बन्धितानि कर्माणि, क्रमेण पश्येत् = अवलोकयेत्, कार्यगौरवात् = कार्यस्य महत्त्वापेक्षया, आत्ययिकवशेन = अमहत्त्वेऽप्यतिपातित्वापेक्षया वा कार्याणि चिन्तयेत्।

विशेष—१. राजा को राजसभा में सभी को कार्यादि हेतु अबाधित प्रवेश दिलाना चाहिए।

२. कार्यार्थियों के कार्यों को निर्दिष्ट क्रम से देखना चाहिए, परन्तु महत्त्वपूर्ण कार्य को पहले भी देखा जा सकता है। राजा को राजकार्य अथवा प्रजाकार्य में सदा सचेष्ट रहना चाहिए।

सर्वमात्ययिकं कार्यं शृणुयान्नातिपातयेत्।
कृच्छ्रसाध्यमतिक्रान्तमसाध्यं वा विजायते॥ ६॥

अनुवाद—जिसकी मियाद बीत गई हो, उस कार्य को राजा पहले देखे, क्योंकि इस प्रकार अवधि बीत जाने पर कार्य या तो कष्टसाध्य होता है अथवा सर्वथा असाध्य हो जाता है।

संस्कृत-व्याख्या—सर्वम् = गुरु लघु च, आत्ययिकम् = अतिपातितम्, कार्यं शृणुयात् = प्रथमं श्रुत्वानुतिष्ठेत्, न अतिपातयेत् = नातिक्रामयेत्। अतिक्रान्तं = अतिपातितकालं कार्यम्, कृच्छ्रसाध्यम् = काठिन्येन साध्यम्, असाध्यम् = कालान्तरे असुकरं वा, विजायते = भवति।

अग्न्यगारगतः कार्यं पश्येद्वैद्यतपस्विनाम्।
पुरोहिताचार्यसखः प्रत्युत्थायाभिवाद्य च॥ ७॥

अनुवाद—राजा पुरोहित एवं आचार्य के साथ यज्ञशाला में उपस्थित होकर उन विद्वानों और तपस्वियों के कार्यों को खड़े ही खड़े अभिवादनपूर्वक देखे।

संस्कृत-व्याख्या—अग्न्यगारगतः = अग्निहोत्रशालागतः, पुरोहिताचार्यसखः = पुरोहिताचार्यसहायः राजा, वैद्यतपस्विनाम् = विदुषां तापसानां च, प्रत्युत्थाय = उत्थितदशायामेव, अभिवाद्य = प्रणम्य च, कार्यम् = तेषां कार्यम्, पश्येत्।

तपस्विनां तु कार्याणि त्रैविद्यैः सह कारयेत्।
मायायोगविदां चैव न स्वयं कोपकारणात्॥ ८॥

अनुवाद—तपस्वियों के और माया योग (मायावी) लोगों के कार्यों का निर्णय राजा वेदज्ञ विद्वानों के साथ बैठकर करे, क्रोध के कारण अकेला न करे।

संस्कृत-व्याख्या—त्रैविद्यैः = त्रयीविद्यावद्भिः, सह = साकम्, तपस्विनां तु = तापसानां हि, मायायोगविदाम् = मायाप्रयोगाभिज्ञानां च, कार्याणि पश्येत्, कोपकारणात् = क्रोधान्निमित्तात्, स्वयं न = एकाकी सन् कार्यनिर्णयं न कारयेत्।

विशेष—१. तपस्वियों और मायावियों के कार्यों का निरीक्षण राजा को कभी भी अकेले नहीं करना चाहिये। उनके कार्यों का निरीक्षण राजा वेदविद् विद्वानों के साथ मिलकर करे। इससे राजा को अकेले उनके क्रोध का पात्र नहीं बनना पड़ता है।

२. यह निर्देश वस्तुतः इस वर्ग के गुप्तचरों के सम्बन्ध में दिया गया है।

राज्ञो हि व्रतमुत्थानं यज्ञः कार्यानुशासनम्।
दक्षिणा वृत्तिसाम्यं च दीक्षितस्याभिषेचनम्॥ ९॥

अनुवाद—उद्योग करना, यज्ञ करना, अनुशासन करना, दान देना, शत्रु और मित्रों में उनके गुण-दोषों के अनुसार समान व्यवहार करना, दीक्षा समाप्त कर अभिषेक करना, ये सब राजा के नैमित्तिक व्रत हैं।

संस्कृत-व्याख्या—हि = यतः, उत्थानम् = उद्योगः, यज्ञः = क्रत्वनुष्ठानम्, कार्यानुशासनम् = व्यवहारनिर्णयः, दक्षिणा = दानम्, वृत्तिसाम्यम् = शत्रौ मित्रे च गुणदोषापेक्षया तुल्यं व्यवहरणं च, दीक्षितस्य अभिषेचनम् = अवभृथनिवर्तनं च, राज्ञः व्रतम्।

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्॥ १०॥

अनुवाद—प्रजा के सुख में राजा का सुख और प्रजा के हित में राजा का हित है। अपने आप को अच्छे लगने वाले कार्यों को करने में राजा का हित नहीं, बल्कि उसका हित तो प्रजाननों को अच्छे लगने वाले कार्यों के सम्पादन करने में है।

संस्कृत-व्याख्या—प्रजासुखे सति, राज्ञः सुखमस्ति, प्रजानाम् = प्रजाजनानाम्, हिते = कल्याणे सति, राज्ञः हितमस्ति। राज्ञः आत्मप्रियम् = स्वस्मै प्रियं कार्यम्, हितं न = हितकारि न भवति, अपितु प्रजानाम् = प्रकृत्यादीनाम्, प्रियम् = रुचिकरं कल्याणकरं वा कार्यम्, हितम् = राज्ञः क्षेमकरं भवति।

तस्मान्नित्योत्थितो राजा कुर्यादर्थानुशासनम्।
अर्थस्य मूलमुत्थानमनर्थस्य विपर्ययः॥ ११॥

अनुवाद—इसलिए राजा नित्य उद्योगशील होकर व्यवहार-सम्बन्धी तथा राज्य-सम्बन्धी कार्यों को उचित रीति से पूरा करे। उद्योग ही धन-सम्पत्ति का मूल है और इसके विपरीत अर्थात् उद्योगहीनता ही अनर्थों को देने वाली है।

संस्कृत-व्याख्या—तस्मात् = पूर्वोक्तकारणात्, नित्योत्थितः = नित्योद्योगी सन्, राजा, अर्थानुशासनम् = अर्थव्यवहारम्, कुर्यात्। उत्थानम् = उद्योगः, अर्थस्य मूलम् = धनसम्पत्तेः सिद्ध्युपायः, विपर्ययः = विपरीताचरणम्, अर्थात् उद्यमहीनत्वम्, अनर्थस्य मूलमस्ति।

अनुत्थाने ध्रुवो नाशः प्राप्तस्यानागतस्य च।
प्राप्यते फमुत्थानाल्लभते चार्थसम्पदम्॥ १२॥

अनुवाद—राजा के उद्योगी न होने से उसके प्राप्त अर्थों और प्राप्तव्य अर्थों का नाश हो जाता है, किन्तु उद्योग होने से वह शीघ्र उसका मधुर फल और इच्छित सुख-सम्पदा का उपभोग करता है।

संस्कृत-व्याख्या—राज्ञः, अनुत्थाने = आलस्यादुद्योगाकरणे, प्राप्तस्य = पूर्वसिद्धस्य, अनागतस्य = स्येत्स्यतश्च अर्थस्य, नाशः = विनाशः, ध्रुवः = निश्चितः, उत्थानम् = उद्योगात्, फलं प्राप्यते = सद्यः फलप्राप्तिर्भवति, अर्थसम्पदम् = धनसम्पदानां च सर्वतः, लभते = प्राप्तिर्भवति।

विशेष—१. अन्तिम चारों श्लोकों में राजा के करणीय कार्यों का उपदेशात्मक निरूपण किया गया है। इनमें प्रजाहित का सदा चिन्तन करना तथा उन्नतिशील बने रहना अत्यावश्यक कर्त्तव्य बताया गया है।

२. उद्यम को ही अर्थसम्पत्ति एवं इच्छित फलादि की प्राप्ति का प्रमुख कारण माना गया है।

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे राजप्रणिधिर्नामैकोनविंशोऽध्यायः॥

* * *

विंशोऽध्यायः

पञ्चदशं प्रकरणम् — निशान्तप्रणिधिः

वास्तुकप्रशस्ते देशे सप्राकारपरिखाद्वारमनेककक्ष्यापरिगतमन्तःपुरं कारयेत्॥ १॥

अनुवाद—वास्तुविद्या के विशेषज्ञ (इंजीनियर) जिस स्थान को उपयुक्त बतावें, उसी स्थान पर परकोटा, खाई और अनेक कक्षाओं (ड्योढ़ियों) से युक्त अन्तःपुर बनावे।

संस्कृत-व्याख्या—वास्तुकप्रशस्ते = वास्तुविद्याभिज्ञैः प्रशस्ते श्लाघिते, देशे = स्थाने, सप्राकारपरिखाद्वारम् = प्राकारः सालः पारिखा दुर्गवेष्टनखातिका द्वाराणि अपवरकाणि च यस्मिन् तत्, एतैर्युक्तम्, अनेककक्ष्यापरिगतम् = अनेकप्रकोष्ठपरिवृत्तम्, अन्तःपुरं कारयेत् = विधीयात्।

विशेष—'वास्तुकप्रशस्ते' का आशय भवन-निर्माण कला में विशेषज्ञ इंजीनियर से है, न कि ज्योतिषी से।

कोशगृहविधानेन वा मध्ये वासगृहं, गूढभित्तिसञ्चारं मोहनगृहं तन्मध्ये वा वासगृहं, भूमिगृहं वाऽऽसन्नकाष्ठचैत्यदेवतापिधानद्वारमनेकसुरुङ्गासञ्चारं प्रासादं वा गूढभित्तिसोपानं, सुषिरस्तम्भप्रवेशापसारं वा, वासगृहं यन्त्रवद्धतलावपातं कारयेद् आपत्प्रतीकारार्थम्। आपदि वा कारयेत्। अतोऽन्यथा वा विकल्पयेत्; सहाध्यायिभयात्॥ २॥

अनुवाद—या कोशागार निर्माण के विधानानुसार राजा अन्तःपुर के मध्य में अपना महल बनवाये या ऐसा मकान बनवाये जिसकी दीवारें गुप्त हों तथा गलियों का पता न चले (भूलभुलैया हो), उसके मध्य में रहने का महल बनवाये या भूमिगृह के समीप ही देवता की मूर्ति स्थापित करावे तथा उस भूमिगृह में आने-जाने के लिए गुप्त सुरंगें बनवाये, अथवा दीवारों में ही गुप्त रूप से विद्यमान सीढ़ियों वाला महल बनवाये अथवा पोले खम्भों के भीतर आने-जाने का मार्ग होवे। आपत्तिकाल उपस्थित होने पर उसके निवारणार्थ पहले से ही ऐसा भवन बनवाये जो कि यन्त्रों से ऊपर-नीचे हो सके। यदि राजा को आशंका हो कि दूसरा शत्रु राजा भी ऐसा ही भवन बनवा रहा है तो वह अपनी बुद्धि के अनुसार उसमें परिवर्तन करा दे।

संस्कृत-व्याख्या—कोशगृहविधानेन = कोशगृहनिर्माणविधया, वा = अथवा, मध्ये = अन्तःपुरमध्ये, वासगृहम् = गर्भागारं, राजा कारयेत्। वा = अथवा गूढभित्तिसञ्चारम् =

संस्कृत-व्याख्या—तस्मात् = पूर्वोक्तकारणात्, नित्योत्थितः = नित्योद्योगी सन्, राजा, अर्थानुशासनम् = अर्थव्यवहारम्, कुर्यात्। उत्थानम् = उद्योगः, अर्थस्य मूलम् = धनसम्पत्तेः सिद्ध्युपायः, विपर्ययः = विपरीताचरणम्, अर्थात् उद्यमहीनत्वम्, अनर्थस्य मूलमस्ति।

अनुत्थाने ध्रुवो नाशः प्राप्तस्यानागतस्य च।
प्राप्यते फमुत्थानाल्लभते चार्थसम्पदम्॥ १२॥

अनुवाद—राजा के उद्योगी न होने से उसके प्राप्त अर्थों और प्राप्तव्य अर्थों का नाश हो जाता है, किन्तु उद्योग होने से वह शीघ्र उसका मधुर फल और इच्छित सुख-सम्पदा का उपभोग करता है।

संस्कृत-व्याख्या—राज्ञः, अनुत्थाने = आलस्यादुद्योगाकरणे, प्राप्तस्य = पूर्वसिद्धस्य, अनागतस्य = स्येत्स्यतश्च अर्थस्य, नाशः = विनाशः, ध्रुवः = निश्चितः, उत्थानम् = उद्योगात्, फलं प्राप्यते = सद्यः फलप्राप्तिर्भवति, अर्थसम्पदम् = धनसम्पदानां च सर्वतः, लभते = प्राप्तिर्भवति।

विशेष—१. अन्तिम चारों श्लोकों में राजा के करणीय कार्यों का उपदेशात्मक निरूपण किया गया है। इनमें प्रजाहित का सदा चिन्तन करना तथा उन्नतिशील बने रहना अत्यावश्यक कर्त्तव्य बताया गया है।

२. उद्यम को ही अर्थसम्पत्ति एवं इच्छित फलादि की प्राप्ति का प्रमुख कारण माना गया है।

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे राजप्रणिधिर्नामैकोनविंशोऽध्यायः॥

* * *

विंशोऽध्यायः

पञ्चदशं प्रकरणम् — निशान्तप्रणिधिः

वास्तुकप्रशस्ते देशे सप्राकारपरिखाद्वारमनेककक्ष्यापरिगतमन्तःपुरं कारयेत्॥ १॥

अनुवाद—वास्तुविद्या के विशेषज्ञ (इंजीनियर) जिस स्थान को उपयुक्त बतावें, उसी स्थान पर परकोटा, खाई और अनेक कक्षाओं (ड्योढ़ियों) से युक्त अन्तःपुर बनावे।

संस्कृत-व्याख्या—वास्तुकप्रशस्ते = वास्तुविद्याभिज्ञैः प्रशस्ते श्लाघिते, देशे = स्थाने, सप्राकारपरिखाद्वारम् = प्राकारः सालः पारिखा दुर्गवेष्टनखातिका द्वाराणि अपवरकाणि च यस्मिन् तत्, एतैर्युक्तम्, अनेककक्ष्यापरिगतम् = अनेकप्रकोष्ठपरिवृत्तम्, अन्तःपुरं कारयेत् = विधीयात्।

विशेष—'वास्तुकप्रशस्ते' का आशय भवन-निर्माण कला में विशेषज्ञ इंजीनियर से है, न कि ज्योतिषी से।

कोशगृहविधानेन वा मध्ये वासगृहं, गूढभित्तिसञ्चारं मोहनगृहं तन्मध्ये वा वासगृहं, भूमिगृहं वाऽऽसन्नकाष्ठचैत्यदेवतापिधानद्वारमनेकसुरुङ्गासञ्चारं प्रासादं वा गूढभित्तिसोपानं, सुषिरस्तम्भप्रवेशापसारं वा, वासगृहं यन्त्रवद्धतलावपातं कारयेद् आपत्प्रतीकारार्थम्। आपदि वा कारयेत्। अतोऽन्यथा वा विकल्पयेत्; सहाध्यायिभयात्॥ २॥

अनुवाद—या कोशागार निर्माण के विधानानुसार राजा अन्तःपुर के मध्य में अपना महल बनवाये या ऐसा मकान बनवाये जिसकी दीवारें गुप्त हों तथा गलियों का पता न चले (भूलभुलैया हो), उसके मध्य में रहने का महल बनवाये या भूमिगृह के समीप ही देवता की मूर्ति स्थापित करावे तथा उस भूमिगृह में आने-जाने के लिए गुप्त सुरंगें बनवाये, अथवा दीवारों में ही गुप्त रूप से विद्यमान सीढ़ियों वाला महल बनवाये अथवा पोले खम्भों के भीतर आने-जाने का मार्ग होवे। आपत्तिकाल उपस्थित होने पर उसके निवारणार्थ पहले से ही ऐसा भवन बनवाये जो कि यन्त्रों से ऊपर-नीचे हो सके। यदि राजा को आशंका हो कि दूसरा शत्रु राजा भी ऐसा ही भवन बनवा रहा है तो वह अपनी बुद्धि के अनुसार उसमें परिवर्तन करा दे।

संस्कृत-व्याख्या—कोशगृहविधानेन = कोशगृहनिर्माणविधया, वा = अथवा, मध्ये = अन्तःपुरमध्ये, वासगृहम् = गर्भागारं, राजा कारयेत्। वा = अथवा गूढभित्तिसञ्चारम् =

अनलक्षितभित्त्यन्तरस्थितो गतागतमार्गो यस्य तथाभूतम्, मोहनगृहम् = मार्गव्यामोहकरं किमपि वृत्ताकारं गृहम्, तन्मध्ये वा = तथाकारितस्य मोहनगृहमध्ये वा, वासगृहम् = स्वकीयावासभवनं कारयेत् भूमिगृहं वा = भूमिं खनित्वा तदन्तःकृतसन्निवेशं गृहं कारयेत्, आसन्नकाष्ठचैत्यदेवतापिधानद्वारम् = आसन्नकाष्ठे चैत्ये निकटवर्तिनि देवालये वा देवतापिधानं दारुलोहादिमयदेवप्रतिमाङ्कितं द्वारं यस्य तादृशं वासं कारयेत्, अनेकसुरंग-सञ्चारम् = सुरङ्गमार्गद्वारसञ्चारयोग्यम्, प्रासादम्, गूढभित्तिसोपानम् = भित्त्यन्तरगतानि सोपानानि आरोहणनि यस्य तं तथाभूतं वा, सुषिरस्तभ्मप्रवेशापासारम् = अन्तःसुषिरवता स्तम्भमार्गेण प्रवेशः अपसारो निर्गमश्च यस्मिन् तं तथाभूतं वा वासगृहं कारयेत्। तच्च आपत्प्रतीकारार्थम् = शत्रुभयप्रतिक्रियार्थं वा, यन्त्रबद्धतलावपातम् = यन्त्रेणोपरिभूमौ धारितं यन्त्रस्रंसनेऽधोदेशनिपातुकं च वासगृहं कारयेत्। आपदि = पूर्वं तादृशं न निर्मितं स्यात्तदा आपत्समये तादृशं कारयेत्। सहाध्यायिभयात् = शत्रुरपि तुल्यशास्त्रवेत्ता भवननिर्माणे तदा शंकानिवारणाय, अन्यथा वा = प्रकारान्तरेण वा स्वबुद्धिचातुर्येण, वासगृहं विकल्पयेत् = विकल्पेन कारयेत्।

विशेष—१. यहाँ अन्त में निर्देश दिया गया है कि वास्तुकला को जानने वाले शत्रु पक्ष के वास्तुकार ने यदि राजा की सभी बातों को अर्थात् गुप्त-भवन सम्बन्धी सभी रहस्यों को जान लिया हो, तो राजा अपने निवास-भवनों के निर्माण की रूपरेखा को अपनी बुद्धि के अनुसार बदल दे। अर्थात् यह आवश्यक नहीं है कि वैसा ही प्रासाद बनाया जावे। राजा अपनी प्रतिभा के अनुसार समय, देश तथा परिस्थितियों को देखकर परिवर्तन कर सकता है।

२. राजा का जो वास्तुकार है, उसी का साथी शत्रु राजा का वास्तुकार है और दोनों एक-दूसरे की वास्तु-निर्माण सम्बन्धी सभी कलाओं को जानते हैं। इससे राजा को भविष्य में हानि हो सकती है। अतएव राजा उस वास्तुकार को भी बदल दे तथा प्रासाद के नक्शे में भी परिवर्तन करा दे।

मानुषेणाग्निना त्रिरपसव्यं परिगतमन्तःपुरमग्निरन्यो न दहति; न चात्रान्योऽग्निर्ज्वलति; वैद्युतेन भस्मना मृत्संयुक्तेन कनकवारिणाऽवलिप्तं च॥ ३॥

अनुवाद—मानुषीय अग्नि के साथ अन्तःपुर की बायीं ओर से तीन बार परिक्रमाएँ कर देने पर उसे अग्नि नहीं जला पाती है और वहाँ दूसरी आग भी नहीं जलती है। बिजली गिरने से जले हुए पेड़ की भस्म लेकर उसमें उतनी ही मिट्टी मिलाकर व धतूरे के पानी में गूँथकर यदि दीवारों पर लेपन किया जावे तो वहाँ दूसरी अग्नि असर नहीं करती है।

संस्कृत-व्याख्या—मानुषेण = शत्रुनिहतस्य शूलारोपणमारितस्य वा मनुष्यस्यास्थिन कल्माषवेणुनोत्थितेन, अग्निना = वह्निना, त्रिः = त्रिवारम्, अपसव्यम् = वामावर्तेन,

परिगतम् = परीतम्, अन्तःपुरम् अन्योऽग्निः = अपरः पावकः, न दहति = न ज्वलयति। न चात्र = न च तस्मिन् भवने, अन्योऽग्निः ज्वलति, वैद्युतेन = विद्युदुद्भूताग्निदग्धवृक्षभवेन, भस्मना = भसितेन, मृत्संयुक्तेन = वल्मीकमृत्तिकामिश्रितेन, करकवारिणा = वर्षोपलजलयुक्तेन सता, अवलिप्तम् = कृतलेपनमन्तःपुरम् च = अन्योऽग्निर्न ज्वलति।

विशेष—१. अन्तःपुर की अग्नि से रक्षा के लिए एक उपाय यह बताया गया है कि मारे गये शत्रु अथवा शूली पर चढ़ाये गये व्यक्ति की हड्डियों और बाँस की रगड़ से उत्पन्न होने वाली अग्नि को मानुषाग्नि कहते हैं। उस अग्नि का अन्तःपुर से स्पर्श कराते हुए तीन बार बायीं ओर से परिक्रमाएँ कर दें, तो अन्तःपुर में अन्य कोई भी अग्नि नहीं लग सकती है। यह विधि अथर्ववेद के अनुसार है।

२. दूसरा उपाय यह है कि जिस वृक्ष पर बिजली गिरी हो, उसकी भस्म में वल्मीक की मिट्टी मिला दी जावे और उसे धतूरे के पानी से गूँथा जावे और उसका अन्तःपुर की दीवारों पर लेप किया जावे, तो उस भवन को अग्नि नहीं जला सकती है।

जीवन्तीश्वेतामुष्ककपुष्पवन्दाकाभिरक्षीवे जातस्याश्वत्थस्य प्रतानेन वा गुप्तं सर्पा विषाणि वा न प्रसहन्ते। मार्जारमयूरनकुलपृषतोत्सर्गः सर्पान्भक्षयति। शुकः शारिका भृङ्गराजो वा सर्पविषशङ्कायां क्रोशति। क्रौञ्चो विषाभ्याशे माद्यतिः ग्लायति जीवञ्जीवकः; म्रियते मत्तकोकिलः; चकोरस्याक्षिणी विरज्येते। इत्येवम् अग्निविषसर्पेभ्यः प्रतिकुर्वीत॥ ४॥

अनुवाद—गिलोय, शंखपुष्पी, कालीपांढरी और करौंदे के पेड़ पर लगे हुए बंदे की माला आदि के रख देने; अथवा सहिजन (सैजन) के पेड़ के ऊपर पैदा हुए पीपल के पत्तों के वंदनवार बाँध देने से अन्तःपुर में सर्प, बिच्छू आदि विषैले जन्तुओं तथा दूसरे विषों का कोई प्रभाव नहीं होता है। बिल्ली, मोर, नेवला और मृग आदि भी साँपों को खा जाते हैं। अन्न आदि में सर्प-विष की आशंका होने पर तोता, मैना और बड़ा भौंरा चिल्लाने लगते हैं। विष के समीप होने पर क्रौंच पक्षी विह्वल हो जाता है। जीवंजीव (चकोर के समान एक पक्षी) नामक पक्षी जहर को देखकर मुरझा जाता है। कोयल विष को देखकर मर जाती है। विष को देखकर चकोर की आँखें लाल हो जाती हैं। इन सब उपायों के द्वारा राजा अपने आप को तथा अन्तःपुर को अग्नि, सर्प और विष के भय से बचा कर रखे।

संस्कृत-व्याख्या—जीवन्तीश्वेतामुष्ककपुष्पवन्दाकाभिः = जीवन्ती गडूची श्वेता शंखिनी मुष्कको लोध्रभेदः पुष्पवन्दाका करवीरोपरिजाता वृक्षरुहा ताभिः, अर्थात् तासां मूलैः पत्रैश्च गुम्फितमालाभिः, अक्षीवे = शिग्रौ, जातस्य = समुत्पन्नस्य, अश्वत्थस्य = पिप्पलस्य, प्रतानेन = पत्रनिर्मितमाल्येन च गृहनिवेशितेन, गुप्तं सर्पाः = गृहं व्यालाः, विषाणि = वृश्चिकादिविषजीवाः स्थावरविषाणि वा, न प्रसहन्ते = अन्तःपुरं न बाधन्ते। मार्जारमयूरनकुलपृषतोत्सर्गः = मार्जारो विडालः मयूरः केकी नकुलः बभ्रुः मृगश्च सर्वे

एते गृहे निर्यन्त्रणविसृष्टाः सर्पान् भक्षयन्ति। शुकः शारिका भृङ्गराजः = धूम्याटोऽलिभेदो वा क्रोशति = सर्पविषशङ्कायां क्रन्दति। क्रौञ्चः = पक्षिविशेषः, विषाभ्याशे = विषसान्निध्ये, माद्यति = विह्वलति, जीवञ्जीवकः = चक्रवाकसदृशपक्षिविशेषः, ग्लायति = मूर्च्छितो भवति, मत्तकोकिलश्च म्रियते, चकोरस्य = चन्द्रिकाप्रियस्य, अक्षिणी = नेत्रे, विरज्येते = विरागं प्राप्नुतः। इत्येवम् = उक्तप्रकारं वस्तुतत्त्वं विदित्वा, अग्निविषसर्पेभ्यः = पावकविषव्यालेभ्यः, राजा, प्रतिकुर्वीत = अन्तःपुररक्षां विदधीत।

विशेष—१. अन्तःपुर की रक्षा का अन्य उपाय यह है कि गिलोय, शंखपुष्पी, काली पींढरी (मुष्कक) और करौंदे के वृक्ष पर लगे बन्दे की माला वहाँ पर लगा दी जावे, अथवा सहिजन के वृक्ष पर उगे पीपल के पत्रों की वन्दनवार लटका दी जावे, तो अन्तःपुर में सर्प, बिच्छू आदि विषैले जीवों तथा अन्य विषों का प्रभाव नहीं होता है।

२. अन्तःपुर में सर्पादि विषधारी जीव हैं या किसी ने घातक विष वहाँ रख दिया है, इस बात को जानने के लिए तोता, मैना, भृङ्गराज, कोयल, चकोर आदि के व्यवहार पर दृष्टि रखनी चाहिए, क्योंकि इनसे विष की स्थिति का ज्ञान सहजता से हो जाता है।

पृष्ठतः कक्ष्याविभागे स्त्रीनिवेशो गर्भव्याधिवैद्यप्रत्याख्यातसंस्था वृक्षोदकस्थानं च। बहिः कन्याकुमारपुरम्। पुरस्तादलङ्कारभूमिर्मन्त्रभूमिरुपस्थानं कुमाराध्यक्षस्थानं च। कक्ष्यान्तरेष्वन्तर्वंशिकसैन्यं तिष्ठेत्॥ ५॥

अनुवाद—राजमहल के पीछे कक्ष्याभाग में रनिवास, उसके समीप ही प्रसूता, बीमार तथा असाध्य रोगिणी स्त्रियों के लिए अलग-अलग तीन कक्ष, उन्हीं के छोटे-छोटे उद्यान तथा सरोवरों का निर्माण किया जाय। बाहर की ओर राजकुमारियों और राजकुमारों के लिए स्थान बनवाये जायें। राजमहल के आगे हरी-हरी घास और फूलों से सुसज्जित वाटिका होनी चाहिए। उसके बाद मंत्रसभा का स्थान, फिर दरबार और तदनन्तर युवक राजकुमार, समाहर्त्ता-सन्निधाता आदि अध्यक्षों के कार्यालय होने चाहिए। कक्ष्याओं के बीच कंचुकी तथा अन्तःपुररक्षकों का दल रहे।

संस्कृत-व्याख्या—कक्ष्याविभागे = राजावसथस्य, पृष्ठतः = पश्चाद्भागे, स्त्रीनिवेशः = देवीवासस्थानं भवेत्, गर्भव्याधिवैद्यप्रत्याख्यातसंस्थाः = देवीनां गर्भावस्थायां वासार्था व्याध्यवस्थायां वासार्था वैद्यप्रत्याख्याता अचिकित्सनीयरोगग्रस्ता चेति तिस्रः संस्थाः, वृक्षोदकस्थानं च = तासां पृष्ठतश्च उद्यानतटाकादिकं च भवेत्। बहिः = बहिर्देशे, कन्याकुमारपुरम् = कन्यानिवेशः अप्राप्तयौवनराजपुत्रनिवेशश्च भवेत्। पुरस्तात् = राजभवनस्याग्रे, अलङ्कारभूमिः = दृष्टिविलोभनविचित्रमण्डितभूमिः, मन्त्रभूमिः = मन्त्रसभा, उपस्थानम् = आस्थानमण्डपः, कुमाराध्यक्षस्थानं च = यूनां राजपुत्राणां प्रमुखाविभागाध्यक्षाणां सन्नृधातृसमाहर्तप्रभृतीनां च स्थानं भवेत्। कक्ष्यान्तरेषु = कक्ष्याणां मध्येषु = अन्तर्वंशिकसैन्यम् = अन्तःपुराधिकृतानां कञ्चुकिप्रभृतीनां गणः, तिष्ठेत् = निविष्टो भवेत्।

विशेष—१. इसमें राजभवन के पृष्ठभाग और आगे के भाग में किन-किन कक्ष्यों का निर्माण किया जावे इसका निर्देश दिया गया है।

२. राजप्रासाद के निर्माण का ऐसा निर्देश सुरक्षा, सुव्यवस्था एवं सुन्दरता की दृष्टि से भी किया गया है।

अन्तर्गृहगतः स्थविरस्त्रीपरिशुद्धां देवीं पश्येत्। न काञ्चिदभिगच्छेत्। देवीगृहे लीनो हि भ्राता भद्रसेनं जघान; मातुः शय्याऽन्तर्गतश्च पुत्रः कारूशम्। लाजान् मधुनेति विषेण पर्यस्य देवी काशिराजं, विषदिग्धेन नूपुरेण वैरन्त्यं, मेखलामणिना सौवीरं, जालूथमादर्शेन, वेण्यां गूढं शस्त्रं कृत्वा देवी विडूरथं जघान। तस्मादेतान्यास्पदानि परिहरेत्॥ ६॥

अनुवाद—रनिवास के अन्दर जाकर राजा किसी विश्वस्त बूढ़ी परिचारिका के साथ महारानी से मिले। अकेला किसी रानी के पास न जाये, क्योंकि पहले कभी महारानी के निवास में छिपे (वीरसेन) भाई ने भद्रसेन राजा को मार दिया था। इसी प्रकार माता की शय्या के नीचे छिपे हुए राजकुमार ने अपने पिता कारुश को मार डाला था। इसी प्रकार काशीराज की रानी ने धान की खीलों में मधु के बहाने विष मिलाकर अपने पति को मार डाला था। इसी भाँति विष में बुझे नूपुर के द्वारा वैरन्त्य राजा को और विष-बुझी करधनी की मणि से सौबीर राजा को, दर्पण के द्वारा जालूथ राजा को और अपनी बेणी में शस्त्र छिपाकर बिडूरथ राजा को उनकी रानियों ने धोखे में मार डाला था। इसलिए राजा को इस प्रकार की विपत्तियों से सावधान रहना चाहिए।

संस्कृत-व्याख्या—अन्तर्गृहगतः = स्ववासगृहस्थितः, स्थविरस्त्रीपरिशुद्धाम् = आप्तवृद्धपरिचारिकया परिशोधिताम्, देवीम् = महाराज्ञीम्, पश्येत्। काञ्चित् = कामपि देवीमुद्दिश्य स्वयं तद्गृहम्, न अभिगच्छेत्। हि = यतः, देवीगृहे लीनः = राज्यं जिहीर्षुः कृतसंकल्पनिलीनः, भ्राता = सोदर्य वीरसेननामा, भ्रदसेनम् = स्वभ्रातरम्, जघान = अमारयत्, मातुः = स्वजनन्याः, शय्यान्तर्गतः = शयनीयस्याधो निलीनश्च, पुत्रः, कारूशम् = करूशदेशाधिपम्; जघान। लाजान् मधुना = माक्षिकेण मिश्रिता इति वदन्ती, विषेण पर्यस्य = मिश्रयित्वा, देवी = राज्ञी, काशिराजं जघान, विषदिग्धेन = स्पर्शवेधिगरलोपलिप्तेन, नूपुरेण, वैरन्त्यम् = तन्नामकवनवासिदेशेश्वरं जघान, मेखलामणिना = विषदिग्धेन काञ्चीमणिना, सौवीरम् = तद्देशाधिपतिं परन्तपाख्यं जघान, आदर्शेन = मुकुरेण, जालूथम् = अयोध्याधिपतिम्, वेण्यां शस्त्रं गूढं कृत्वा = शस्त्रं संगोप्य, देवी, विडूरथम् = तन्नामकं राजानम्, जघान = अमारयत्। तस्मात् कारणाद्, एतानि आस्पदानि = व्यापत्तिनिमित्तानि, परिहरेत् = सावधानतया तिष्ठेत्।

विशेष—१. राजा को चाहिए कि कभी किसी रानी के निवास में अकेला न जावे। यदि रानी से मिलने की आवश्यकता हो तो उसे ही अपने पास बुलावे।

२. कलिंगनरेश भद्रसेन, कारुश, काशिराज, परन्तप आदि राजाओं को रनिवास में एकाकी जाने से मारा गया। इस सम्बन्ध में पुराणेतिहास की कुछ घटनाओं का उल्लेख किया गया है।

मुण्डजटिलकुहकप्रतिसंसर्गं बाह्याभिश्च दासीभिः प्रतिषेधयेत्। न चैनाः कुल्याः पश्येयुरन्यत्र गर्भव्याधिसंस्थाभ्यः। रूपाजीवाः स्नानप्रघर्षशुद्धशरीराः परिवर्तितवस्त्रालङ्कारा: पश्येयुः। आशीतिकाः पुरुषाः पञ्चाशत्काः स्त्रियो वा मातापितृव्यञ्जनाः स्थविरवर्षवराभ्यागारिकाश्चावरोधानां शौचाशौचं विद्युः, स्थापयेयुश्च स्वामिहिते॥ ७॥

अनुवाद—बाहरी दासियों (अन्तःपुर से बाहर की दासियों) के साथ-साथ मुण्डक, जटाधारी एवं ठगों के साथ सम्पर्क करने का (रानियों को) निषेध करे। प्रसव एवं बीमारी की दशा के अतिरिक्त रानियों को बन्धु-बान्धव भी न देख सकें। स्नान और उबटन से शरीर को शुद्ध करके, वस्त्रों एवं आभूषणों को बदलकर वेश्याएँ राजा को देखें। माता-पिता के समान अस्सी वर्ष की आयु वाले पुरुष तथा पचास वर्ष की आयु वाली स्त्रियाँ, वृद्ध, नपुंसक एवं घर के कार्यों को करने वाले लोग अन्तःपुर की स्त्रियों की पवित्रता-अपवित्रता का ध्यान रखें और उन्हें राजा के हित में लगायें।

संस्कृत-व्याख्या—मुण्डकजटिलकुहकप्रतिसंसर्गम् = मुण्डैः बौद्धभिक्षुक्षपणकादिभिः जटिलैः शैवपाशुपतादिभिः कुहकैः मायाप्रयोक्तृभिश्च प्रतिसंसर्गं परिचयं देवीनाम्, बाह्याभिश्च सार्धं, प्रतिषेधयेत् = वारयेत्। कुल्याः = देवीबान्धवाः, एनाः = देवीः, गर्भव्याधिसंस्थाभ्यः = प्रसवव्याधिकालेभ्यः, अन्यत्र = अन्यस्मिन् काले, न पश्येयुः = न विलोकयेयुः। रूपाजीवाः = वेश्याः, स्नानप्रघर्षशुद्धशरीराः = स्नानेन कायमलघर्षणेन च शुद्धदेहाः, परिवर्तितवस्त्रालङ्काराः = वसनभूषणादिसर्वमपि परिवर्त्य, पश्येयुः = राजानं विलोकयेयुः। अशीतिकाः = अशीतिवयस्काः, पुरुषाः, पञ्चाशत्काः = पञ्चाशद्वर्षीयाः, स्त्रियः, मातपितृव्यञ्जनाः = मातृपितृसधर्माणः, स्थविरवर्षवराभ्यागारिकाः = वृद्धाः षण्डाश्च येऽभ्यागारिकाः कुटुम्बचिन्तकास्ते च, अवरोधानाम् = अन्तःपुरस्त्रीणाम्, शौचाशौचम् = पवित्रापवित्रताम्, विद्युः = जानीयुः, स्वामिहिते = स्वामिक्षेमाय च अवरोधान् स्थापयेयुः।

विशेष—राजा की रक्षा एवं अन्तःपुर के प्रति उसे सावधान रहने के लिए निर्देश दिया गया है।

स्वभूमौ च वसेत् सर्वः परभूमौ न सञ्चरेत्।
न च बाह्येन संसर्गं कश्चिदाभ्यन्तरो व्रजेत्॥ ८॥

अनुवाद—अन्तःपुर के सभी परिचारक-परिचारिकाएँ अपने-अपने स्थानों पर ही रहें, एक-दूसरे के स्थान पर न जाने पावें। इसी प्रकार भीतर का कोई भी आदमी बाहर के आदमियों से न मिलने पावे।

संस्कृत-व्याख्या—सर्व: = देवीजनोऽन्तर्वंशिकजनश्च, स्वभूमौ = आत्मन: नियते स्थाने, वसेत् = तिष्ठेत्, परभूमौ = परस्य नियते स्थाने, न सञ्चरेत् = न संगच्छेत्। आभ्यन्तर: कश्चित् = अन्त:पुरनियोजित: कोऽपि जनश्च बाह्येन = अन्येन जनेन, संसर्गं न व्रजेत् = न गच्छेत्।

सर्वं चावेक्षितं द्रव्यं निबद्धागमनिर्गमम्।
निर्गच्छेदधिगच्छेद्वा मुद्रासंक्रान्तभूमिकम्॥ ९॥

अनुवाद—जो भी वस्तु महल से बाहर आवे तथा महल में जावे, उसका भली-भाँति निरीक्षण कर और उसके सम्बन्ध के सारे विवरण रजिस्टर में लिख देने चाहिए। राजमहल के बाहर और भीतर जाने-आने वाली प्रत्येक वस्तु पर राजकीय मुहर लग जानी चाहिए।

संस्कृत-व्याख्या—निबद्धागमनिर्गमम् = अमुकस्थानादागतममुकस्थानं गमिष्यतीति पुस्तकार्पितागमनिर्गमम्, मुद्रासंक्रान्तभूमिकम् = राजमुद्राभिरागमनिर्गमस्थानसम्बन्धिनीभि: संक्रान्ता अंकिता भूमि: आधारभाण्डं यस्य तत्तथाभूतम्, सर्वं द्रव्यम् = सर्वमपि वस्तुजातम्, अवेक्षितं च = स्वयं साक्षाद् दृष्टं सत्, निर्गच्छेत् = निर्गमयेत्, अधिगच्छेद् वा = अथवा स्वीकुर्यात्।

विशेष—दोनों श्लोकों में नियुक्त व्यक्तियों को अपने ही स्थान रहकर कार्य करने का तथा समस्त द्रव्य के आगमन-निर्गमन आदि का रजिस्टर में हिसाब लिखना तथा राजमुद्रा से अंकित करने का निर्देश दिया गया है।

॥ इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे निशान्तप्रणिधि: विंशोऽध्याय:॥

❑❑❑

एकविंशोऽध्याय:

षोडशं प्रकरणम्—आत्मरक्षितकम्

शयनादुत्थित: स्त्रीगणैर्धन्विभि: परिगृह्येत, द्वितीयस्यां कक्ष्यायां कञ्चुकोष्णीषिभिर्वर्षवराभ्यागारिकै:, तृतीस्यां कुब्जवामनकिरातै:, चतुर्थ्यां मन्त्रिभि: सम्बन्धिभिदौवारिकैश्च प्रासपाणिभि: ॥ १ ॥

अनुवाद—प्रात:काल राजा के बिस्तर से उठते ही धनुष-बाण लिये स्त्रियाँ उन्हें घेर लें। राजा जब दूसरे कक्ष में प्रवेश करे तो वहाँ कुर्ता, पगड़ी पहिने हुए नपुंसक तथा दूसरे सेवक राजा की देख-रेख के लिए उपस्थित रहें। तीसरे कक्ष में कुबड़े, बौने एवं निम्न जाति के परिजन राजा की रक्षा करें। चौथे कक्ष में मंत्रियों, सम्बन्धियों और हाथ में भाला लिये द्वारपालों द्वारा राजा की रक्षा होनी चाहिए।

संस्कृत-व्याख्या—शयनात् = प्रात:काले शय्यात:, उत्थित: राजा, धन्विभि: = धनुर्धारीणिभि:, स्त्रीगणै: = स्त्रीपरिजनै:, परिगृह्येत = परिवार्येत, द्वितीयस्यां कक्ष्यायां गते सति, कञ्चुकोष्णीषिभि: = वारबाणशिरस्त्राणधारिभि:, वर्षवराभ्यागारिकै: = षण्डै: राजगृहकार्यचिन्तकैश्च परिवार्य, तृतीयास्यां कक्ष्यायां कुब्जवामनकिरातै: = कुब्जै: गण्डुलै: वामनै: खर्वै: किरातै: जातिविशेषैश्च परिगृह्येत, चतुर्थ्यां कक्ष्यायां गते सति, प्रासपाणिभि: = कुन्तहस्तै:, सम्बन्धिभि: = अमात्यादिभि:, दौवारिकै:= द्वाररक्षकैश्च परिगृह्येत।

विशेष—१. राजा की आत्मरक्षा का प्रबन्ध कैसा रहे, यही इस अध्याय में निर्दिष्ट किया गया है।

२. प्रत्येक कक्ष में राजा के साथ कोई-न-कोई रक्षक अवश्य रहे।

पितृपैतामहं महासम्बन्धानुबन्धं शिक्षितमनुरक्तं कृतकर्माणं जनमासन्नं कुर्वीत, नान्यतोदेशीयमकृतार्थमानं स्वदेशीयं वाप्यपकृत्योपगृहीतम्। अन्तर्वंशिकसैन्यं राजानमन्त:पुरं च रक्षेत्॥ २ ॥

अनुवाद—वंश-परम्परा से अनुगत, उच्चकुलोत्पन्न, शिक्षित, अनुरक्त और प्रत्येक कार्य की भली-भाँति समझने वाले पुरुषों को राजा अपना अंगरक्षक नियुक्त करे। किन्तु धन-सम्मान-रहित विदेशी व्यक्ति को तथा एक बार पृथक् होकर पुन: नियुक्त स्देशीय व्यक्ति को भी राजा अपना अंगरक्षक न बनावे। राजमहल की भीतरी सेना राजा की और रनिवास की रक्षा करे।

संस्कृत-व्याख्या—पितृपैतामहम् = वंशपारम्पर्यप्राप्तम्, महासम्बन्धानुबन्धम् = महतः प्रशस्तः सम्बन्धोऽन्वयः येषां ते तथोक्तास्तैरनुबन्धः सम्बन्धानुवृत्तिर्यस्य तम्, शिक्षितम् = कृतविद्यम्, अनुरक्तम् = अनुरागिणम्, कृतकर्माणम् = दृष्टकर्मप्रवृत्तम्, जनमासन्नम् = स्वस्वाङ्गरक्षकम्, कुर्वीत = विदध्यात्। अन्यतोदेशयीम् = वैदेशिकम्, अकृतार्थमानम् = अकृतधनहिरण्यादिदानसत्कारं सन्तम्, स्वदेशीयमपि वा पूर्वमपकृत्य पश्चात् उपगृहीतम् = स्वीकृतम्, नासन्नं कुर्वीत। अन्तर्वंशिक सैन्यम् = अन्तःपुरस्थकञ्चुकिनिर्गुण्डकादिगणः, राजानम् अन्तःपुरं च रक्षेत् = तदुभयययोः रक्षां कुर्यात्।

विशेष—१. निर्देश दिया गया है कि अङ्गरक्षक की नियुक्ति सावधानी से करनी चाहिए।

२. अन्तःपुर की सेना ही प्रासाद में राजा की और अन्तःपुर की रक्षा करे तथा अंगरक्षण का कार्य सम्पन्न करे।

गुप्ते देशे माहानसिकः सर्वमास्वादबाहुल्येन कर्म कारयेत्। तद्राजा तथैव प्रतिभुञ्जीत, पूर्वमग्नये वयोभ्यश्च बलिं कृत्वा॥ ३॥

अनुवाद—माहानसिक (पाकशाला का अध्यक्ष या निरीक्षक) किसी एकांत स्थान में भोज्य पदार्थों का स्वाद ले-लेकर उन्हें सुस्वादु तथा सुरक्षा से तैयार कराये। भोजन तैयार हो जाने पर राजा पहिले अग्नि तथा पक्षियों को बलि प्रदान कर, फिर स्वयं खावे।

संस्कृत-व्याख्या—माहानसिकः = पाकशालाध्यक्षः, गुप्ते = अन्यादृश्ये, देशे, सर्वं कर्म = सर्वप्रकारं पाककर्म, आस्वादबाहुल्येन = बहुतमास्वाद्य, कारयेत् = साधयेत्। राजा, तत् = साधितमन्नादिकम्, तथैव = तेनैव रूपेण युक्तं न तु यातयामतया वैरूप्यमापन्नम्, पूर्वम् = प्रथमम्, अग्नये, वयोभ्यः = पक्षिभ्यश्च, बलिं कृत्वा = वैश्वदेवं विधाय, बलिं वा दत्त्वा, तदनन्तरमेव प्रतिभुञ्जीत = अश्नीयात्।

विशेष—राजा को भोजन करने से पूर्व अग्नि और पक्षियों को बलि देनी चाहिए, अर्थात् उसे उस पके हुए अन्न का इस तरह भी परीक्षण करना चाहिए। इस तरह वैश्वदेव पूजा एवं बलिदानादि क्रिया एक साथ सम्पन्न हो जायेगी।

अग्नेर्ज्वालाधूमनीलता शब्दस्फोटनं च विषयुक्तस्य, वयसां विपत्तिश्च। अन्नस्योष्मा मयूरग्रीवाभः शैत्यमाशु क्लिष्टस्येव वैवर्ण्यं सोदकत्वमक्लिन्नत्वं च। व्यञ्जनानामाशुशुष्कत्वं च क्वाथः श्यामफेनपटलविच्छिन्नभावो गन्धस्पर्शरसवधश्च। द्रवेषु हीनातिरिक्तच्छायादर्शनं फेनपटलसीमान्तोर्ध्वराजीदर्शनं च। रसस्य मध्ये नीला राजी, पयसस्ताम्रा, मद्यतोययोः काली, दध्नः श्यामा, मधुनः श्वेता च। द्रव्याणामार्द्राणामाशुप्रम्लानत्वमुत्पक्वभावः क्वाथनीलश्यामता च।

शुष्काणामाशुशातनं वैवर्ण्यं च। कठिनानां मृदुत्वं मृदूनां कठिनत्वं च। तदभ्याशे क्षुद्रसत्त्ववधश्च। आस्तरणप्रावरणानां श्याममण्डलता तन्तुरोमपक्ष्मशातनं च। लोहमणिमयानां पङ्कमलोपदेहता स्नेहरागगौरवप्रभाववर्णस्पर्शवधश्च। इति विषयुक्तलिङ्गानि॥ ४॥

अनुवाद—विषमिश्रित अन्न से अग्नि की लपट और धुआँ नीला हो जाता है तथा चट-चट शब्द करता है। विषमिश्रित अन्न से पक्षियों की मृत्यु हो जाती है। विषयुक्त अन्न की भाप मयूर-ग्रीवा जैसे रंग की होती है; वह भोजन शीघ्र ही ठण्डा हो जाता है; हाथ के स्पर्श से उसका रंग बदल जाता है, उसमें गाँठ-सी पड़ जाती है, और वह अन्न अधपका ही रह जाता है। दाल जल्दी ही सूख जाती है, फिर से आँच पर रखा जाय तो मट्ठे की तरह वह फट जाती है, उसकी झाग काली तथा वह अलग-अलग हो जाती है, और उसका स्वाद, स्पर्श, सुगन्ध आदि सब नष्ट हो जाते हैं। विषयुक्त रसेदार अन्न की आकृति विकृत हो जाती है, उसका पानी अलग तैरता रहता है, और उसके ऊपर रेखा-सी खिंच जाती है। यदि घी, तेल आदि रसिक पदार्थों में विष मिला हो तो उनमें नीले रंग की रेखाएँ तैरने लगती हैं। विषमिश्रित दूध में ताम्रवर्ण की, शराब तथा पानी में काले रंग की, दही में श्यामवर्ण की और शहद में सफेद रंग की रेखाएँ दिखाई देती हैं। आम, अनार आदि द्रव्यों में विष मिला हो तो वे सिकुड़ जाते हैं, उनमें सडांध आने लगती है और पकाने पर उनका वर्ण कुछ कालापन एवं भूरापन लिये होता है। सूखे हुए पदार्थों का चूर-चूर हो जाता है। विषमिश्रित ठोस पदार्थ मुलायम और मुलायम पदार्थ ठोस हो जाता है। विषमय वस्तु के समीप रेंगने वाले छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े मर जाते हैं। ओढ़ने-बिछाने के कपड़ों पर यदि विष का प्रयोग किया गया हो तो उनमें स्थान-स्थान पर धब्बे पड़ जाते हैं। यदि कपड़ा सूती हुआ तो उसका सूत और ऊनी हुआ तो उसकी रूआँ उड़ जाती है। सोने, चाँदी, स्फटिक मणि आदि धातुओं की आभा पंकिल दिखाई देती है, उनकी चमक, भारीपन और पहिचान आदि सब जाते रहते हैं। यहाँ तक विषमिश्रित पदार्थों के पहिचान की विधियाँ निरूपित हैं।

संस्कृत-व्याख्या—विषयुक्तस्य = विषदूषितान्नसम्पृक्तस्य, अग्नेः = पावकस्य, ज्वालाधूमनीलता = ज्वालाधूमयोर्नीलत्वम्, शब्दस्फोटनम् = चटचटाशब्दश्च भवति, वयसाम् = विषमिश्रितान्नभक्षणेन पक्षिणाम्, विपत्तिः प्राणनाशश्च। अन्नस्य = विषयुक्तस्यान्नस्य, ऊष्मा = वाष्पः, मयूरग्रीवाभः = मयूरकण्ठन्मेचकः, आशु = शीघ्रम्, शैत्यम् = शीतत्वम्. क्लिष्टस्यैव = करसंपिष्टस्यैव, वैवर्ण्यम् = वर्णवैरूप्यम्, सोदकत्वम् = सिक्थैकीमावः अवैशद्यं वा, अक्लिन्नत्वम् = असम्यक्पाकत्वं च भवति। व्यञ्जनानाम्

= सूपादीनाम्, आशुशुष्कत्वम् = शीघ्रशोषः, क्वाथः = अग्नियोगे तक्रादीनामुत्क्वथनं च, श्यामफेनपटलविच्छिन्नभावः= श्यामफेनस्य व्यञ्जनाद् विभक्तस्य स्थितिः, गन्धस्पर्शरसवधश्च = गन्धस्पर्शरसानां नाशश्च भवति। द्रवेषु = दुग्धादिषु विषयुक्तेषु, हीनातिरिक्तच्छायादर्शनम् = हीनाया अतिरिक्ताया वा स्वच्छायाया दर्शनम्, फेनपटलसीमन्तोर्ध्वराजिदर्शनम् = फेनपटलस्य विभागदर्शनमूर्ध्वरेखादर्शनं च भवति। रसस्य = सर्पिस्तैलेक्षुरसादेः विषयुक्तस्य, मध्ये नीला राजी = नीलरेखाः, पयसः = क्षीरस्य मध्ये, ताम्रा = ताम्रवर्णा रात्रीः, मद्यतोययोः = सुराजलयोः मध्ये काली राजिः, दध्नः श्यामा, मधुनः = माक्षिकस्य, श्वेता : = शुभ्रवर्णा राजिर्भवति। द्रव्याणामार्द्राणाम् = आम्रदाडिमफलादीनां विषयुक्तानाम्, आशुम्लानत्वम्, उत्पक्वभावः = अतिपक्वत्वं पूतीभावः, क्वाथनीलश्यावता = क्वाथे नीलत्वं श्यावत्वं कपिशत्वं च भवति। शुष्काणाम् = शुष्कद्रव्याणाम्, आशुशातनम् = चूर्णीभावः, वैवर्ण्यं च = वर्णविकृतित्वं च भवति। कठिनानाम् = कठिनद्रव्याणाम्, मृदुत्वं मृदूनां च कठिनत्वं भवति। तदभ्याशे = विषयुक्तद्रव्यसमीपे चरता, क्षुद्रसत्त्ववधः = पिपीलिकादीनां क्षुद्रजन्तूनां मरणं च भवति। आस्तरणप्रावरणानाम् = आसनशयनकम्बलानां नीशाराणां च विषस्पृष्टानाम्, श्याममण्डलता = विवर्णमण्डलयुक्तता, तन्तुरोमपक्ष्यशातनम् = तन्तूनां रोम्णां च यानि पक्ष्माणि सूक्ष्मांशास्तेषां शातनं भ्रंशनञ्च भवति। लोहमणिमयानाम् = लोहसुवर्णमणिमयानां वस्तूनां विषयुक्तानाम्, पङ्कमलोपदेहता = पङ्कमलेन लिम्पनमिव, स्नेहरागगौररवप्रभाववर्णस्पर्शवधः = स्नेहः स्निग्धत्वं रागः गौरवं गुरुत्वं प्रभावः स्वकार्यसाधनशक्तिः वर्णः शुक्लादिः स्पर्शश्लक्षणखरादिस्पर्शगुणः, एतेषां वधो नाशश्च भवति। इति विषयुक्तलिङ्गानि = विषमिश्रितवस्तुलक्षणानि विज्ञेयानि।

विशेष—१. इस अवतरण में विषमिश्रित पदार्थों की पहचान बताई गई है।

२. राजा को विषयुक्त वस्तुओं के उक्त लक्षण देखकर ही उन्हें त्यागना अथवा अपनाना चाहिए।

विषप्रदस्य तु शुष्कश्यामववक्त्रता वाक्सङ्गः स्वेदो विजृम्भणं चातिमात्रं वेपथुः प्रस्खलनं वाक्यविप्रेक्षणमावेशः कर्मणि स्वभूमौ चानवस्थानमिति ॥ २ ॥

अनुवाद—चेहरे का रंग बदल जाना, बातचीत करते हुए वाणी का लड़खड़ाना, पसीना, कँपकँपी तथा जंभाई आना, बेचैन होकर वह गिर पड़ना, संदेहवश दूसरों की बातें ध्यानपूर्वक सुनना, बात-बात में आवेश में आना, अपने कार्य और अपने स्थान पर मन का स्थिर न रहना— ये विष देने वाले के लक्षण हैं।

संस्कृत-व्याख्या—विषप्रदस्य = विषदस्य, शुष्कश्याववक्त्रता : शुष्कमलिनमुखत्वम्, वाक्सङ्गः = वाचि प्रतिबन्धः, स्वेदः = क्लिन्नत्वम्, विजृम्भणं च अतिमात्रं जृम्भणम् =

शरीरे कम्पनम्, प्रस्खलनम् = अविषमेऽपि देशे पतनम्, वाक्यविप्रेक्षणम् = येन केनापि कथ्यमाने वाक्येऽवधानदानम्, कर्मणि = स्वकार्ये, स्वभूमौ = स्वस्थाने च, अनवस्थानम् = अस्थिरत्वञ्च इति तस्य निग्रहाय लक्षणानि सन्ति।

विशेष—इसमें अन्न-पानादि में विष मिलाने वाले व्यक्ति की पहिचान बताई गई है। राजा या उसके आप्त परिजनों को विष देने वाले की इन बातों या विकारों से पहिचान करनी चाहिए।

तस्मादस्य जाङ्गलीविदो भिषजश्चासन्नाः स्युः ॥ ६ ॥

अनुवाद—इसलिए विषविद्या के जानकार और वैद्य राजा के समीप रहें।

संस्कृत-व्याख्या—तस्मात् = पूर्वोक्तकारणाद् आत्मरक्षणार्थम्, अस्य = राज्ञः, जाङ्गलीविदः = विषविद्याभिज्ञाः, भिषजः = वैद्याश्च, आसन्नाः स्युः = समीपवर्तिनो भवेयुः।

विशेष—१. विष के प्रभाव को शान्त करने के लिए विषविद्या के ज्ञाता राजा के समीप अवश्य रहें।

२. विष के प्रभाव से जो अन्य रोग हों, उनके उपचारार्थ अन्य चिकित्सक भी समीप में रहे।

भिषग्भैषज्यागारादास्वादविशुद्धमौषधं गृहीत्वा पाचकपोषकाभ्यामात्मना च प्रतिस्वाद्य राज्ञे प्रयच्छेत्। पानं पानीयं चौषधेन व्याख्यातम् ॥ ७ ॥

अनुवाद—वैद्य औषधालय में स्वयं खाने के बाद परीक्षा की गई (विशुद्ध) औषध को सामने लाकर (उसमें से कुछ) पकाने और पीसने वाले लोगों के साथ स्वयं खावे और तब राजा को दे। इसी प्रकार जल तथा मद्य का भी परीक्षण कर राजा को देना चाहिए।

संस्कृत-व्याख्या—भिषग्, भैषज्यागारात् = औषधशालायाः, आस्वादविशुद्धम् = स्वयमेवास्वादेन निर्दोषतयावगतम्, औषधं गृहीत्वा, पाचकपोषकाभ्याम् = औषधपक्तृपेष्टृभ्याम्, आत्मना = स्वयं च, प्रतिस्वाद्य = राजसमक्षं खादयित्वा, राज्ञे प्रयच्छेत् = नृपाय दद्यात्। पानम् = मद्यम्, पानीयम् = जलं च, औषधेन = औषदानोक्तविधिना, व्याख्यातम् = दातव्यमित्यर्थः।

कल्पकप्रसाधकाः स्नानशुद्धवस्त्रहस्ताः समुद्रमुकरणमन्तर्वंशिकहस्तादादाय परिचरेयुः ॥ ८ ॥

अनुवाद—नाई तथा वस्त्रालंकार धार कराने वाले परिचारक स्नान करके, शुद्ध वस्त्र धारण कर तथा हाथों को साफ करके (राजा की) मुहर लगे हुए उपकरण (उस्तरा आदि) राजमहल के अन्दर रहने वाले कंचुकी आदि लेकर राजा की परिचर्या करें।

संस्कृत-व्याख्या—कल्पकसाधकाः = कल्पकाः नापिताः प्रसाधकाः अलङ्कर्तारश्च, स्नातशुद्धवस्त्रहस्ताः = स्नाताः शुद्धवस्त्राः शुद्धहस्ताश्च सन्तः, समुद्रम् = मुद्राङ्कितम्,

उपकरणम्= क्षुरवस्त्राभरणमञ्जूषादिकम्, अन्तर्वंशिकहस्तात् = कञ्चुकिकरात्, [illegible] गृहीत्वा, परिचरेयुः = राज्ञः परिचर्यां कुर्युः।

विशेष—इसमें राजा की सुरक्षा में नियुक्त कञ्चुकी आदि कञ्चुकी और सेवकों के कर्त्तव्यों का निर्देश दिया गया है।

स्नापकसंवाहकास्तरकरजकमालाकारकर्म दास्यः कुर्युः, ताभिरधिष्ठिता वा शिल्पिनः। आत्मचक्षुषि निवेश्य वस्त्रमाल्यं दद्युः, स्नानानुलेपनप्रघर्षचूर्णवासस्नानीयानि स्ववक्षोबाहुषु च। एतेन परस्मादागतकं व्याख्यातम्॥ ९॥

अनुवाद—राजा को स्नान कराना, उसके अंगों को दबाना, बिस्तर बिछाना, कपड़े धोना और माला बनाना आदि कार्य दासियाँ करें, अथवा दासियों की देखरेख में इन कार्यों के जानकार लोग करें। दासियाँ अपनी आँखों से देखकर ही राजा को वस्त्रालंकरण दें। स्नान के समय उपयोग में लाई जाने वाली वस्तुओं, जैसे—उबटन, चन्दन, सुगन्धित चूर्ण (पाउडर) तथा पटवास आदि को दासियाँ पहिले अपनी छाती एवं बाँह पर लगाकर अजमा लें और तदनन्तर राजा पर उनका प्रयोग करें। इसी तरह दूसरे स्थानों से आई हुई वस्तुओं के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए।

संस्कृत-व्याख्या—स्नापकसंवाहकास्तरकरजकमालाकारकर्म = स्नापकः संवाहकः अङ्गमर्दकः आस्तरकः आसनशयनकल्पकः रजकः मालाकारश्च एतेषां कर्म कार्यसम्पादनम्, दास्यः = सुपरिक्षिताः सेविकाः, कुर्युः, वा = अथवा, ताभिः = दासीभिः, अधिष्ठिताः = अध्यक्षिताः, शिल्पिनः = स्नापकादिशिल्पिनः कुर्युः। आत्मचक्षुषि = स्वनेत्रे, वस्त्रमाल्यम् = सर्वमपि वस्त्रालंकरणम्, निवेश्य = विषयोगशुद्धिबोधनार्थं निधाय, दद्युः = राज्ञे प्रयच्छेयुः, स्नानानुलेपनप्रघर्षचूर्णवासस्नानीयानि = स्नानं गन्धमाल्याद्यनुलेपनं चन्दनादि प्रघर्षः पञ्चकषायादिचूर्णवासः स्नानीयं स्नाने शिरसि देयं चूर्णमेतानि च, स्ववक्षोबाहुषु = स्ववक्षःसहितेषु भुजेषु, च = उक्तरीत्या निवेश्य दद्युः। एतेन परस्मात् = परदेशात्, आगतकम् = प्राप्तं भोग्यवस्तु च, व्याख्यातम् = प्रतिपादनदानविधानं बोद्धव्यम्।

विशेष—१. परिचारक या दासियाँ प्रत्येक वस्तु को अच्छी तरह देख लें कि क्या वे विषयुक्त तो नहीं हैं ? इसके बाद ही राजा को उपयोगार्थ दें।

२. प्रत्येक कार्य में वे इसी तरह की सावधानी रखें।

कुशीलवाः शस्त्राग्निरसवर्जं नर्मयेयुः। आतोद्यानि चैषामन्तस्तिष्ठेयुः, अश्वरथद्विपालङ्काराश्च॥ १०॥

अनुवाद—खेल दिखाने वाले लोग शस्त्र, अग्नि तथा विष को छोड़कर अन्य खेल ही (राजा के सामने) दिखावें। इन नटों की उपयोग वाली सामग्री बाजे, घोड़े, रथ, हाथी तथा आभूषण राजभवन में ही रहने चाहिए।

संस्कृत-व्याख्या—कुशीलवाः = लंघनप्लवनादिनर्मवृत्तयो नटादयः, शस्त्राग्निरसवर्जम् = आयुधवह्निविषाणि वर्जयित्वा, राजान्तिके तदन्यैरुपकरणैः, नर्मयेयुः = क्रीडां दर्शयेयुः। एषाम् = कुशीलवादीनाञ्च, आतोद्यानि = वाद्यानि, अन्तः = राजभवनाभ्यन्तरे, तिष्ठेयुः, अश्वरथद्विपालङ्काराः = अश्वादीनां त्रयाणामलङ्काराश्च, अन्तस्तिष्ठेयुः।

विशेष—१. नट आदि खेल दिखाते समय धोखे से राजा पर शस्त्रादि का, बिष का प्रयोग कर सकते हैं। इसलिए निर्देश दिया गया है कि शस्त्र, आग एवं विष का खेल न दिखावें।

२. नटों के उपयोग की सामग्री राजभवन में ही रहनी चाहिए, अथवा राजभवन में से ही देनी चाहिए। इससे विष आदि के प्रयोग की सम्भावना नहीं रहती हैं।

मौलपुरुषाधिष्ठितं यानवाहनमारोहेत्, नावं चाप्तनाविकाधिष्ठिताम्। अन्यनौप्रतिबद्धां वातवेगवशां च नोपेयात्। उदकान्ते सैन्यमासीत। मत्स्यग्राहविशुद्धमवगाहेत। व्यालग्राहपरिशुद्धमुद्यानं गच्छेत्॥ ११॥

अनुवाद—विश्वस्त प्रधान पुरुष के साथ होने पर ही राजा पालकी तथा घोड़े आदि यान-वाहनों पर चढ़े। विश्वस्त नाविक के रहने पर ही नौका पर चढ़े। दूसरी नाव पर बँधी एवं वायु से चालित नाव पर वह कदापि न बैठे। नौका-विहार करते समय, सुरक्षा के लिए नदी के दोनों तटों पर सेना तैनात रहनी चाहिए। मछुओं द्वारा भली-भाँति जाँच किए गए घाट पर ही वह स्नान करे। इसी प्रकार संपेरों द्वारा परिशोधित उद्यान में ही वह भ्रमण करे।

संस्कृत-व्याख्या—मौलपुरुषाधितिष्ठतम् = आप्तप्रधानपुरुषकृताध्यक्ष्यम्, यानवाहनम् = शिविकाऽश्वादिकम्, आरोहेत् = आरोहणं कुर्यात्, नावम् = नौकां च, आप्तनाविकाधिष्ठिताम् = विश्वस्तनाविकाध्यक्षितां सतीम्, अरोहेत्। अन्यनौप्रतिबद्धाम् = अन्यया नावा सहैव नेतव्या यथा स्यात्तथा अन्यस्यां नावि सूत्रबद्धाम्, वातवेगवश्याम् = वातायत्तगमनां नावं च, नोपेयात् = नारोहेत्। उदकान्ते = जलसमीपे नद्यास्तटयोस्तस्य रक्षार्थम्, सैन्यमासीत = सैन्यं तिष्ठेत्। मत्स्यग्राहविशुद्धम् = कैवर्तैः विशुद्धं परिशोधितमेव, अवगाहेत = जलं स्नानार्थं प्रविशेत्। व्यालग्राहपरिशुद्धम् = सर्पग्राहिजनशोधितम्, उद्यानं गच्छेत् = उपवनं भ्रमणार्थं गच्छेत्।

विशेष—१. जब राजा नौका-विहार करे तो तब नदी या सरोवर के दोनों तटों पर सैना तैनात रहनी चाहिए। इससे राजा को भय नहीं रहता है।

२. स्नान के जलाशय या घाट की तथा उद्यान की भी परिशुद्धि पर ध्यान रखना चाहिए।

लुब्धकैः श्वगणिभिरपास्तस्तेनव्यालपराबाधभयं चललक्षपरिचयार्थं मृगारण्यं गच्छेत्॥ १२॥

अनुवाद—चोर तथा व्याघ्र आदि से रहित, कुत्ते रखने वाले शिकारियों के साथ राजा चलते हुए लक्ष्य पर निशाना साधने के उद्देश्य से जंगल में जाय।

संस्कृत-व्याख्या—लुब्धकैः = व्याधैः, श्वगणिभिः = श्वगणजीविभिः, अपास्तस्तेनव्यालपराबाधभयम् = निरस्तचोरव्याघ्राद्युपद्रवभयम्, चललक्षपरिचयार्थम् = हरिणादिषु चललक्ष्येषु वेधाभ्यासार्थम्, मृगारण्यम् = मृगवनम्, गच्छेत् = यायात्।

आप्तशस्त्रग्राहाधिष्ठितः सिद्धतापसं पश्येत्, मन्त्रिपरिषदा सामन्तदूतम्। सन्नद्धोऽश्वं हस्तिनं रथं वाऽऽरूढः सन्नद्धमनीकं गच्छेत्॥ १३॥

अनुवाद—शस्त्र को धारण करने वाले विश्वस्त पुरुष के साथ ही राजा सिद्ध या तपस्वी का दर्शन करे, मन्त्रिपरिषद् के साथ सामन्त राजा के दूत से मिले तथा घोड़े, हाथी या रथ पर सवार होकर युद्ध के लिए प्रस्थान करने वाली सेना का वह युद्धोचित वेश में निरीक्षण करे।

संस्कृत-व्याख्या—सिद्धतापसम् = दिदृक्षुमागतं सिद्धतपस्विजनम्, आप्तशस्त्रग्राहाधिष्ठितः = विश्वस्तशस्त्रिगुप्त एव सन् राजा, पश्येत् = दर्शनं कुर्यात्, मन्त्रिपरिषदा सहाधिष्ठितो वा, सामन्तदूतम् = स्वाधीनस्थनृपदूतं पश्येत्। सन्नद्धः = शिरस्त्राणाद्यामोचनसुभगयुद्धोचितवेषः, अश्वं हस्तिनं रथं वा आरूढः सन्, सन्नद्धम् = युद्धाय सज्जम्, अनीकम् = सैन्यम्, गच्छेत्।

निर्याणेऽभियाने च राजमार्गमुभयतः कृतारक्षं दण्डिभिरपास्तशस्त्रहस्तप्रव्रजितव्यङ्गं गच्छेत्। न पुरुषसम्बाधमवगाहेत। यात्रासमाजोत्सवप्रवहणानि च दशवर्गिकाधिष्ठितानि गच्छेत्॥ १४॥

अनुवाद—बाहर जाते या बाहर से आते समय राजा हाथ में दण्ड-धारण करने वाले रक्षकों द्वारा दोनों से सुरक्षित मार्ग पर चले। जिस मार्ग पर कोई शस्त्ररहितं पुरुष, संन्यासी या लूला-लंगड़ा व्यक्ति दिखाई न दे उस पर ही राजा चले। वह पुरुषों की भीड़ न घुसे, किसी देवालय, सभा, उत्सव रथ आदि वाहन में जाने पर कम-से-कम दस सिपाहियों के साथ ही जावे।

संस्कृत-व्याख्या—निर्याणे = देशान्तरं प्रति गमने, अभियाने = प्रत्यागमने च, राजमार्गम् = राजपथं यत्र, उभयतः = उभयपार्श्वयोः दण्डिभिः = वेत्रिभिः, कृतारक्षम् = विहितरक्षाविधानं यथा स्यात्तथा, अपास्तशस्त्रहस्तप्रव्रजितव्यङ्गम् = अपास्ताः निस्सारिताः शस्त्रहस्ताः प्रव्रजिताः संन्यासिनो व्यङ्गाः अङ्गविहीनाश्च यस्मात्तत्, अथवा यस्मिन् कर्मणि तत्, गच्छेत्। पुरुषसम्बाधम् = जनसंकुलं प्रदेशम्, न अवगाहेत = न प्रविशेत्। यात्रासमाजोत्सवप्रवहणानि = यात्रा देवतानां समाजो जनसमुदायः उत्सवः वसन्तोत्सवादिः

प्रवहणं चैतानि, दशवर्गिकाधिष्ठातानि = दशवर्गिकेण दशभटनायकेन अधिष्ठितानि कृत्वा, गच्छेत्, न त्वेकाकी परिमितपरिजनो वेत्यर्थः।

विशेष—१. राजा को सदैव परिचारको एवं दशाधिक सैनिकों या अंगरक्षकों के साथ कहीं जाना चाहिए।

२. राजा जिधर से जावे वह पूर्णतया सुरक्षित रहे।

यथा च योगपुरुषैरन्यान् राजाऽधितिष्ठति।
तथाऽयमन्यबाधेभ्यो रक्षेदात्मानमात्मवान्॥ १५॥

अनुवाद—विजिगीषु राजा जिस प्रकार अपने गुप्तचरों के द्वारा दूसरों को कष्ट पहुँचाता है, उसी प्रकार दूसरों के द्वारा दिये गये कष्टों (बाधाओं) से भी अपनी रक्षा करे।

संस्कृत-व्याख्या—यथा = येन प्रकारेण, राजा = विजिगीषुः नृपः, योगपुरुषैः = कापटिकैः गूढपुरुषैः, अन्यान् = अन्यनृपतीन्, अधितिष्ठति = अवरोधति बाधते वा, तथा अयम् = राजा, आत्मवान् = प्रयत्नवान् सन्, अन्यबाधेभ्यः = अन्यनृपोत्पादितेभ्यो योगपुरुषोपद्रवेभ्यः, आत्मानम् = स्वमेव, रक्षेत् = रक्षणं कुर्यात्।

विशेष—१. 'आत्मवान्' का आशय उचित प्रयास करने वाला तथा बुद्धिमान् होता है। राजा आत्मरक्षा में सदा चतुराई से प्रयत्नशील रहे–यह निर्देश व्यक्त हुआ है।

२. यहाँ तक प्रथम अधिकरण की विषय-वस्तु वर्णित है।

॥ इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे आत्मरक्षितमेकविंशोध्यायः॥

॥ कौटिलीयस्यार्थशास्त्रस्य विनयाधिकारिकं
प्रथममधिकरणं समाप्तम्॥

❑ ❑ ❑